

विषय-सूची

विवरण

अभ्यास	शब्द	धातु	कारकादि	समासादि	शब्दवर्ग	पृष्ठ
१.	राम	भू, हस्	प्र०, द्वितीया	लट् (पर०)	—	२
२.	गृह	पठ्, रक्ष्	, ,	लोट् , ,	—	४
३.	रमा	गम्, वद्	तृतीया	लङ् , ,	—	६
४.	हरि, भूपति	चर्, दृश्	, ,	विधिलिङ् , ,	—	८
५.	गुरु	सद्, पा	चतुर्थी	लृट् , ,	—	१०
६.	९ सर्वनाम पुं०	सेव्, वृत्	, ,	लट् (आ०)	—	१२
७.	, , , , नपुं०	वृध्, ईक्ष्	पंचमी	लोट् , ,	—	१४
८.	, , , , स्त्री०	मन्त्र्, रम्	, ,	लङ् , ,	—	१६
९.	इदम्	लभ्, स्था	षष्ठी	विधिलिङ् , ,	—	१८
१०.	अदस्	मुद्, सह्	, ,	लृट् , ,	—	२०
११.	युष्मद्	पत्, पच्, नम्	सप्तमी	—	—	२२
१२.	अस्मद्	तृ, स्मृ, जि	, ,	—	—	२४
१३.	एक	घ्रा	स्वर-संधि	लिट्	देववर्ग	२६
१४.	द्वि	कृष्, वस्	, , , ,	, ,	विद्यालयवर्ग	२८
१५.	त्रि	त्यज्	व्यंजन	, , लुङ्	लेखनसामग्री	३०
१६.	चतुर्	याच्	, , , ,	, ,	दिक्कालवर्ग	३२
१७.	संख्या ५-१०	वह्	विसर्ग	, , लुट्	व्योमवर्ग	३४
१८.	, , ११-१००	नी	, , , ,	आ० लिङ्, लृङ्	संबन्धिवर्ग	३६
१९.	सखि	ह	—	अव्ययीभाव	क्रीडासनवर्ग	३८
२०.	पति	श्रु	—	तत्पुरुष	ब्राह्मणवर्ग	४०
२१.	सुधी, स्वभू	कृ (पर०)	—	कर्म०, द्विगु	क्षत्रियवर्ग	४२
२२.	कर्तृ	कृ (आ०)	—	बहुव्रीहि	आयुधवर्ग	४४
२३.	पितृ, नृ	अद्, शास्	—	, ,	सैन्यवर्ग	४६
२४.	गो	अस्	—	द्वन्द्व	वैश्यवर्ग	४८
२५.	प्राञ्च, उदञ्च	ब्रू	—	एकशेष, अलुक्	व्यापारवर्ग	५०
२६.	पयोमुच्, वणिज्	या, पा	—	समासान्त प्र०	अन्नवर्ग	५२
२७.	भूभृत्	दुह्, लिह्	—	स्त्रीप्रत्यय	भक्ष्यवर्ग	५४
२८.	भगवत्, धीमत्	रुद्-स्वप्	पदक्रम	कर्तृवाच्य	मिष्टान्नवर्ग	५६
२९.	महत्, भवत्	हन्, स्तु	—	आत्मनेपद	पानादिवर्ग	५८
३०.	पठत्, यावत्	इ, विद्	आत्मनेपद	परस्मैपद	पात्रवर्ग	६०

अध्यास	शब्द	धातु	कारकादि	प्रत्यय	शब्दवर्ग	पृष्ठ
३१.	बुध्	आस्	—	कर्म-भाववाच्य	शूद्रवर्ग	६२
३२.	आत्मन्, राजन्	शी, अधि+इ	—	,, ,,	शिल्पिवर्ग	६४
३३.	ध्वन्, युवन्	हु, भी	—	णिच्	,,	६६
३४.	वृत्रहन्, मघवन्	हा, ही	—	,,	शाकादिवर्ग	६८
३५.	करिन्, पथिन्	भृ, मा	—	सन्	,,	७०
३६.	तादृश्, चन्द्रमस्	दा	—	यङ्, नामधातु	कृषिवर्ग	७२
३७.	विद्वस्, पुंस्	धा	—	क्त	विशेषणवर्ग	७४
३८.	श्रेयस्, अनडुह्	दिव्, नृत्	—	,,	,,	७६
३९.	मति	नश्, भ्रम्	—	क्तवतु	शैलवर्ग	७८
४०.	नदी, लक्ष्मी	श्रम्, सिव्	द्वितीया	शत्	वनवर्ग	८०
४१.	स्त्री, श्री	सो, शो	,,	शत्, शानच्	वृक्षवर्ग	८२
४२.	धेनु, वधू	कुप्, पद्	तृतीया	तुमुन्	पुष्पवर्ग	८४
४३.	स्वस्, मातृ	युध्, जन्	,,	क्त्वा	फलवर्ग	८६
४४.	नौ, वाच्	आप्, शक्	चतुर्थी	त्यप्, णमुल्	,,	८८
४५.	स्रज्, सरित्	चि, अश्	,,	तव्य, अनीय	पशुवर्ग	९०
४६.	समिध्, अप्	सु	पंचमी	यत्, ण्यत्, क्यप्	पक्षिवर्ग	९२
४७.	गिर, पुर	इष्, प्रच्छ्	,,	घञ्	वारिवर्ग	९४
४८.	दिश्, उपानह्	लिख्, स्पृश्	षष्ठी	तृच्, अच्, अप्	शरीरवर्ग	९६
४९.	वारि, दधि	कृ, गृ	,,	ल्युट्, ण्वुल्, ट	,,	९८
५०.	अक्षि, अस्थि	क्षिप्, मृ	सप्तमी	क, खल्, णिनि	वस्त्रादिवर्ग	१००
५१.	मधु, कर्तृ	तुद्, मुच्	,,	क्तिन्, अण्, क्तिप्	आभूषणवर्ग	१०२
५२.	जगत्	छिद्, भिद्	—	इष्णु, खश् आदि	प्रसाधनवर्ग	१०४
५३.	नामन्, शर्मन्	हिंस्, भञ्ज्	तद्धित	अपत्यार्थक	पुरवर्ग	१०६
५४.	ब्रह्मन्, अहन्	रुध्, भुज्	,,	चातुरार्थिक	,,	१०८
५५.	हविष्, धनुष्	युज्, तन्	,,	शैषिक	गृहवर्ग	११०
५६.	पयस्, मनस्	ज्ञा	,,	मत्वर्थक	अव्ययवर्ग	११२
५७.	पाद, दन्त	बन्ध्, मन्थ्	,,	विभक्त्यर्थक	क्रियावर्ग	११४
५८.	गोपा, विश्वपा	क्री, ग्रह्	,,	भावार्थक	धातुवर्ग	११६
५९.	कति	चुर्, चिन्त्	,,	तुलनार्थक	नाट्यवर्ग	११८
६०.	उभ	कथ्, भक्ष्	,,	विविध तद्धित	रोगवर्ग	१२०

परिशिष्ट

व्याकरण

पृष्ठ

(१) शब्दरूप-संग्रह

१२२-१४०

१. राम, २. पाद, ३. गोपा, ४. हरि, ५. सखि, ६. पति, ७. भूपति,
 ८. सुधी, ९. गुरु, १०. स्वभू, ११. कर्तु, १२. पितृ, १३. नृ, १४. गो,
 १५. पयोमुच, १६. प्राञ्च, १७. उदञ्च, १८. वणिज, १९. भूभृत्,
 २०. भगवत्, २१. धीमत्, २२. महत्, २३. भवत्, २४. पठत्, २५. यावत्,
 २६. बुध्, २७. आत्मन्, २८. राजन्, २९. श्वन्, ३०. युवन्, ३१. वृत्रहन्,
 ३२. मघवन्, ३३. करिन्, ३४. पथिन्, ३५. तादृश्, ३६. विद्वस्, ३७. पुंस्,
 ३८. चन्द्रमस्, ३९. श्रेयस्, ४०. अनडुह, ४१. रमा, ४२. मति, ४३. नदी,
 ४४. लक्ष्मी, ४५. स्त्री, ४६. श्री, ४७. धेनु, ४८. वधू, ४९. स्वसृ
 ५०. मातृ, ५१. नौ, ५२. वाच्, ५३. स्त्रज्, ५४. सरित्, ५५. समिध्,
 ५६. अप्, ५७. गिर, ५८. पुर, ५९. दिश, ६०. उपानह, ६१. गृह,
 ६२. वारि, ६३. दधि, ६४. अक्षि, ६५. अस्थि, ६६. मधु, ६७. कर्तु,
 ६८. जगत्, ६९. नामन्, ७०. शर्मन्, ७१. ब्रह्मन्, ७२. अहन्, ७३. हविष्,
 ७४. धनुष्, ७५. पयस्, ७६. मनस्, ७७. सर्व, ७८. विश्व, ७९. पूर्व,
 ८०. अन्य, ८१. तत्, ८२. यत्, ८३. एतत्, ८४. किम्, ८५. युष्मद्,
 ८६. अस्मद्, ८७. इदम्, ८८. अदस्, ८९. एक, ९०. द्वि, ९१. त्रि,
 ९२. चतुर, ९३. पञ्चन्, ९४. षष्, ९५. सप्तन्, ९६. अष्टन्, ९७. नवन्,
 ९८. दशन्, ९९. कति, १००. उभ।

(२) संख्याएँ

१४१-१४२

गिनती—१ से १०० तक।

संख्याएँ—सहस्र से महाशंख तक।

(३) धातुरूप-संग्रह (दसों लकारों के रूप)

१४३-२२०

(१) भ्वादिगण—१. भू, २. हस्, ३. पठ्, ४. रक्ष्, ५. वद्,
 ६. गम्, ७. दृश्, ८. पा, ९. स्था, १०. घ्रा, ११. सद्, १२. पच्, १३. नम्,
 १४. स्मृ, १५. जि, १६. श्रु, १७. कृष्, १८. वस्, १९. त्यज्, २०. सेव्,
 २१. लभ्, २२. वृध्, २३. मुद्, २४. सह्, २५. वृत्, २६. ईक्ष्, २७. नी,
 २८. ह्, २९. याच्, ३०. वह्।

(२) अदादिगण—३१. अद्, ३२. अस्, ३३. इ, ३४. रुद्, ३५. स्वप्, ३६. दुह्, ३७. लिह्, ३८. हन्, ३९. स्तु, ४०. या, ४१. पा, ४२. शास्, ४३. विद्, ४४. आस्, ४५. शी, ४६. अधि+इ, ४७. ब्रू।

(३) जुहोत्यादिगण—४८. हु, ४९. भी, ५०. हा, ५१. ही, ५२. भृ, ५३. मा, ५४. दा, ५५. धा।

(४) दिवादिगण—५६. दिव्, ५७. नृत्, ५८. नश्, ५९. भ्रम्, ६०. श्रम्, ६१. सिव्, ६२. सो, ६३. शो, ६४. कुप्, ६५. पद्, ६६. युध्, ६७. जन्।

(५) स्वादिगण—६८. आप्, ६९. शक्, ७०. चि, ७१. अश्, ७२. सु।

(६) तुदादिगण—७३. इष्, ७४. प्रच्छ्, ७५. लिख्, ७६. स्पृश्, ७७. कृ, ७८. गृ, ७९. क्षिप्, ८०. मु, ८१. तुद्, ८२. मुच्।

(७) रुधादिगण—८३. छिद्, ८४. भिद्, ८५. हिंस, ८६. भञ्ज्, ८७. रुध्, ८८. भुज्, ८९. युज्।

(८) तनादिगण—९०. तन्, ९१. कृ।

(९) क्र्यादिगण—९२. बन्ध्, ९३. मन्थ्, ९४. क्री, ९५. ग्रह्, ९६. ज्ञा।

(१०) चुरादिगण—९७. चुर, ९८. चिन्त्, ९९. कथ्, १००. भक्ष्।

(४) धातुरूपकोश

२२१-२५४

अकारादिक्रम से ४६५ धातुओं के दसों लकारों में रूप।

(१) अकर्मक धातुएँ। (२) अनिद् धातुओं का संग्रह।

(५) प्रत्यय-विचार

२५५-२६८

निम्नलिखित प्रत्ययों के सभी उपयोगी रूपों का संग्रह :—

१. क्त, २. क्तवत्, ३. शतृ, ४. शानच्, ५. तुमुन्, ६. तव्यत्, ७. तृच्, ८. त्त्वा, ९. ल्यप्, १०. ल्युट्, ११. अनीयर्, १२. घञ्, १३. ण्वुल्, १४. क्तिन्, १५. यत्।

(६) सन्धि-विचार

२६९-२७८

७५ उपयोगी सन्धि-नियमों का सोदाहरण विवेचन।

(७) प्रत्यय-परिचय

२७९-२८५

१०० धातुओं के क्त आदि प्रत्ययों से बने रूपों की सारणी (चार्ट)

(८) वाक्यार्थक-शब्द

२८६-२९०

वाक्यों का पूरा अर्थ बतानेवाले शब्दों का संग्रह

(९) पत्रादि-लेखन-प्रकार

२९१-२९५

(१०) निबन्ध-माला (२० निबन्ध)

२९६-३५०

१. वेदानां महत्त्वम् ।
२. वेदाङ्गानि, तेषां वेदार्थबोधोपयोगिताः ।
३. सर्वोपनिषदो गावोऽदुग्धं गीतामृतं महत् ।
४. भासनाटकचक्रम् ।
५. कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम् ।
६. उपमा कालिदासस्य ।
७. भारवेरर्थगौरवम् ।
८. दण्डिनः पदलालित्यम् ।
९. माघे सन्ति त्रयो गुणाः ।
१०. बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम् ।
११. कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते ।
१२. नैषधं विद्वदौषधम् ।
१३. भारतीया संस्कृतिः ।
१४. संस्कृतस्य रक्षार्थं प्रसारार्थं चोपायाः ।
१५. कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा ।
१६. नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।
१७. सहसा विदधीत न क्रियाम् ।
१८. ज्वलितं न हिरण्यरेतसं, चयमास्कन्दति भस्मनां जनः ।
१९. आशा बलवती राजन्, शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।
२०. स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च ।

(११) अनुवादार्थ-गद्य-संग्रह

३५१-३७०

(१२) सुभाषित-मुक्तावली

३७१-४०२

प्रमुख १७ शीर्षक :—१. भारतप्रशंसा, २. अध्यात्म, ३. अर्थ,

४. काम, ५. जगत्-स्वरूप, ६. चातुर्वर्ण्य, ७. जीवन, ८. आरोग्य,
९. राजधर्मादि, १०. आचार, ११. विद्या, १२. विचारात्मक, १३. मनोभाव,
१४. व्यवहार, १५. पुरुष-स्त्री-स्वभावादि, १६. कवि, काव्य, कविता,
१७. विविध ।

(१३) पारिभाषिक-शब्दकोश

४०३-४१४

व्याकरण के अत्युपयोगी १६५ पारिभाषिक शब्दों का विवरण ।

(१४) हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोश

४१४-४३८

(१५) विषयानुक्रमिका

४३९-४४०

(४) धातुरूप-कोष

(सिद्धान्तकौमुदी की सभी प्रसिद्ध धातुओं के रूपों का संग्रह)

आवश्यक निर्देश

१. सिद्धान्तकौमुदी में जितनी भी प्रसिद्ध धातुएँ हैं और जिनका संस्कृत-साहित्य में विशेष रूप से प्रयोग हुआ है, उन सभी धातुओं का यहाँ पर अकारादिक्रम से संग्रह किया गया है। प्रत्येक धातु के पूरे १० लकारों के प्रारम्भिक रूप (प्र० पु० एकवचन) यहाँ पर दिए गए हैं। साथ ही प्रत्येक धातु के णिच् प्रत्यय और कर्मवाच्य के रूप भी दिए गए हैं। इस कोष में ४६५ धातुएँ दी गई हैं।

२. जो धातु जिस गण की है, उस धातु के रूप उस गण की धातुओं के तुल्य ही चलेंगे। धातुरूप-संग्रह में प्रत्येक गण के प्रारम्भ में उस गण की विशेषताएँ दी हुई हैं और साथ ही संक्षिप्त-रूप भी दिए हुए हैं। जो धातु जिस गण की हो और जिस पद (परस्मै०, आत्मने० या उभयपद) की हो, उसके रूप इस गण में निर्दिष्ट संक्षिप्त-रूप लगाकर बनावें। जो उभयपदी धातुएँ परस्मैपद में ही अधिक प्रचलित हैं, उनके परस्मैपद के ही रूप यहाँ दिए गए हैं। जिनके दोनों पदों में रूप प्रचलित हैं, उनके दोनों पदों के रूप दिए हैं। जिन उभयपदी धातुओं के रूप यहाँ आत्मनेपद में नहीं दिए हैं, उनके आत्मनेपद के रूप उस गण की अन्य आत्मनेपदी धातुओं के तुल्य चलावें।

३. सिद्धान्तकौमुदी के लकारों का प्रामाणिक क्रम निम्नलिखित है। इसी क्रम से यहाँ धातुओं के रूप दिए गए हैं। लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, आशीलिङ्, लुङ्, लृङ्। अन्त में णिच् प्रत्यय और भावकर्मवाच्य का प्र० पु० एक० का रूप दिया गया है। प्रत्येक पृष्ठ पर ऊपर लकारों के नाम दिए गए हैं। उनके नीचे प्रत्येक पंक्ति में उस लकार के रूप दिए गए हैं। रूप दाएँ और बाएँ दोनों पृष्ठों पर फैले हुए हैं, अतः उस धातु के सामने के दोनों पृष्ठ देखें।

४. प्रत्येक धातु के बाद कोष्ठ में निर्देश कर दिया गया है कि वह किस गण की है और किस पद में उसके रूप चलते हैं। साथ ही धातु का हिन्दी में अर्थ भी दिया गया है। धातुओं के एक या दो ही अर्थ दिए गए हैं। संक्षेप के लिए कहीं-कहीं पर 'करना' के लिए ० (शून्य) दिया गया है।

५. संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का प्रयोग किया गया है:— प० = परस्मैपदी। आ० = आत्मनेपदी। उ० = उभयपदी। १ = भ्वादिगण। २ = अदादिगण। ३ = जुहोत्यादिगण। ४ = दिवादिगण। ५ = स्वादिगण। ६ = तुदादिगण। ७ = रुधादिगण। ८ = तनादिगण। ९ = क्र्यादिगण। १० = चुरादिगण। ११ = कण्ड्वादिगण।

६. लङ्, लुङ् और लृङ् में अ या आ धातु से ही पहले लगता है, उपसर्ग से पूर्व कभी नहीं। अतः उपसर्गयुक्त धातुओं में लङ् आदि में धातु से पहले अ या आ लगाकर उपसर्ग से मिलावें। सन्धिकार्य प्राप्त हो तो उसे भी करें। स्वर-आदिवाली धातुओं से पहले आ लगता है और व्यंजन-आदिवाली धातुओं के पहले अ लगता है।

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
अघ् (१० उ०, पाप करना)	अघयति-ते	अघयांचकार	अघयिता	अघयितु	अघयिष्यति	अघयतु
अङ्क् (१० उ०, चिह्न०)	अङ्कयति-ते	अङ्कयांचकार	अङ्कयिता	अङ्कयितु	अङ्कयिष्यति	अङ्कयतु
अञ्ज् (७ प०, स्वच्छ०)	अनक्ति	आनञ्ज	अञ्जिता	अञ्जितु	अञ्जिष्यति	अनक्तु
अट् (१ प०, घूमना)	अटति	आट	अटिता	अटितु	अटिष्यति	अटतु
अत् (१ प०, सदा घूमना)	अतति	आत	अतिता	अतितु	अतिष्यति	अततु
अद् (२ प०, खाना)	अत्ति	आद, जघास	अत्ता	अत्तु	अत्स्यति	अत्तु
अन् (२ प०, जीवित रहना)	प्र+अनिति	आन	अनिता	अनितु	अनिष्यति	अनितु
अय् (१ आ०, जाना)	परा+अयते	अयांचक्रे	अयिता	अयितु	अयिष्यते	अयताम्
अर्च् (१ प०, पूजना)	अर्चति	आनर्च	अर्चिता	अर्चितु	अर्चिष्यति	अर्चतु
अर्ज् (१ प०, संग्रह०)	अर्जति	आनर्ज	अर्जिता	अर्जितु	अर्जिष्यति	अर्जतु
अर्ह् (१ प०, योग्य होना)	अर्हति	आनर्ह	अर्हिता	अर्हितु	अर्हिष्यति	अर्हतु
अव् (१ प०, रक्षा०)	अवति	आव	अविता	अवितु	अविष्यति	अवतु
अश् (५ आ०, व्याप्त०)	अश्नुते	आनशे	अशिता	अशितु	अशिष्यते	अश्नुताम्
अश् (९ प०, खाना)	अश्नाति	आश	अशिता	अशितु	अशिष्यति	अश्नातु
अस् (२ प०, होना)	अस्ति	बभूव	भविता	भवितु	भविष्यति	अस्तु
अस् (४ प०, फेंकना)	अस्यति	आस	असिता	असितु	असिष्यति	अस्यतु
असू (११ प०, द्रोह०)	असूयति	असूयांचकार	असूयिता	असूयितु	असूयिष्यति	असूयतु
आन्दोल् (१० उ०, हिलना)	आन्दोलयति	आन्दोलयांचकार	आन्दोलयिता	आन्दोलयितु	आन्दोलयिष्यति	आन्दोलयतु
आप् (५ प०, पाना)	आप्नोति	आप	आप्ता	आप्तु	आप्स्यति	आप्नोतु
आप् (१० उ०, पहुँचाना)	आपयति-ते	आपयांचकार	आपयिता	आपयितु	आपयिष्यति	आपयतु
आस् (२ आ०, बैठना)	आस्ते	आसांचक्रे	आसिता	आसितु	आसिष्यते	आस्ताम्
इ (२ प०, जाना)	एति	इयाय	एता	एतु	एष्यति	एतु
इ (अधि + २, आ०, पढ़ना)	अधीते	अधिजगे	अध्येता	अध्येतु	अध्येष्यते	अधीताम्
इष् (४ प०, जाना)	अनु+इष्यति	इयेष	एषिता	एषितु	एषिष्यति	इष्यतु
इष् (६ प०, चाहना)	इच्छति	इयेष	एषिता	एषितु	एषिष्यति	इच्छतु
ईक्ष् (१ आ०, देखना)	ईक्षते	ईक्षांचक्रे	ईक्षिता	ईक्षितु	ईक्षिष्यते	ईक्षताम्
ईर् (१० उ०, प्रेरणा)	प्र+ईरयति-ते	ईरयांचकार	ईरयिता	ईरयितु	ईरयिष्यति	ईरयतु
ईर्ष्य् (१ प०, ईर्ष्या०)	ईर्ष्यति	ईर्ष्यांचकार	ईर्ष्यिता	ईर्ष्यितु	ईर्ष्यिष्याते	ईर्ष्यतु
ईह् (१ आ०, चाहना)	ईहते	ईहांचक्रे	ईहिता	ईहितु	ईहिष्यते	ईहताम्
उज्झ् (६ प०, छोड़ना)	उज्झति	उज्झांचकार	उज्झिता	उज्झितु	उज्झिष्यति	उज्झतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
आघयत्	अघयेत्	अघ्यात्	आजिघत्	आघयिष्यत्	अघयति	अघ्यते
आङ्कयत्	अङ्कयेत्	अङ्क्यात्	आञ्चिकत्	आङ्कयिष्यत्	अङ्कयति	अङ्क्यते
आनक्	अञ्यात्	अज्यात्	आञ्जीत्	आञ्जिष्यत्	आञ्जयति	अज्यते
आटत्	अटेत्	अट्यात्	आटीत्	आटिष्यत्	आटयति	अट्यते
आतत्	अतेत्	अत्यात्	आतीत्	आतिष्यत्	आतयति	अत्यते
आदत्	अद्यात्	अद्यात्	अघसत्	आत्स्यत्	आदयति	अद्यते
आनत्	अन्यात्	अन्यात्	आनीत्	आनिष्यत्	आनयति	अन्यते
आयत्	अयेत्	अयिषीष्ट	आयिष्ट	आयिष्यत्	आययते	अय्यते
आर्चत्	अर्चेत्	अर्च्यात्	आर्चीत्	आर्चिष्यत्	अर्चयति	अर्च्यते
आर्जत्	अर्जेत्	अर्ज्यात्	आर्जीत्	आर्जिष्यत्	अर्जयति	अर्ज्यते
आर्हत्	अर्हेत्	अर्ह्यात्	आर्हीत्	आर्हिष्यत्	अर्हयति	अर्ह्यते
आवत्	अवेत्	अव्यात्	आवीत्	आविष्यत्	आवयति	अव्यते
आशनुत्	अशनुवीत्	अशिषीष्ट	आशिष्ट	आशिष्यत्	आशयति	अश्यते
आशनात्	अशनीयात्	अश्यात्	आशीत्	आशिष्यत्	आशयति	अश्यते
आसीत्	स्यात्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
आस्यत्	अस्येत्	अस्यात्	आस्यत्	आसिष्यत्	आसयति	अस्यते
आसूयत्	असूयेत्	असूय्यात्	आसूयीत्	आसूयिष्यत्	असूययति	असूय्यते
आन्दो- लयत्	आन्दोलयेत्	आन्दोल्यात्	आन्दुदोलत्	आन्दोलयि- ष्यत्	आन्दो- लयति	आन्दोल्यते
आप्नोत्	आप्नुयात्	आप्यात्	आपत्	आप्स्यत्	आपयति	आप्यते
आपयत्	आपयेत्	आप्यात्	आपिपत्	आपयिष्यत्	आपयति	आप्यते
आस्त	आसीत्	आसिषीष्ट	आसिष्ट	आसिष्यत्	आसयति	आस्यते
ऐत्	इयात्	ईयात्	अगात्	ऐष्यत्	गमयति	ईयते
अध्यैत्	अधीयीत्	अध्येषीष्ट	अध्यैष्ट	अध्यैष्यत्	अध्यापयति	अधीयते
ऐष्यत्	इष्येत्	इष्यत्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐच्छत्	इच्छेत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐक्षत्	ईक्षेत्	ईक्षिषीष्ट	ऐक्षिष्ट	ऐक्षिष्यत्	ईक्षयति	ईक्ष्यते
ऐरयत्	ईरयेत्	ईर्यात्	ऐरिरत्	ऐरयिष्यत्	ईरयति	ईर्यते
ऐर्ष्यत्	ईर्ष्येत्	ईर्ष्यात्	ऐर्षीत्	ऐर्ष्यिष्यत्	ईर्षयति	ईर्ष्यते
ऐहत	ईहेत्	ईहिषीष्ट	ऐहिष्ट	ऐहिष्यत्	ईहयति	ईह्यते
औज्झत्	उज्झेत्	उज्झ्यात्	औज्झीत्	औज्झिष्यत्	उज्झयति	उज्झ्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
उन्द् (७ प०, भिगोना)	उनति	उन्दि	उन्दि	उन्दि	उन्दिष्यति	उनतु
ऊह् (१ आ०, तर्क०)	ऊहते	ऊहति	ऊहति	ऊहति	ऊहिष्यते	ऊहताम्
ऋच्छ् (६ प०, जाना)	ऋच्छति	आनच्छ	ऋच्छति	ऋच्छति	ऋच्छिष्यति	ऋच्छतु
एज् (१ प०, काँपना)	एजति	एजांचकार	एजिता	एजिता	एजिष्यति	एजतु
एध् (१ आ०, बढ़ना)	एधते	एधांचकरे	एधिता	एधिष्यते	एधताम्	
कण्डू (११ उ०, खुजाना)	कण्डूयति-ते	कण्डूयांचकार	कण्डूयिता	कण्डूयिष्यति	कण्डूयतु	
कथ् (१० उ०, कहना) प०	कथयति	कथयांचकार	कथयिता	कथयिष्यति	कथयतु	
	आ० कथयते	कथयांचकरे	कथयिता	कथयिष्यते	कथयताम्	
कम् (१ आ०, चाहना)	कामयते	कामयांचकरे	कामयिता	कामयिष्यते	कामयताम्	
कम्प् (१ आ०, काँपना)	कम्पते	चकम्पे	कम्पिता	कम्पिष्यते	कम्पताम्	
कांश्च (१ प०, चाहना)	कांक्षति	चकांक्ष	कांक्षिता	कांक्षिष्यति	कांक्षतु	
काश् (१ आ०, चमकना)	काशते	चकाशे	काशिता	काशिष्यते	काशताम्	
कास् (१ आ०, खाँसना)	कासते	कासांचकरे	कासिता	कासिष्यते	कासताम्	
कित् (१ प०, चिकित्सा०)	चिकित्सति	चिकित्सां- चकार	चिकित्सिता	चिकित्सिष्यति	चिकित्सतु	
कील् (१ प०, गाड़ना)	कीलति	चिकील	कीलिता	कीलिष्यति	कीलतु	
कु (२ प०, गूँजना)	कौति	चुकाव	कोता	कोष्यति	कौतु	
कुञ्च (१ प०, कम होना)	कुञ्चति	चुकुञ्च	कुञ्चिता	कुञ्चिष्यति	कुञ्चतु	
कुत्स् (१० आ०, दोष देना)	कुत्सयते	कुत्सयांचकरे	कुत्सयिता	कुत्सयिष्यते	कुत्सयताम्	
कुप् (४ प०, क्रोध०)	कुप्यति	चुकोप	कोपिता	कोपिष्यति	कुप्यतु	
कूर्द् (१ आ०, कूदना)	कूर्दते	चुकूर्दे	कूर्दिता	कूर्दिष्यते	कूर्दताम्	
कूज् (१ प०, चूँ-चूँ करना)	कूजति	चुकूज	कूजिता	कूजिष्यति	कूजतु	
कृ (८ उ०, करना) प०	करोति	चकार	कर्ता	करिष्यति	करोतु	
	आ० कुरुते	चकरे	कर्ता	करिष्यते	कुरुताम्	
कृत् (६ प०, काटना)	कृन्तति	चकर्त	कर्तिता	कर्तिष्यति	कृन्तु	
कृप् (१ आ०, समर्थ होना)	कल्पते	चकल्पे	कल्पिता	कल्पिष्यते	कल्पताम्	
कृष् (१ प०, जोतना)	कर्षति	चकर्ष	कर्षिता	कर्षिष्यति	कर्षतु	
कृ (६ प०, बखेरना)	किरति	चकार	किरिता	किरिष्यति	किरतु	
कृत् (१० प०, नाम लेना)	कीर्तयति-ते	कीर्तयांचकार	कीर्तयिता	कीर्तयिष्यति	कीर्तयतु	
क्रन्द् (१ प०, रोना)	क्रन्दति	चक्रन्द	क्रन्दिता	क्रन्दिष्यति	क्रन्दतु	
क्रम् (१ प०, चलना)	क्रामति	चक्राम	क्रमिता	क्रमिष्यति	क्रामतु	

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
औनत्	उन्धात्	उद्यात्	औन्दीत्	औन्दिष्यत्	उन्दयति	उद्यते
औहत	ऊहेत्	ऊहिषीष्ट	औहिष्ट	औहिष्यत्	ऊहयति	ऊह्यते
आच्छत्	ऋच्छेत्	ऋच्छ्यात्	आच्छीत्	आच्छिष्यत्	ऋच्छयति	ऋच्छ्यते
ऐजत्	एजेत्	एज्यात्	ऐजीत्	ऐजिष्यत्	एजयति	एज्यते
ऐधत्	एधेत्	एधिषीष्ट	ऐधिष्ट	ऐधिष्यत्	एधयति	एध्यते
अकण्डूयत्	कण्डूयेत्	कण्डूय्यात्	अकण्डूयीत्	अकण्डूयिष्यत्	कण्डूययति	कण्डूय्यते
अकथयत्	कथयेत्	कथ्यात्	अचकथत्	अकथयिष्यत्	कथयति	कथ्यते
अकथयत्	कथयेत्	कथयिषीष्ट	अचकथत्	अकथयिष्यत्	,,	,,
अकामयत्	कामयेत्	कामयिषीष्ट	अचीकमत	अकामयिष्यत्	कामयति	काम्यते
अकम्पत्	कम्पेत्	कम्पिषीष्ट	अकम्पिष्ट	अकम्पिष्यत्	कम्पयति	कम्प्यते
अकाक्षत्	काक्षेत्	काक्ष्यात्	अकाक्षीत्	अकाक्षिष्यत्	काक्षयति	काक्ष्यते
अकाशत्	काशेत्	काशिषीष्ट	अकाशिष्ट	अकाशिष्यत्	काशयति	काश्यते
अकासत्	कासेत्	कासिषीष्ट	अकासिष्ट	अकासिष्यत्	कासयति	कास्यते
अचिकि-	चिकित्सेत्	चिकित्स्यात्	अचिकि-	अचिकि-	चिकित्स-	चिकि-
त्सत्			त्सीत्	त्सिष्यत्	यति	त्स्यते
अकीलत्	कीलेत्	कील्यात्	अकीलीत्	अकीलिष्यत्	कीलयति	कील्यते
अकौत्	कुर्यात्	कूयात्	अकौषीत्	अकोष्यत्	कावयति	कूयते
अकुञ्चत्	कुञ्चेत्	कुच्यात्	अकुञ्चीत्	अकुञ्चिष्यत्	कुञ्चयति	कुच्यते
अकुत्सयत्	कुत्सयेत्	कुत्सयिषीष्ट	अचुकुत्सत्	अकुत्सयिष्यत्	कुत्सयति	कुत्स्यते
अकुप्यत्	कुप्येत्	कुप्यात्	अकुपत्	अकोपिष्यत्	कोपयति	कुप्यते
अकूर्दत्	कूर्देत्	कूर्दिषीष्ट	अकूर्दिष्ट	अकूर्दिष्यत्	कूर्दयति	कूर्द्यते
अकूजत्	कूजेत्	कूज्यात्	अकूजीत्	अकूजिष्यत्	कूजयति	कूज्यते
अकरोत्	कुर्यात्	क्रियात्	अकार्षीत्	अकरिष्यत्	कारयति	क्रियते
अकुरुत्	कुर्वीत्	कृषीष्ट	अकृत	अकरिष्यत्	,,	,,
अकृन्तत्	कृन्तेत्	कृत्यात्	अकर्त्तीत्	अकर्त्तिष्यत्	कर्तयति	कृत्यते
अकल्पत्	कल्पेत्	कल्पिषीष्ट	अकल्पत्	अकल्पिष्यत्	कल्पयति	कल्प्यते
अकर्षत्	कर्षेत्	कृष्यात्	अकर्क्षीत्	अकर्क्ष्यत्	कर्षयति	कृष्यते
अकिरत्	किरेत्	कीर्यात्	अकारीत्	अकरिष्यत्	कारयति	कीर्यते
अकीर्तयत्	कीर्तयेत्	कीर्त्यात्	अचिकीर्तत्	अकीर्तयिष्यत्	कीर्तयति	कीर्त्यते
अक्रन्दत्	क्रन्देत्	क्रन्द्यात्	अक्रन्दीत्	अक्रन्दिष्यत्	क्रन्दयति	क्रन्द्यते
अक्रामत्	क्रामेत्	क्रम्यात्	अक्रमीत्	अक्रमिष्यत्	क्रमयति	क्रम्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
क्री (९ उ०, खरीदना)	प०-क्रीणाति	चिक्राय	क्रेता	क्रेष्यति	क्रीणातु	
	आ०-क्रीणीते	चिक्रिये	क्रेता	क्रेष्यते	क्रीणीताम्	
क्रीड् (१ प०, खेलना)	क्रीडति	चिक्रीड	क्रीडिता	क्रीडिष्यति	क्रीडतु	
क्रुध् (४ प०, क्रुद्ध होना)	क्रुध्यति	चुक्रोध	क्रोद्धा	क्रोत्स्यति	क्रुध्यतु	
क्रुश् (१ प०, रोना)	क्रोशति	चुक्रोश	क्रोष्टा	क्रोक्ष्यति	क्रोशतु	
क्लम् (४ प०, थकना)	क्लाम्यति	चक्लाम	क्लमिता	क्लमिष्यति	क्लाम्यतु	
क्लिद् (४ प०, गीला होना)	क्लिद्यति	चिक्लेद	क्लेदिता	क्लेदिष्यति	क्लिद्यतु	
क्लिश् (४ आ०, खिन्न होना)	क्लिश्यते	चिक्लिशे	क्लेशिता	क्लेशिष्यते	क्लिश्यताम्	
क्लिश् (९ प०, दुःख देना)	क्लिशनाति	चिक्लेश	क्लेशिता	क्लेशिष्यति	क्लिशनातु	
क्वण् (१ प०, झनझनकरना)	क्वणति	चक्वाण	क्वणिता	क्वणिष्यति	क्वणतु	
क्वथ् (१ प०, पकाना)	क्वथति	चक्वाथ	क्वथिता	क्वथिष्यति	क्वथतु	
क्षम् (१ आ०, क्षमा करना)	क्षमते	चक्षमे	क्षमिता	क्षमिष्यते	क्षमताम्	
क्षम् (४ प०, क्षमा करना)	क्षाम्यति	चक्षाम	क्षमिता	क्षमिष्यति	क्षाम्यतु	
क्षर् (१ प०, बहना)	क्षरति	चक्षार	क्षरिता	क्षरिष्यति	क्षरतु	
क्षल् (१० उ०, धोना)	प्र+क्षालयति-ते	क्षालयांचकार	क्षालयिता	क्षालयिष्यति	क्षालयतु	
क्षि (१ प०, नष्ट होना)	क्षयति	चिक्षाय	क्षेता	क्षेप्यति	क्षयतु	
क्षिप् (६ उ०, फेंकना)	क्षिपति-ते	चिक्षेप	क्षेप्ता	क्षेप्स्यति	क्षिपतु	
क्षीब् (१ आ०, मत्त होना)	क्षीबते	चिक्षीबे	क्षीबिता	क्षीबिष्यते	क्षीबताम्	
क्षुद् (७ उ०, पीसना)	क्षुणत्ति	चुक्षोद	क्षोत्ता	क्षोत्स्यति	क्षुणतु	
क्षुभ् (१ आ०, क्षुब्ध होना)	क्षोभते	चुक्षुभे	क्षोभिता	क्षोभिष्यते	क्षोभताम्	
क्षै (१ प०, क्षीण होना)	क्षायति	चक्षौ	क्षाता	क्षास्यति	क्षायतु	
क्षृणु (२ प०, तेज करना)	क्षणौति	चुक्ष्णाव	क्ष्णविता	क्ष्णविष्यति	क्षणौतु	
खण्ड् (१० उ०, तोड़ना)	खण्डयति-ते	खण्डयांचकार	खण्डयिता	खण्डयिष्यति	खण्डयतु	
खन् (१ उ०, खोदना)	खनति-ते	चखान	खनिता	खनिष्यति	खनतु	
खाद् (१ प०, खाना)	खादति	चखाद	खादिता	खादिष्यति	खादतु	
खिद् (४ आ०, खिन्न होना)	खिद्यते	चिखिदे	खेत्ता	खेत्स्यते	खिद्यताम्	
खेल् (१ प०, खेलना)	खेलति	चिखेल	खेलिता	खेलिष्यति	खेलतु	
गण् (१० उ०, गिनना)	गणयति-ते	गणयांचकार	गणयिता	गणयिष्यति	गणयतु	
गद् (१ प०, कहना)	नि+गदति	जगाद	गदिता	गदिष्यति	गदतु	
गम् (१ प०, जाना)	गच्छति	जगाम	गन्ता	गमिष्यति	गच्छतु	

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अक्रीणात्	क्रीणीयात्	क्रीयात्	अक्रीषीत्	अक्रेष्यत्	क्रापयति-ते	क्रीयते
अक्रीणीत	क्रीणीत	क्रेषीष्ट	अक्रेष्ट	अक्रेष्यत	"	"
अक्रीडत्	क्रीडेत्	क्रीड्यात्	अक्रीडीत्	अक्रीडिष्यत्	क्रीडयति	क्रीड्यते
अक्रुध्यत्	क्रुध्येत्	क्रुध्यात्	अक्रुधत्	अक्रोत्स्यत्	क्रोधयति	क्रुध्यते
अक्रोशत्	क्रोशेत्	क्रुश्यात्	अक्रुक्षत्	अक्रोक्ष्यत्	क्रोशयति	क्रुशयते
अक्लाम्यत्	क्लाम्येत्	क्लम्यात्	अक्लमत्	अक्लमिष्यत्	क्लमयति	क्लम्यते
अक्लिद्यत्	क्लिद्येत्	क्लिद्यात्	अक्लिदत्	अक्लेदिष्यत्	क्लेदयति	क्लिद्यते
अक्लिश्यत्	क्लिश्येत्	क्लेशिषीष्ट	अक्लेशिष्ट	अक्लेशिष्यत्	क्लेशयति	क्लिश्यते
अक्लिशनात्	क्लिशनीयात्	क्लिश्यात्	अक्लेक्षीत्	अक्लेशिष्यत्	"	"
अक्कणत्	क्कणेत्	क्कण्यात्	अक्कणीत्	अक्कणिष्यत्	क्काणयति	क्कण्यते
अक्कथत्	क्कथेत्	क्कथ्यात्	अक्कथीत्	अक्कथिष्यत्	क्काथयति	क्कथ्यते
अक्षमत	क्षमेत्	क्षमिषीष्ट	अक्षमिष्ट	अक्षमिष्यत्	क्षमयति	क्षम्यते
अक्षाम्यत्	क्षाम्येत्	क्षम्यात्	अक्षमत्	अक्षमिष्यत्	"	"
अक्षरत्	क्षरेत्	क्षर्यात्	अक्षारीत्	अक्षरिष्यत्	क्षारयति	क्षर्यते
अक्षालयत्	क्षालयेत्	क्षाल्यात्	अचिक्षलत्	अक्षालयिष्यत्	क्षालयति	क्षाल्यते
अक्षयत्	क्षयेत्	क्षीयात्	अक्षैषीत्	अक्षेप्यत्	क्षाययति	क्षीयते
अक्षिपत्	क्षिपेत्	क्षिप्यात्	अक्षैप्सीत्	अक्षेप्यत्	क्षेपयति	क्षिप्यते
अक्षीबत्	क्षीबेत्	क्षीबिषीष्ट	अक्षीबिष्ट	अक्षीबिष्यत्	क्षीबयति	क्षीब्यते
अक्षुणत्	क्षुन्द्यात्	क्षुद्यात्	अक्षुदत्	अक्षोत्स्यत्	क्षोदयति	क्षुद्यते
अक्षोभत्	क्षोभेत्	क्षोभिषीष्ट	अक्षुभत्	अक्षोभिष्यत्	क्षोभयति	क्षुभ्यते
अक्षायत्	क्षायेत्	क्षाय्यात्	अक्षासीत्	अक्षास्यत्	क्षपयति	क्षायते
अक्षणौत्	क्षणुयात्	क्षणूयात्	अक्षणविष्यत्	अक्षणावीत्	क्षणावयति	क्षणूयते
अखण्डयत्	खण्डयेत्	खण्ड्यात्	अचखण्डत्	अखण्डयिष्यत्	खण्डयति	खण्ड्यते
अखनत्	खनेत्	खन्यात्	अखनीत्	अखनिष्यत्	खानयति	खायते
अखादत्	खादेत्	खाद्यात्	अखादीत्	अखादिष्यत्	खादयति	खाद्यते
अखिद्यत्	खिद्येत्	खित्सीष्ट	अखित्	अखेत्स्यत्	खेदयति	खिद्यते
अखेलत्	खेलेत्	खेल्यात्	अखेलीत्	अखेलिष्यत्	खेलयति	खेल्यते
अगणयत्	गणयेत्	गण्यात्	अजीगणत्	अगणयिष्यत्	गणयति	गण्यते
अगदत्	गदेत्	गद्यात्	अगादीत्	अगदिष्यत्	गादयति	गद्यते
अगच्छत्	गच्छेत्	गम्यात्	अगमत्	अगमिष्यत्	गमयति	गम्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
गर्ज् (१ प०, गरजना)	गर्जति	जगर्ज	गर्जिता	गर्जिष्यति	गर्जतु	
गर्ह् (१ आ०, निन्दा करना)	गर्हते	जगर्हे	गर्हिता	गर्हिष्यते	गर्हताम्	
गर्ह् (१० उ०, ,, ,,)	गर्हयति-ते	गर्हयांचकार	गर्हयिता	गर्हयिष्यति	गर्हयतु	
गवेष् (१० उ०, खोजना)	गवेषयति	गवेषयांचकार	गवेषयिता	गवेषयिष्यति	गवेषयतु	
गाह् (१ आ०, घुसना)	गाहते	जगाहे	गाहिता	गाहिष्यते	गाहताम्	
गुञ्ज् (१ प०, गूँजना)	गुञ्जति	जुगुञ्ज	गुञ्जिता	गुञ्जिष्यति	गुञ्जतु	
गुण्ठ् (१० उ०, घूँघट०) अव+गुण्ठयति	गुण्ठयांचकार	गुण्ठयिता	गुण्ठयिष्यति	गुण्ठयतु		
गुप् (१ प०, रक्षा करना)	गोपायति	जुगोप	गोपिता	गोपिष्यति	गोपायतु	
गुप् (१ आ०, निन्दा करना)	जुगुप्सते	जुगुप्सांचक्रे	जुगुप्सिता	जुगुप्सिष्यते	जुगुप्सताम्	
गुम्फ् (६ प०, गूँधना)	गुम्फति	जुगुम्फ	गुम्फिता	गुम्फिष्यति	गुम्फतु	
गूह् (१ उ०, छिपाना)	गूहति-ते	जुगूह	गूहिता	गूहिष्यति	गूहतु	
गृ (६ प०, निगलना)	गिरति	जगार	गरिता	गरिष्यति	गिरतु	
गृ (९ प०, कहना)	गृणाति	,,	,,	,,	गृणातु	
गै (१ प०, गाना)	गायति	जगौ	गाता	गास्यति	गायतु	
ग्रन्थ् (९ प०, संग्रह०)	ग्रथ्नाति	जग्रन्थ	ग्रन्थिता	ग्रन्थिष्यति	ग्रथ्नातु	
ग्रस् (१ आ०, खाना)	ग्रसते	जग्रसे	ग्रसिता	ग्रसिष्यते	ग्रसताम्	
ग्रह् (९ उ०, लेना) प०-	गृह्णाति	जग्राह	ग्रहीता	ग्रहीष्यति	गृह्णातु	
आ०-	गृह्णीते	जगृहे	ग्रहीता	ग्रहीष्यते	गृह्णीताम्	
ग्लै (१ प०, थकना)	ग्लायति	जग्लौ	ग्लाता	ग्लास्यति	ग्लायतु	
घट् (१ आ०, लगना)	घटते	जघटे	घटिता	घटिष्यते	घटताम्	
घुष् (१० उ०, घोषणा०)	घोषयति	घोषयांचकार	घोषयिता	घोषयिष्यति	घोषयतु	
घूर्ण् (१ आ०, घूमना)	घूर्णते	जुघूर्णे	घूर्णिता	घूर्णिष्यते	घूर्णताम्	
घूर्ण् (६ प०, घूमना)	घूर्णति	जुघूर्ण	घूर्णिता	घूर्णिष्यति	घूर्णतु	
घ्रा (१ प०, सूँघना)	जिघ्रति	जघ्रौ	घ्राता	घ्रास्यति	जिघ्रतु	
चकास् (२ प०, चमकना)	चकास्ति	चकासांचकार	चकासिता	चकासिष्यति	चकास्तु	
चक्ष् (२ आ०, कहना) आ+आचष्टे	आचक्षते	आचक्षे	आख्याता	आख्यास्यति	आचक्षाम्	
चम् (आ+१ प०, पीना) आ+आचामति	आचचाम	आचामिता	आचमिष्यति	आचामतु		
चर् (१ प०, चलना)	चरति	चचार	चरिता	चरिष्यति	चरतु	
चर्व् (१ प०, चबाना)	चर्वति	चचर्व्	चर्विता	चर्विष्यति	चर्वतु	
चल् (१ प०, हिलना)	चलति	चचाल	चलिता	चलिष्यति	चलतु	

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अगर्जत्	गर्जेत्	गर्ज्यात्	अगर्जीत्	अगर्जिष्यत्	गर्जयति	गर्ज्यते
अगर्हत	गर्हेत्	गर्हिषीष्ट	अगर्हिष्ट	अगर्हिष्यत्	गर्हयति	गर्ह्यते
अगर्हयत्	गर्हयेत्	गर्ह्यात्	अजगर्हत्	अगर्हयिष्यत्	"	"
अगवेषयत्	गवेषयेत्	गवेष्यात्	अजगवेषत्	अगवेषयिष्यत्	गवेषयति	गवेष्यते
अगाहत	गाहेत्	गाहिषीष्ट	अगाहिष्ट	अगाहिष्यत्	गाहयति	गाह्यते
अगुञ्जत्	गुञ्जेत्	गुञ्ज्यात्	अगुञ्जीत्	अगुञ्जिष्यत्	गुञ्जयति	गुञ्ज्यते
अगुण्ठयत्	गुण्ठयेत्	गुण्ठ्यात्	अजुगुण्ठत्	अगुण्ठयिष्यत्	गुण्ठयति	गुण्ठ्यते
अगोपायत्	गोपायेत्	गुप्यात्	अगौप्सीत्	अगोपिष्यत्	गोपयति	गुप्यते
अजुगुप्सत्	जुगुप्सेत्	जुगुप्सिषीष्ट	अजुगुप्सिष्ट	अजुगुप्सिष्यत्	जुगुप्सयति	जुगुप्स्यते
अगुम्फत्	गुम्फेत्	गुफ्यात्	अगुम्फीत्	अगुम्फिष्यत्	गुम्फयति	गुफ्यते
अगूहत्	गूहेत्	गुह्यात्	अगूहीत्	अगूहिष्यत्	गूहयति	गुह्यते
अगिरत्	गिरेत्	गीर्यात्	अगारीत्	अगरिष्यत्	गारयति	गीर्यते
अगृणात्	गृणीयात्	"	"	"	"	"
अगायत्	गायेत्	गेयात्	अगासीत्	अगास्यत्	गापयति	गीयते
अग्रन्थात्	ग्रन्थीयात्	ग्रथ्यात्	अग्रन्थीत्	अग्रन्थिष्यत्	ग्रन्थयति	ग्रथ्यते
अग्रसत्	ग्रसेत्	ग्रसिषीष्ट	अग्रसिष्ट	अग्रसिष्यत्	ग्रासयति	ग्रस्यते
अगृह्णात्	गृह्णीयात्	गृह्यात्	अग्रहीत्	अग्रहीष्यत्	ग्राहयति	गृह्यते
अगृह्णीत	गृह्णीत	ग्रहीषीष्ट	अग्रहीष्ट	अग्रहीष्यत्	"	"
अग्लायत्	ग्लायेत्	ग्लाय्यात्	अग्लासीत्	अग्लास्यत्	ग्लापयति	ग्लायते
अघटत्	घटेत्	घटिषीष्ट	अघटिष्ट	अघटिष्यत्	घटयति	घट्यते
अघोषयत्	घोषयेत्	घोष्यात्	अजूघुषत्	अघोषयिष्यत्	घोषयति	घोष्यते
अघूर्णत्	घूर्णेत्	घूर्णिषीष्ट	अघूर्णिष्ट	अघूर्णिष्यत्	घूर्णयति	घूर्ण्यते
अघूर्णत्	घूर्णेत्	घूर्ण्यात्	अघूर्णीत्	अघूर्णिष्यत्	"	"
अजिघ्रत्	जिघ्रेत्	ज्रेयात्	अज्रात्	अज्रास्यत्	ज्रापयति	ज्रायते
अचकात्	चकास्यात्	चकास्यात्	अचकासीत्	अचकासिष्यत्	चकासयति	चकास्यते
आचष्ट	आचक्षीत्	आख्यायात्	आख्यत्	आख्याम्यत्	ख्यापयति	ख्यायते
आचामत्	आचामेत्	आचम्यात्	आचमीत्	आचमिष्यत्	आचामयति	आचाम्यते
अचरत्	चरेत्	चर्यात्	अचारीत्	अचरिष्यत्	चारयति	चर्यते
अचर्वत्	चर्वेत्	चर्व्यात्	अचर्वीत्	अचर्विष्यत्	चर्वयति	चर्व्यते
अचलत्	चलेत्	चल्यात्	अचालीत्	अचलिष्यत्	चलयति	चल्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
चि (५ उ०, चुनना) प०-	चिनोति	चिचाय	चेता	चेष्यति	चिनोतु	
	आ०- चिनुते	चिच्ये	चेता	चेष्यते	चिनुताम्	
चित् (१ प०, समझना)	चेतति	चिचेत	चेतिता	चेतिष्यति	चेततु	
चित् (१० उ०, सोचना)	चेतयते	चेतयांचकार	चेतयिता	चेतयिष्यते	चेतयताम्	
चित्र् (१० उ०, चित्र बनाना)	चित्रयति	चित्रयांचकार	चित्रयिता	चित्रयिष्यति	चित्रयतु	
चिन्त् (१० उ०, सोचना)	चिन्तयति	चिन्तयांचकार	चिन्तयिता	चिन्तयिष्यति	चिन्तयतु	
	आ०- —ते	—चक्रे	,,	—ते	—ताम्	
चिहन् (१० उ०, चिह्न लगाना)	चिह्नयति	चिह्नयांचकार	चिह्नयिता	चिह्नयिष्यति	चिह्नयतु	
चुद् (१० उ०, प्रेरणा देना)	चोदयति	चोदयांचकार	चोदयिता	चोदयिष्यति	चोदयतु	
चुम्ब् (१ प०, चूमना)	चुम्बति	चुचुम्ब	चुम्बिता	चुम्बिष्यति	चुम्बतु	
चुर् (१० उ०, चुराना)	चोरयति	चोरयांचकार	चोरयिता	चोरयिष्यति	चोरयतु	
	आ०- —ते	—चक्रे	,,	—ते	—ताम्	
चूर्ण् (१० उ०, चूर करना)	चूर्णयति	चूर्णयांचकार	चूर्णयिता	चूर्णयिष्यति	चूर्णयतु	
चूष् (१ प०, चूसना)	चूषति	चुचूष	चूषिता	चूषिष्यति	चूषतु	
चेष्ट् (१ आ०, चेष्टा करना)	चेष्टते	चिचेष्टे	चेष्टिता	चेष्टिष्यते	चेष्टताम्	
छद् (१० उ०, ढकना) आ+	छादयति	छादयांचकार	छादयिता	छादयिष्यति	छादयतु	
छिद् (७ उ०, काटना)	छिनाति	चिच्छेद	छेता	छेत्स्यति	छिनतु	
छुर् (६ प०, काटना)	छुरति	चुच्छोर	छुरिता	छुरिष्यति	छुरतु	
छो (४ प०, काटना)	छ्यति	चच्छौ	छाता	छास्यति	छ्यतु	
जन् (४ आ०, पैदा होना)	जायते	जज्ञे	जनिता	जनिष्यते	जायताम्	
जप् (१ प०, जपना)	जपति	जजाप	जपिता	जपिष्यति	जपतु	
जल्प् (१ प०, बात करना)	जल्पति	जजल्प	जल्पिता	जल्पिष्यति	जल्पतु	
जागृ (२ प०, जागना)	जागर्ति	जजागार	जागरिता	जागरिष्यति	जागर्तु	
जि (१ प०, जीतना)	जयति	जिगाय	जेता	जेष्यति	जयतु	
जीव् (१ प०, जीना)	जीवति	जिजीव	जीविता	जीविष्यति	जीवतु	
जुष् (१० उ०, प्रसन्न होना)	जोषयति	जोषयांचकार	जोषयिता	जोषयिष्यति	जोषयतु	
जृम्भ् (१ आ०, जँभाई लेना)	जृम्भते	जजृम्भे	जृम्भिता	जृम्भिष्यते	जृम्भताम्	
जू (४ प०, वृद्ध होना)	जीर्यति	जजार	जरिता	जरिष्यति	जीर्यतु	
ज्ञा (९ उ०, जानना) प०-	जानाति	जज्ञौ	ज्ञाता	ज्ञास्यति	जानातु	
	आ०- जानीते	जज्ञे	ज्ञाता	ज्ञास्यते	जानीताम्	

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अचिनोत्	चिनुयात्	चीयात्	अचैषीत्	अचेष्यत्	चाययति	चीयते
अचिनुत	चिन्वीत	चेषीष्ट	अचेष्ट	अचेष्यत	„	„
अचेतत्	चेतेत्	चित्यात्	अचेतीत्	अचेतिष्यत्	चेतयति	चित्यते
अचेतयत	चेतयेत	चेतयिषीष्ट	अचीचितत	अचेतयिष्यत	„	चेत्यते
अचित्रयत्	चित्रयेत्	चित्र्यात्	अचिचित्रत्	अचित्रयिष्यत्	चित्रयति	चित्रयते
अचिन्तयत्	चिन्तयेत्	चिन्त्यात्	अचिचिन्तत्	अचिन्तयिष्यत्	चिन्तयति	चिन्तयते
—यत	—येत	चिन्तयिषीष्ट	—न्तत	—ष्यत	„	„
अचिह्वयत्	चिह्वयेत्	चिह्व्यात्	अचिचिह्वत्	अचिह्वयिष्यत्	चिह्वयति	चिह्वयते
अचोदयत्	चोदयेत्	चोद्यात्	अचूचुदत्	अचोदयिष्यत्	चोदयति	चोद्यते
अचुम्बत्	चुम्बेत्	चुम्ब्यात्	अचुम्बीत्	अचुम्बिष्यत्	चुम्बयति	चुम्ब्यते
अचोरयत्	चोरयेत्	चोर्यात्	अचूचुरत्	अचोरयिष्यत्	चोरयति	चोर्यते
—त	—त	चोरयिषीष्ट	—रत	—त	„	„
अचूर्णयत्	चूर्णयेत्	चूर्ण्यात्	अचुचूर्णत्	अचूर्णयिष्यत्	चूर्णयति	चूर्णयते
अचूषत्	चूषेत्	चूष्यात्	अचूषीत्	अचूषिष्यत्	चूषयति	चूष्यते
अचेष्टत	चेष्टेत	चेष्टिषीष्ट	अचेष्टिष्ट	अचेष्टिष्यत	चेष्टयति	चेष्टयते
अच्छादयत्	छादयेत्	छाद्यात्	अचिच्छदत्	अच्छादयिष्यत्	छादयति	छाद्यते
अच्छिनत्	छिन्द्यात्	छिद्यात्	अच्छैत्सीत्	अच्छेत्स्यत्	छेदयति	छिद्यते
अच्छुग्त्	छुरेत्	छुर्यात्	अच्छुरीत्	अच्छुरिष्यत्	छोरयति	छुर्यते
अच्छ्यत्	छ्येत्	छायात्	अच्छात्	अच्छास्यत्	छाययति	छायते
अजायत	जायेत	जनिषीष्ट	अजनिष्ट	अजनिष्यत	जनयति	जन्यते
अजपत्	जपेत्	जप्यात्	अजपीत्	अजपिष्यत्	जापयति	जप्यते
अजल्पत्	जल्पेत्	जल्प्यात्	अजल्पीत्	अजल्पिष्यत्	जल्पयति	जल्प्यते
अजागः	जागृयात्	जागर्यात्	अजागरीत्	अजागरिष्यत्	जागरयति	जागर्यते
अजयत्	जयेत्	जीयात्	अजैषीत्	अजेष्यत्	जापयति	जीयते
अजीवत्	जीवेत्	जीव्यात्	अजीवीत्	अजीविष्यत्	जीवयति	जीव्यते
अजोषयत्	जोषयेत्	जोष्यात्	अजजूषत्	अजोषयिष्यत्	जोषयति	जोष्यते
अजृम्भत	जृम्भेत	जृम्भिषीष्ट	अजृम्भष्ट	अजृम्भिष्यत	जृम्भयति	जृम्भ्यते
अजीर्यत्	जीर्येत्	जीर्यात्	अजरीत्	अजरिष्यत्	जरयति	जीर्यते
अजानात्	जानीयात्	ज्ञेयात्	अज्ञासीत्	अज्ञास्यत्	ज्ञापयति	ज्ञायते
अजानीत	जानीत	ज्ञासीष्ट	अज्ञास्त	अज्ञास्यत	„	„

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
ज्ञा (१० उ०, आज्ञा देना) आ+	ज्ञापयति	ज्ञापयति	ज्ञापयांचकार	ज्ञापयिता	ज्ञापयिष्यति	ज्ञापयतु
ज्वर् (१ प०, रुग्ण होना)	ज्वरति	जज्वार	ज्वरिता	ज्वरिष्यति	ज्वरतु	
ज्वल् (१ प०, जलना)	ज्वलति	जज्वाल	ज्वलिता	ज्वलिष्यति	ज्वलतु	
टंक (१० उ०, चिह्न लगाना)	टंकयति	टंकयांचकार	टंकयिता	टंकयिष्यति	टंकयतु	
डी (१ आ०, उड़ना) उत् +	डयते	डिङ्ये	डयिता	डयिष्यते	डयताम्	
डी (४ आ०, ,,) उत् +	डीयते	,,	,,	,,	डीयताम्	
ढौक् (१ आ०, पहुँचना)	ढौकते	डुढौके	ढौकिता	ढौकिष्यते	ढौकताम्	
तक्ष् (१ पा०, छीलना)	तक्षति	ततक्ष	तक्षिता	तक्षिष्यति	तक्षतु	
ताड् (१० उ०, पीटना)	ताडयति	ताडयांचकार	ताडयिता	ताडयिष्यति	ताडयतु	
तन् (८ उ०, फैलाना) प०-	तनोति	ततान	तनिता	तनिष्यति	तनोतु	
आ०-	तनुते	तेने	तनिता	तनिष्यते	तनुताम्	
तन्त्र (१० आ०, पालन०)	तन्त्रयते	तन्त्रयांचक्रे	तन्त्रयिता	तन्त्रयिष्यते	तन्त्रयताम्	
तप् (१ प०, तपना)	तपति	तताप	तप्ता	तप्स्यति	तपतु	
तर्क् (१० उ०, सोचना)	तर्कयति	तर्कयांचकार	तर्कयिता	तर्कयिष्यति	तर्कयतु	
तर्ज् (१ प०, डांटना)	तर्जति	ततर्ज	तर्जिता	तर्जिष्यति	तर्जतु	
तर्ज् (१० आ०, डांटना)	तर्जयते	तर्जयांचक्रे	तर्जयिता	तर्जयिष्यते	तर्जयताम्	
तंस् (१० उ०, सजाना) अव +	तंसयति	तंसयांचकार	तंसयिता	तंसयिष्यति	तंसयतु	
तिज् (१ आ०, क्षमा करना)	तितिक्षते	तितिक्षांचक्रे	तितिक्षिता	तितिक्षिष्यते	तितिक्षताम्	
तुद् (६ उ०, दुःख देना)	तुदति-ते	तुतोद	तोत्ता	तोत्स्यति	तुदतु	
तुरण् (११ प०, जल्दी करना)	तुरण्यति	तुरणांचकार	तुरणिता	तुरणिष्यति	तुरण्यतु	
तुल् (१० उ०, तोलना)	तोलयति	तोलयांचकार	तोलयिता	तोलयिष्यति	तोलयतु	
तुष् (४ प०, तुष्ट होना)	तुष्यति	तुतोष	तोष्टा	तोक्ष्यति	तुष्यतु	
तृप् (४ प०, तृप्त होना)	तृप्यति	ततर्प	तर्पिता	तर्पिष्यति	तृप्यतु	
तृष् (४ प०, प्यासा होना)	तृष्यति	ततर्ष	तर्षिता	तर्षिष्यति	तृष्यतु	
तृ (१ प०, तैरना)	तरति	ततार	तरिता	तरिष्यति	तरतु	
त्यज् (१ प०, छोड़ना)	त्यजति	तत्याज	त्यक्ता	त्यक्ष्यति	त्यजतु	
त्रप् (१ आ०, लजाना)	त्रपते	त्रेपे	त्रपिता	त्रपिष्यते	त्रपताम्	
त्रस् (४ प०, डरना)	त्रस्यति	तत्रास	त्रसिता	त्रसिष्यति	त्रस्यतु	
त्रुद् (६ प०, टूटना)	त्रुटति	त्रुत्रोट	त्रुटिता	त्रुटिष्यति	त्रुटतु	
त्रुद् (१० आ०, तोड़ना)	त्रोटयते	त्रोटयांचक्रे	त्रोटयिता	त्रोटयिष्यते	त्रोटयताम्	

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अज्ञापयत्	ज्ञापयेत्	ज्ञाप्यात्	अजिज्ञपत्	अज्ञापयिष्यत्	ज्ञापयति	ज्ञाप्यते
अज्वरत्	ज्वरेत्	ज्वर्यात्	अज्वारीत्	अज्वरिष्यत्	ज्वरयति	ज्वर्यते
अज्वलत्	ज्वलेत्	ज्वल्यात्	अज्वालीत्	अज्वलिष्यत्	ज्वालयति	ज्वल्यते
अटंकयत्	टंकयेत्	टंक्यात्	अटटंकत्	अटंकयिष्यत्	टंकयति	टंक्यते
अडयत्	डयेत्	डयिषीष्ट	अडयिष्ट	अडयिष्यत्	डाययति	डीयते
अडीयत्	डीयेत्	„	„	„	„	„
अढौकत्	ढौकेत्	ढौकिषीष्ट	अढौकिष्ट	अढौकिष्यत्	ढौकयति	ढौक्यते
अतक्षत्	तक्षेत्	तक्ष्यात्	अतक्षीत्	अतक्षिष्यत्	तक्षयति	तक्ष्यते
अताडयत्	ताडयेत्	ताड्यात्	अतीतडत्	अताडयिष्यत्	ताडयति	ताड्यते
अतनोत्	तनुयात्	तन्यात्	अतानीत्	अतनिष्यत्	तानयति	तन्यते
अतनुत्	तन्वीत्	तनिषीष्ट	अतनिष्ट	अतनिष्यत्	„	„
अतन्त्रयत्	तन्त्रयेत्	तन्त्रयिषीष्ट	अततन्त्रत्	अतन्त्रयिष्यत्	तन्त्रयति	तन्त्र्यते
अतपत्	तपेत्	तप्यात्	अताप्सीत्	अतप्यत्	तापयति	तप्यते
अतर्कयत्	तर्कयेत्	तर्क्यात्	अततर्कत्	अतर्कयिष्यत्	तर्कयति	तर्क्यते
अतर्जत्	तर्जेत्	तर्ज्यात्	अतर्जीत्	अतर्जिष्यत्	तर्जयति	तर्ज्यते
अतर्जयत्	तर्जयेत्	तर्जयिषीष्ट	अततर्जत्	अतर्जयिष्यत्	„	„
अतंसयत्	तंसयेत्	तंस्यात्	अततंसत्	अतंसयिष्यत्	तंसयति	तंस्यते
अतितिक्षत्	तितिक्षेत्	तितिक्षिषीष्ट	अतितिक्षिष्ट	अतितिक्षिष्यत्	तेजयति	तितिक्ष्यते
अतुदत्	तुदेत्	तुद्यात्	अतौत्सीत्	अतोत्स्यत्	तोदयति	तुद्यते
अतुरण्यत्	तुरण्येत्	तुरण्यात्	अतुरणीत्	अतुरणिष्यत्	तुरणयति	तुरण्यते
अतोलयत्	तोलयेत्	तोल्यात्	अतुलत्	अतोलयिष्यत्	तोलयति	तोल्यते
अतुष्यत्	तुष्येत्	तुष्यात्	अतुषत्	अतोष्यत्	तोषयति	तुष्यते
अतृप्यत्	तृप्येत्	तृप्यात्	अतृपत्	अतर्पिष्यत्	तर्पयति	तृप्यते
अतृष्यत्	तृष्येत्	तृष्यात्	अतृषत्	अतर्षिष्यत्	तर्षयति	तृष्यते
अतरत्	तरेत्	तीर्यात्	अतारीत्	अतरिष्यत्	तारयति	तीर्यते
अत्यजत्	त्यजेत्	त्यज्यात्	अत्याक्षीत्	अत्यक्ष्यत्	त्याजयति	त्यज्यते
अत्रपत्	त्रपेत्	त्रपिषीष्ट	अत्रपिष्ट	अत्रपिष्यत्	त्रपयति	त्रप्यते
अत्रस्यत्	त्रस्येत्	त्रस्यात्	अत्रसीत्	अत्रसिष्यत्	त्रासयति	त्रस्यते
अत्रुटत्	त्रुटेत्	त्रुट्यात्	अत्रुटीत्	अत्रुटिष्यत्	त्रोटयति	त्रुट्यते
अत्रोटयत्	त्रोटयेत्	त्रोटयिषीष्ट	अत्रुटत्	अत्रोटयिष्यत्	„	त्रोट्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
त्रै (१ आ०, बचाना)	त्रायते	तत्रे	त्राता	त्रास्यते	त्रायताम्	
त्वक्ष् (१ प०, छीलना)	त्वक्षति	तत्वक्ष	त्वक्षिता	त्वक्षिष्यति	त्वक्षतु	
त्वर (१ आ०, जल्दी करना)	त्वरते	तत्वरे	त्वरिता	त्वरिष्यते	त्वरताम्	
त्विष् (१ उ०, चमकना)	त्वेषति-ते	तित्वेष	त्वेषा	त्वेष्यति	त्वेषतु	
दण्ड् (१० उ०, दण्ड देना)	दण्डयति-ते	दण्डयांचकार	दण्डयिता	दण्डयिष्यति	दण्डयतु	
दम् (४ प०, दमन करना)	दाम्यति	ददाम	दमिता	दमिष्यति	दाम्यतु	
दम्भ् (५ प०, धोखा देना)	दभ्नोति	ददम्भ	दम्भिता	दम्भिष्यति	दभ्नोतु	
दय् (१ आ०, दया करना)	दयते	दयांचक्रे	दयिता	दयिष्यते	दयताम्	
दंश् (१ प०, डँसना)	दशति	ददंश	दंष्टा	दंक्ष्यति	दशतु	
दह् (१ प०, जलाना)	दहति	ददाह	दग्धा	धक्ष्यति	दहतु	
दा (१ प०, देना)	यच्छति	ददौ	दाता	दास्यति	यच्छतु	
दा (२ प०, काटना)	दाति	„	„	„	दातु	
दा (३ उ०, देना) प०-	ददाति	„	„	„	ददातु	
आ०-	दत्ते	ददे	„	दास्यते	दत्ताम्	
दिव् (४ प०, चमकना आदि)	दीव्यति	दिदेव	देविता	देविष्यति	दीव्यतु	
दिव् (१० आ०, रूलाना)	देवयते	देवयांचक्रे	देवयिता	देवयिष्यते	देवयताम्	
दिश् (६ उ०, देना, कहना)	दिशति-ते	दिदेश	देष्टा	देक्ष्यति	दिशतु	
दीक्ष् (१ आ०, दीक्षा देना)	दीक्षते	दिदीक्षे	दीक्षिता	दीक्षिष्यते	दीक्षताम्	
दीप् (४ आ०, चमकना)	दीप्यते	दिदीपे	दीपिता	दीपिष्यते	दीप्यताम्	
दु (५ प०, दुःखित होना)	दुनोति	दुदाव	दोता	दोष्यति	दुनोतु	
दुष् (४ प०, बिगड़ना)	दुष्यति	दुदोष	दोष्टा	दोक्ष्यति	दुष्यतु	
दुह् (२ उ०, दुहना) प०-	दोग्धि	दुदोह	दोग्धा	धोक्ष्यति	दोग्धु	
आ०-	दुग्धे	दुदुहे	„	-ते	दुग्धाम्	
दू (४ आ०, दुःखित होना)	दूयते	दुदुवे	दविता	दविष्यते	दूयताम्	
दृ (६ आ०, आदर करना) आ+आद्रियते	आदद्रे	आदर्ता	आदरिता	आदरिष्यते	आद्रियताम्	
दृप् (४ प०, गर्व करना)	दृप्यति	ददर्प	दर्पिता	दर्पिष्यति	दृप्यतु	
दृश् (१ प०, देखना)	पश्यति	ददर्श	द्रष्टा	द्रक्ष्यति	पश्यतु	
दृ (९ प०, फाड़ना)	दृणाति	ददार	दरिता	दरिष्यति	दृणातु	
दो (४ प०, काटना)	घति	ददौ	दाता	दास्यति	घतु	
द्युत् (१ आ०, चमकना)	द्योतते	दिद्युते	द्योतिता	द्योतिष्यते	द्योतताम्	

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अत्रायत्	त्रायेत्	त्रासीष्ट	अत्रास्त	अत्रास्यत्	त्रापयति	त्रायते
अत्वक्षत्	त्वक्षेत्	त्वक्ष्यात्	अत्वक्षीत्	अत्वक्षिष्यत्	त्वक्षयति	त्वक्ष्यते
अत्वरत्	त्वरेत्	त्वरिषीष्ट	अत्वरिष्ट	अत्वरिष्यत्	त्वरयति	त्वर्यते
अत्वेषत्	त्वेषेत्	त्विष्यात्	अत्विक्षत्	अत्वेक्ष्यत्	त्वेषयति	त्विष्यते
अदण्डयत्	दण्डयेत्	दण्ड्यात्	अददण्डत्	अदण्डयिष्यत्	दण्डयति	दण्ड्यते
अदाम्यत्	दाम्येत्	दम्यात्	अदमत्	अदमिष्यत्	दमयते	दम्यते
अदभ्रोत्	दभ्र्यात्	दभ्यात्	अदम्भीत्	अदम्भिष्यत्	दम्भयति	दभ्यते
अदयत्	दयेत्	दयिषीष्ट	अदयिष्ट	अदयिष्यत्	दाययति	दय्यते
अदशत्	दशेत्	दश्यात्	अदाङ्क्षीत्	अदंक्ष्यत्	दंशयति	दश्यते
अदहत्	दहेत्	दह्यात्	अधाक्षीत्	अधक्ष्यत्	दाहयति	दह्यते
अयच्छत्	यच्छेत्	देयात्	अदात्	अदास्यत्	दापयति	दीयते
अदात्	दायात्	दायात्	अदासीत्	„	„	दायते
अददात्	दद्यात्	देयात्	अदात्	„	„	दीयते
अदत्त	ददीत्	दासीष्ट	अदित	अदास्यत्	„	„
अदीव्यत्	दीव्येत्	दीव्यात्	अदेवीत्	अदेविष्यत्	देवयति	दीव्यते
अदेवयत्	देवयेत्	देवयिषीष्ट	अदीदिवत्	अदेवयिष्यत्	देवयति	देव्यते
अदिशत्	दिशेत्	दिश्यात्	अदिक्षत्	अदेक्ष्यत्	देशयति	दिश्यते
अदीक्षत्	दीक्षेत्	दीक्षिषीष्ट	अदीक्षिष्ट	अदीक्षिष्यत्	दीक्षयति	दीक्ष्यते
अदीप्यत्	दीप्येत्	दीपिषीष्ट	अदीपिष्ट	अदीपिष्यत्	दीपयति	दीप्यते
अदुनोत्	दुनुयात्	दूयात्	अदौषीत्	अदोष्यत्	दावयति	दूयते
अदुष्यत्	दुष्येत्	दुष्यात्	अदुषत्	अदोक्ष्यत्	दूषयति	दुष्यते
अधोक्	दुह्यात्	दुह्यात्	अधुक्षत्	अधोक्ष्यत्	दोहयति	दुह्यते
अदुग्ध	दुहीत्	धुक्षीष्ट	अधुक्षत्	-क्ष्यत्	„	„
अदूयत्	दूयेत्	दविषीष्ट	अदविष्ट	अदविष्यत्	दावयति	दूयते
आद्रियत्	आद्रियेत्	आदृषीष्ट	आदृत	आदरिष्यत्	आदारयति	आद्रियते
अदृप्यत्	दृप्येत्	दृप्यात्	अदृपत्	अदरिष्यत्	दर्पयति	दृप्यते
अपश्यत्	पश्येत्	दृश्यात्	अद्राक्षीत्	अद्रक्ष्यत्	दर्शयति	दृश्यते
अदृणात्	दृणीयात्	दीर्यात्	अदारीत्	अदरिष्यत्	दारयति	दीर्यते
अद्यत्	द्येत्	देयात्	अदात्	अदास्यत्	दापयति	दीयते
अद्योतत्	द्योतेत्	द्योतिषीष्ट	अद्योतिष्ट	अद्योतिष्यत्	द्योतयति	द्युत्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
द्रा (२ प०, सोना) नि+		निद्राति	निद्रो	निद्राता	निद्रास्यति	निद्रातु
द्रु (१ प०, पिघलना)		द्रवति	द्रवाव	द्रोता	द्रोष्यति	द्रवतु
द्रुह (४ प०, द्रोह करना)		द्रुह्यति	द्रुद्रोह	द्रोहिता	द्रोहिष्यति	द्रुह्यतु
द्विष् (२ उ०, द्वेष करना)		द्वेष्टि	दिद्वेष	द्वेष्टा	द्वेक्ष्यति	द्वेष्टु
धा (३ उ०, धारण करना) प०-		दधाति	दधौ	धाता	धास्यति	दधातु
	आ०-	धत्ते	दधे	,,	धास्यते	धत्ताम्
धाव् (१ उ०, दौड़ना, धोना)		धावति-ते	दधाव	धाविता	धाविष्यति	धावतु
धु (५ उ०, हिलाना)		धुनोति	दुधाव	धोता	धोष्यति	धुनोतु
धुक्ष् (१ आ०, जलना)		धुक्षते	दुधुक्षे	धुक्षिता	धुक्षिष्यते	धुक्षताम्
धू (५ उ०, हिलाना)		धूनोति	दुधाव	धोता	धोष्यति	धूनोतु
धूप् (१ प०, सुखाना)		धूपायति	धूपायांचकार	धूपायिता	धूपायिष्यति	धूपायतु
धृ (१ उ०, रखना)		धरति-ते	दधार	धर्ता	धरिष्यति	धरतु
धृ (१० उ०, रखना)		धारयति-ते	धारयांचकार	धारयिता	धारयिष्यति	धारयतु
धृष् (१० उ०, दबाना)		धर्षयति-ते	धर्षयांचकार	धर्षयिता	धर्षयिष्यति	धर्षयतु
धे (१ प०, पीना, चूसना)		धयति	दधौ	धाता	धास्यति	धयतु
ध्मा (१ प०, फूँकना)		धमति	दध्मौ	ध्माता	ध्मास्यति	धमतु
ध्यै (१ प०, सोचना)		ध्यायति	दध्यौ	ध्याता	ध्यास्यति	ध्यायतु
ध्वन् (१ प०, शब्द करना)		ध्वनति	दध्वान	ध्वनिता	ध्वनिष्यति	ध्वनतु
ध्वंस् (१ आ०, नष्ट होना)		ध्वंसते	दध्वंसे	ध्वंसिता	ध्वंसिष्यते	ध्वंसताम्
नद् (१ प०, नाद करना)		नदति	ननाद	नदिता	नदिष्यति	नदतु
नन्द (१ प०, प्रसन्न होना)		नन्दति	ननन्द	नन्दिता	नन्दिष्यति	नन्दतु
नम् (१ प०, झुकना) प्र+		नमति	ननाम	नन्ता	नंस्यति	नमतु
नश् (४ प०, नष्ट होना)		नश्यति	ननाश	नशिता	नशिष्यति	नश्यतु
नह् (४ उ०, बाँधना)		नह्यति-ते	ननाह	नह्ना	नत्स्यति	नह्यतु
निज् (३ उ०, धोना)		नेनेक्ति	निनेज	नेक्ता	नेक्ष्यति	नेनेक्तु
निन्द् (१ प०, निन्दा०)		निन्दति	निनिन्द	निन्दिता	निन्दिष्यति	निन्दतु
नी (१ उ०, ले जाना) प०-		नयति	निनाय	नेता	नेष्यति	नयतु
	आ०-	नयते	निन्ये	,,	नेष्यते	नयताम्
नु (२ प०, स्तुति०)		नौति	नुनाव	नविता	नविष्यति	नौतु
नुद् (६ उ०, प्रेरणा देना)		नुदति-ते	नुनोद	नोत्ता	नोत्स्यति	नुदतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
न्यद्रात्	निद्रायात्	निद्रायात्	न्यद्रासीत्	न्यद्रास्यत्	निद्रापयति	निद्रायते
अद्रवत्	द्रवेत्	द्रूयात्	अदुद्रुवत्	अद्रोष्यत्	द्रावयति	द्रूयते
अद्रुह्यत्	द्रुह्येत्	द्रुह्यात्	अद्रुहत्	अद्रोहिष्यत्	द्रोहयति	द्रुह्यते
अद्वेष्ट	द्विष्यात्	द्विष्यात्	अद्विक्षत्	अद्वेक्ष्यत्	द्वेषयति	द्विष्यते
अदधात्	दध्यात्	धेयात्	अधात्	अधास्यत्	धापयति	धीयते
अधत्त	दधीत	धासीष्ट	अधित	अधास्यत	,,	,,
अधावत्	धावेत्	धाव्यात्	अधावीत्	अधाविष्यत्	धावयति	धाव्यते
अधुनोत्	धुनयात्	धूयात्	अधौषीत्	अधोष्यत्	धावयति	धूयते
अधुक्षत	धुक्षेत्	धुक्षिषीष्ट	अधुक्षिष्ट	अधुक्षिष्यत्	धुक्षयति	धुक्ष्यते
अधूनोत्	धूनयात्	धूयात्	अधावीत्	अधोष्यत्	धूनयति	धूयते
अधूपायत्	धूपायेत्	धूपाय्यात्	अधूपायीत्	अधूपायिष्यत्	धूपाययति	धूपाय्यते
अधरत्	धरेत्	ध्रियात्	अधार्षीत्	अधरिष्यत्	धारयति	ध्रियते
अधारयत्	धारयेत्	धार्यात्	अदीधरत्	अधारयिष्यत्	,,	धार्यते
अधर्षयत्	धर्षयेत्	धर्ष्यात्	अदधर्षत्	अधर्षयिष्यत्	धर्षयति	धर्ष्यते
अधयत्	धयेत्	धेयात्	अधात्	अधास्यत्	धापयते	धीयते
अधमत्	धमेत्	ध्मायात्	अध्मासीत्	अध्मास्यत्	ध्मापयति	ध्मायते
अध्यायत्	ध्यायेत्	ध्यायात्	अध्यासीत्	अध्यास्यत्	ध्यापयति	ध्यायते
अध्वनत्	ध्वनेत्	ध्वन्यात्	अध्वानीत्	अध्वनिष्यत्	ध्वनयति	ध्वन्यते
अध्वंसत	ध्वंसेत्	ध्वंसिषीष्ट	अध्वंसिष्ट	अध्वंसिष्यत्	ध्वंसयति	ध्वस्यते
अनदत्	नदेत्	नद्यात्	अनादीत्	अनदिष्यत्	नादयति	नद्यते
अनन्दत्	नन्देत्	नन्द्यात्	अनन्दीत्	अनन्दिष्यत्	नन्दयति	नन्द्यते
अनमत्	नमेत्	नम्यात्	अनंसीत्	अनंस्यत्	नमयति	नम्यते
अनश्यत्	नश्येत्	नश्यात्	अनशत्	अनशिष्यत्	नाशयति	नश्यते
अनह्यत्	नह्येत्	नह्यात्	अनात्सीत्	अनत्स्यत्	नाहयति	नह्यते
अनेनेक्	नेनिज्यात्	निज्यात्	अनिजत्	अनेक्ष्यत्	नेजयति	निज्यते
अनिन्दत्	निन्देत्	निन्द्यात्	अनिन्दीत्	अनिन्दिष्यत्	निन्दयति	निन्द्यते
अनयत्	नयेत्	नीयात्	अनैषीत्	अनेष्यत्	नाययति	नीयते
अनयत	नयेत	नेषीष्ट	अनेष्ट	अनेष्यत	,,	,,
अनौत्	नुयात्	नूयात्	अनावीत्	अनविष्यत्	नावयति	नूयते
अनुदत्	नुदेत्	नुद्यात्	अनौत्सीत्	अनोत्स्यत्	नोदयति	नुद्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
नृत् (४ प०, नाचना)	नृत्यति	ननर्त	नर्तिता	नर्तिष्यति	नृत्यतु	
पच् (१ उ०, पकाना)	प०-पचति	पपाच	पक्ता	पक्ष्यति	पचतु	
	आ०-पचते	पेचे	,,	पक्ष्यते	पचताम्	
पठ् (१ प०, पढ़ना)	पठति	पपाठ	पठिता	पठिष्यति	पठतु	
पण् (१ आ०, खरीदना)	पणते	पेणे	पणिता	पणिष्यते	पणताम्	
पत् (१ प०, गिरना)	पतति	पपात	पतिता	पतिष्यति	पततु	
पद् (४ आ०, जाना)	पद्यते	पेदे	पत्ता	पत्स्यते	पद्यताम्	
पश् (१० उ०, बाँधना)	पाशयति-ते	पाशयांचकार	पाशयिता	पाशयिष्यति	पाशयतु	
पा (१ प०, पीना)	पिबति	पपौ	पाता	पास्यति	पिबतु	
पा (२ प०, रक्षा करना)	पाति	पपौ	,,	,,	पातु	
पाल् (१० उ०, पालना)	पालयति-ते	पालयांचकार	पालयिता	पालयिष्यति	पालयतु	
पिष् (७ प०, पीसना)	पिनष्टि	पिपेष	पेष्टा	पेक्ष्यति	पिनष्टु	
पीड् (१० उ०, दुःख होना)	पीडयति-ते	पीडयांचकार	पीडयिता	पीडयिष्यति	पीडयतु	
पुष् (४ प०, पुष्ट करना)	पुष्यति	पुपोष	पोष्टा	पोक्ष्यति	पुष्यतु	
पुष् (९ प०, ,,)	पुष्णाति	,,	पोषिता	पोषिष्यति	पुष्णातु	
पुष् (१० उ०, पालना)	पोषयति-ते	पोषयांचकार	पोषयिता	पोषयिष्यति	पोषयतु	
पू (१ आ०, पवित्र०)	पवते	पुपुवे	पविता	पविष्यते	पवताम्	
पू (९ उ०, पवित्र०)	पुनाति	पुपाव	पविता	पविष्यति	पुनातु	
पूज् (१० उ०, पूजना)	पूजयति-ते	पूजयांचकार	पूजयिता	पूजयिष्यति	पूजयतु	
पूर (१० उ०, भरना)	पूरयति-ते	पूरयांचकार	पूरयिता	पूरयिष्यति	पूरयतु	
पृ (३ प०, पालना)	पिपर्ति	पपार	परिता	परिष्यति	पिपर्तु	
पृ (१० उ०, पालना)	पारयति-ते	पारयांचकार	पारयिता	पारयिष्यति	पारयतु	
प्यै (१ आ०, बढ़ना)	आ+प्यायते	पप्ये	प्याता	प्यास्यते	प्यायताम्	
प्रच्छ् (६ प०, पूछना)	पृच्छति	पप्रच्छ	प्रष्टा	प्रक्ष्यति	पृच्छतु	
प्रथ् (१ आ०, फैलना)	प्रथते	पप्रथे	प्रथिता	प्रथिष्यते	प्रथताम्	
प्री (४ आ०, प्रसन्न होना)	प्रीयते	पिप्रिये	प्रेता	प्रेष्यते	प्रीयताम्	
प्री (९ उ०, प्रसन्न करना)	प्रीणाति	पिप्राय	प्रेता	प्रेष्यति	प्रीणातु	
प्री (१० उ०, ,,)	प्रीणयति	प्रीणयांचकार	प्रीणयिता	प्रीणयिष्यति	प्रीणातु	
प्लु (१ आ०, कूदना)	प्लवते	पुप्लुवे	प्लोता	प्लोष्यते	प्लवताम्	
प्लुष् (१ प०, जलाना)	प्लोषति	पुप्लोष	प्लोषिता	प्लोषिष्यति	प्लोषतु	

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अनृत्यत्	नृत्येत्	नृत्यात्	अनर्तीत्	अनर्तिष्यत्	नर्तयते	नृत्यते
अपचत्	पचेत्	पच्यात्	अपाक्षीत्	अपक्ष्यत्	पाचयति	पच्यते
अपचत	पचेत	पक्षीष्ट	अपक्त	अपक्ष्यत	,,	,,
अपठत्	पठेत्	पठ्यात्	अपाठीत्	अपठिष्यत्	पाठयति	पठ्यते
अपणत	पणेत्	पणिषीष्ट	अपणिष्ट	अपणिष्यत्	पाणयति	पण्यते
अपतत्	पतेत्	पत्यात्	अपप्तत्	अपतिष्यत्	पातयति	पत्यते
अपद्यत	पद्येत्	पत्सीष्ट	अपादि	अपत्स्यत्	पादयति	पद्यते
अपाशयत्	पाशयेत्	पाश्यात्	अपीपशत्	अपाशयिष्यत्	पाशयति	पाश्यते
अपिबत्	पिबेत्	पेयात्	अपात्	अपास्यत्	पाययति	पीयते
अपात्	पायात्	पायात्	अपासीत्	,,	पालयति	पायते
अपालयत्	पालयेत्	पाल्यात्	अपीपलत्	अपालयिष्यत्	,,	पाल्यते
अपिनट्	पिष्यात्	पिष्यात्	अपिषत्	अपेक्ष्यत्	पेषयति	पिष्यते
अपीडयत्	पीडयेत्	पीड्यात्	अपिपीडत्	अपीडयिष्यत्	पीडयति	पीड्यते
अपुष्यत्	पुष्येत्	पुष्यात्	अपुषत्	अपोक्ष्यत्	पोषयति	पुष्यते
अपुष्णात्	पुष्णीयात्	,,	अपोषीत्	अपोषिष्यत्	,,	,,
अपोषयत्	पोषयेत्	पोष्यात्	अपूपुषत्	अपोषयिष्यत्	,,	पोष्यते
अपवत	पवेत्	पविषीष्ट	अपविष्ट	अपविष्यत्	पावयति	पूयते
अपुनात्	पुनीयात्	पूयात्	अपावीत्	अपविष्यत्	,,	,,
अपूजयत्	पूजयेत्	पूज्यात्	अपूपूजत्	अपूजयिष्यत्	पूजयति	पूज्यते
अपूरयत्	पूरयेत्	पूर्यात्	अपूपुरत्	अपूरयिष्यत्	पूरयति	पूर्यते
अपिपः	पिपूर्यात्	पूर्यात्	अपारीत्	अपरिष्यत्	पारयति	पूर्यते
अपारयत्	पारयेत्	पार्यात्	अपीपरत्	अपारयिष्यत्	पारयति	पार्यते
अप्यायत	प्यायेत्	प्यासीष्ट	अप्यास्त	अप्यास्यत्	प्यापयति	प्यायते
अपृच्छत्	पृच्छेत्	पृच्छ्यात्	अप्राक्षीत्	अप्रक्ष्यत्	प्रच्छयति	पृच्छ्यते
अप्रथत	प्रथेत्	प्रथिषीष्ट	अप्रथिष्ट	अप्रथिष्यत्	प्रथयति	प्रथ्यते
अप्रीयत	प्रीयेत्	प्रेषीष्ट	अप्रेष्ट	अप्रेष्यत्	प्राययति	प्रीयते
अप्रीणात्	प्रीणीयात्	प्रीयात्	अप्रीषीत्	अप्रेष्यत्	प्रीणयति	,,
अप्रीणयत्	प्रीणयेत्	प्रीण्यात्	अपिप्रीणत्	अप्रीणयिष्यत्	,,	प्रीण्यते
अप्लवत	प्लवेत्	प्लोषीष्ट	अप्लोष्ट	अप्लोष्यत्	प्लावयति	प्लूयते
अप्लोषत्	प्लोषेत्	प्लुष्यात्	अप्लोषीत्	अप्लोषिष्यत्	प्लोषयति	प्लुष्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
फल (१ प०, फलना)		फलति	पफाल	फलिता	फलिष्यति	फलतु
बध् (१ आ०, बीभत्स होना)	बीभत्सते	बीभत्सते	बीभत्सांचक्रे	बीभत्सिता	बीभत्सिष्यते	बीभत्सताम्
बध् (१० उ०, बाँधना)	बाधयति	बाधयति	बाधयांचकार	बाधयिता	बाधयिष्यति	बाधयतु
बन्ध् (१ प०, बाँधना)	बध्नाति	बध्नाति	बबन्ध	बबद्धा	बन्त्स्यति	बध्नातु
बाध् (१ आ०, पीडा देना)	बाधते	वबाधे	बाधिता	बाधिष्यते	बाधताम्	
बुध् (१ उ०, समझना)	बोधति-ते	बुबोध	बोधिता	बोधिष्यति	बोधतु	
बुध् (४ आ०, जानना)	बुध्यते	बुबुधे	बोद्धा	भोत्स्यते	बुध्यताम्	
ब्रू (२ उ०, बोलना) पा०-	ब्रवीति	उवाच	वक्ता	वक्ष्यति	ब्रवीतु	
आ०-	ब्रूते	ऊचे	,,	वक्ष्यते	ब्रूताम्	
भक्ष् (१० उ०, खाना) प०-	भक्षयति	भक्षयांचकार	भक्षयिता	भक्षयिष्यति	भक्षयतु	
आ०-	भक्षयते	भक्षयांचक्रे	,,	-ते	-ताम्	
भज् (१ उ०, सेवा करना)	भजति-ते	बभाज	भक्ता	भक्षयति	भजतु	
भञ्ज् (७ प०, तोड़ना)	भनक्ति	बभञ्ज	भंक्ता	भंक्षयति	भनकु	
भण् (१ प०, कहना)	भणति	बभाण	भणिता	भणिष्यति	भणतु	
भर्त्स् (१० आ०, डाँटना)	भर्त्सयते	भर्त्स्यांचक्रे	भर्त्सयिता	भर्त्सयिष्यते	भर्त्सयताम्	
भा (२ प०, चमकना)	भाति	बभौ	भाता	भास्यति	भातु	
भाष् (१ आ०, कहना)	भाषते	बभाषे	भाषिता	भाषिष्यते	भाषताम्	
भास् (१ आ०, चमकना)	भासते	बभासे	भासिता	भासिष्यते	भासताम्	
भिक्ष् (१ आ०, माँगना)	भिक्षते	बिभिक्षे	भिक्षिता	भिक्षिष्यते	भिक्षताम्	
भिद् (७ उ०, तोड़ना)	भिनत्ति	बिभेद	भेत्ता	भेत्स्यति	भिनत्तु	
भी (३ प०, डरना)	बिभेति	बिभाय	भेता	भेष्यति	बिभेतु	
भुज् (७ प०, पालना)	भुनक्ति	बुभोज	भोक्ता	भोक्ष्यति	भुनकु	
भुज् (७ आ०, खाना)	भुङ्क्ते	बुभुजे	,,	-ते	भुङ्क्ताम्	
भू (१ प०, होना)	भवति	बभूव	भविता	भविष्यति	भवतु	
भूष् (१० उ०, सजाना)	भूषयति-ते	भूषयांचकार	भूषयिता	भूषयिष्यति	भूषयतु	
भृ (१ उ०, पालना)	भरति-ते	बभार	भर्ता	भरिष्यति	भरतु	
भृ (३ उ०, पालना)	बिभर्ति	,,	,,	,,	बिभर्तु	
भ्रम् (१ प०, घूमना)	भ्रमति	बभ्राम	भ्रमिता	भ्रमिष्यति	भ्रमतु	
भ्रम् (४ प०, घूमना)	भ्राम्यति	,,	,,	,,	भ्राम्यतु	
भ्रंश् (१ आ०, गिरना)	भ्रंशते	बभ्रंशे	भ्रंशिता	भ्रंशिष्यते	भ्रंशताम्	

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
अफलत्	फलेत्	फल्यात्	अफालीत्	अफलिष्यत्	फालयति	फल्यते
अबीभत्सत	बीभत्सेत	बीभत्सिषीष्ट	अबीभत्सिष्ट	अबीभत्सिष्यत्	बीभत्सयति	बीभत्स्यते
अबाधयत्	बाधयेत्	बाध्यात्	अबीबधत्	अबाधयिष्यत्	बाधयति	बाध्यते
अबध्नात्	बध्नीयात्	बध्यात्	अभान्त्सीत्	अभन्त्स्यत्	बन्धयति	बध्यते
अबाधत	बाधेत	बाधिषीष्ट	अबाधिष्ट	अबाधिष्यत्	बाधयति	बाध्यते
अबोधत्	बोधेत्	बुध्यात्	अबुधत्	अबोधिष्यत्	बोधयति	बुध्यते
अबुध्यत	बुध्येत	भुत्सीष्ट	अबोधि	अभोत्स्यत्	,,	,,
अब्रवीत्	ब्रूयात्	उच्यात्	अवोचत्	अवक्ष्यत्	वाचयति	उच्यते
अब्रूत	ब्रूवीत	वक्षीष्ट	अवोचत	अवक्ष्यत्	,,	,,
अभक्षयत्	भक्षयेत्	भक्ष्यात्	अबभक्षत्	अभक्षयिष्यत्	भक्षयति	भक्ष्यते
-यत	-येत	भक्षयिषीष्ट	-क्षत	-ष्यत्	,,	,,
अभजत्	भजेत्	भज्यात्	अभाक्षीत्	अभक्ष्यत्	भाजयति	भज्यते
अभनक्	भञ्ज्यात्	भज्यात्	अभाङ्क्षीत्	अभंक्ष्यत्	भञ्जयति	भज्यते
अभणत्	भणेत्	भण्यात्	अभाणीत्	अभणिष्यत्	भाणयति	भण्यते
अभर्त्सयत्	भर्त्सयेत्	भर्त्सयिषीष्ट	अबभर्त्सत्	अभर्त्सयिष्यत्	भर्त्सयति	भर्त्स्यते
अभात्	भायात्	भायात्	अभासीत्	अभास्यत्	भापयति	भायते
अभाषत	भाषेत	भाषिषीष्ट	अभाषिष्ट	अभाषिष्यत्	भाषयति	भाष्यते
अभासत	भासेत	भासिषीष्ट	अभासिष्ट	अभासिष्यत्	भासयति	भास्यते
अभिक्षत	भिक्षेत	भिक्षिषीष्ट	अभिक्षिष्ट	अभिक्षिष्यत्	भिक्षयति	भिक्ष्यते
अभिन्तत्	भिन्द्यात्	भिद्यात्	अभिदत्	अभेत्स्यत्	भेदयति	भिद्यते
अबिभेत्	बिभीयात्	भीयात्	अभैषीत्	अभेष्यत्	भाययति	भीयते
अभुनक्	भुञ्ज्यात्	भुज्यात्	अभौक्षीत्	अभोक्ष्यत्	भोजयति	भुज्यते
अभुङ्क्त	भुञ्जीत	भुक्षीष्ट	अभुक्त	-त	,,	,,
अभवत्	भवेत्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
अभूषयत्	भूषयेत्	भूष्यात्	अबुभूषत्	अभूषयिष्यत्	भूषयति	भूष्यते
अभरत्	भरेत्	भ्रियात्	अभार्षीत्	अभरिष्यत्	भारयति	भ्रियते
अबिभः	बिभ्र्यात्	,,	,,	,,	,,	,,
अभ्रमत्	भ्रमेत्	भ्रम्यात्	अभ्रमीत्	अभ्रमिष्यत्	भ्रमयति	भ्रम्यते
अभ्राम्यत्	भ्राम्येत्	,,	अभ्रमत्	,,	,,	,,
अभ्रंशत	भ्रंशेत	भ्रंशिषीष्ट	अभ्रंशिष्ट	भ्रंशिष्यति	भ्रंशयति	भ्रंश्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
भ्रस्ज् (६३०, भूना)	भृजति-ते	बभ्रज्ज	भ्रष्टा	भ्रक्षयति	भृज्जतु	
भ्राज् (१ आ०, चमकना)	भ्राजते	बभ्राजे	भ्राजिता	भ्राजिष्यते	भ्राजताम्	
मण्ड् (१० उ०, सजाना)	मण्डयति-ते	मण्डयांचकार	मण्डयिता	मण्डयिष्यति	मण्डयतु	
मथ् (१ प०, मथना)	मथति	ममाथ	मथिता	मथिष्यति	मथतु	
मद् (४ प०, प्रसन्न होना)	माद्यति	ममाद	मदिता	मदिष्यति	माद्यतु	
मन् (४ आ०, मानना)	मन्यते	मेने	मन्ता	मंस्यते	मन्यताम्	
मन् (८ आ०, मानना)	मनुते	,,	मनिता	मनिष्यते	मनुताम्	
मन्त्र् (१० आ०, मंत्रणा०)	मन्त्रयते	मन्त्रयांचक्रे	मन्त्रयिता	मन्त्रयिष्यते	मन्त्रयताम्	
मन्थ् (९ प०, मथना)	मथ्नाति	ममन्थ	मन्थिता	मन्थिष्यति	मथ्नातु	
मस्ज् (६ प०, डूबना)	मज्जति	ममज्ज	मङ्क्ता	मङ्क्षयति	मज्जतु	
मा (१ प०, नापना)	माति	ममौ	माता	मास्यति	मातु	
मा (३ आ०, नापना)	मिमोते	ममे	माता	मास्यते	मिमोताम्	
मान् (१ आ०, जिज्ञासा०)	मीमांसते	मीमांसांचक्रे	मीमांसिता	मीमांसिष्यते	मीमांसताम्	
मान् (१० उ०, आदर०)	मानयति-ते	मानयांचकार	मानयिता	मानयिष्यति	मानयतु	
मार्ग् (१० उ०, ढूँढ़ना)	मार्गयति-ते	मार्गयांचकार	मार्गयिता	मार्गयिष्यति	मार्गयतु	
मार्ज् (१० उ०, साफ करना)	मार्जयति-ते	मार्जयांचकार	मार्जयिता	मार्जयिष्यति	मार्जयतु	
मिल् (६ उ०, मिलना)	मिलति-ते	मिमेल	मेलिता	मेलिष्यति	मिलतु	
मिश्र् (१० उ०, मिलना)	मिश्रयति-ते	मिश्रयांचकार	मिश्रयिता	मिश्रयिष्यति	मिश्रयतु	
मिह् (१ प०, गीला करना)	मेहति	मिमेह	मेढा	मेक्षयति	मेहतु	
मील् (१ प०, आँख मीचना)	मीलति	मिमील	मीलिता	मीलिष्यति	मीलतु	
मुच् (६ उ०, छोड़ना) प०-	मुञ्चति	मुमोच	मोक्ता	मोक्षयति	मुञ्चतु	
आ०-	मुञ्चते	मुमुचे	,,	मोक्षयते	मुञ्चताम्	
मुच् (१० उ०, मुक्त करना)	मोचयति-ते	मोचयांचकार	मोचयिता	मोचयिष्यति	मोचयतु	
मुद् (१ आ०, प्रसन्न होना)	मोदते	मुमुदे	मोदिता	मोदिष्यते	मोदताम्	
मुच्छ् (१ प०, मूर्छित होना)	मूच्छति	मुमूच्छ	मूर्च्छिता	मूर्च्छिष्यति	मूच्छतु	
मुष् (९ प०, चुराना)	मुष्णाति	मुमोष	मोषिता	मोषिष्यति	मुष्णातु	
मुह् (४ प०, मोह में पड़ना)	मुह्यति	मुमोह	मोहिता	मोहिष्यति	मुह्यतु	
मृ (६ आ०, मरना)	म्रियते	ममार	मर्ता	मरिष्यति	म्रियताम्	
मृग् (१० आ०, ढूँढ़ना)	मृगयते	मृगयांचक्रे	मृगयिता	मृगयिष्यते	मृगयताम्	
मृज् (२ प०, साफ करना)	मार्ष्टि	ममार्ज	मर्जिता	मर्जिष्यति	मार्ष्टु	

लङ्	विधिलिङ्	आशीलिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अभृजत्	भृजेत्	भृज्यात्	अभ्राक्षीत्	अभ्रक्ष्यत्	भ्रजयति	भृज्यते
अभ्राजत्	भ्राजेत्	भ्राजिषीष्ट	अभ्राजिष्ट	अभ्राजिष्यत्	भ्राजयति	भ्राज्यते
अमण्डयत्	मण्डयेत्	मण्ड्यात्	अममण्डत्	अमण्डयिष्यत्	मण्डयति	मण्ड्यते
अमथत्	मथेत्	मथ्यात्	अमथीत्	अमथिष्यत्	माथयति	मथ्यते
अमाद्यत्	माद्येत्	मद्यात्	अमदीत्	अमदिष्यत्	मदयति	मद्यते
अमन्यत्	मन्येत्	मंसीष्ट	अमंस्त	अमंस्यत्	मानयति	मन्यते
अमनुत्	मन्वीत्	मनिषीष्ट	अमत	अमनिष्यत्	,,	,,
अमन्त्रयत्	मन्त्रयेत्	मन्त्रयिषीष्ट	अममन्त्रत्	अमन्त्रयिष्यत्	मन्त्रयति	मन्त्र्यते
अमन्थात्	मन्थीयात्	मथ्यात्	अमन्थीत्	अमन्थिष्यत्	मन्थयति	मथ्यते
अमज्जत्	मज्जेत्	मज्यात्	अमाङ्क्षीत्	अमङ्क्ष्यत्	मज्जयति	मज्ज्यते
अमात्	मायात्	मेयात्	अमासीत्	अमास्यत्	मापयति	मीयते
अमिमीत्	मिमीत्	मासीष्ट	अमास्त	अमास्यत्	,,	,,
अमीमांसत्	मीमांसेत्	मीमांसिषीष्ट	अमीमांसिष्ट	अमीमांसिष्यत्	मीमांसयति	मीमांस्यते
अमानयत्	मानयेत्	मान्यात्	अमीमनत्	अमानयिष्यत्	मानयति	मान्यते
अमार्गयत्	मार्गयेत्	मार्ग्यात्	अममार्गत्	अमार्गयिष्यत्	मार्गयति	मार्ग्यते
अमार्जयत्	मार्जयेत्	मार्ज्यात्	अममार्जत्	अमार्जयिष्यत्	मार्जयति	मार्ज्यते
अमिलत्	मिलेत्	मिल्यात्	अमेलीत्	अमेलिष्यत्	मेलयति	मिल्यते
अमिश्रयत्	मिश्रयेत्	मिश्र्यात्	अमिमिश्रित्	अमिश्रयिष्यत्	मिश्रयति	मिश्र्यते
अमेहत्	मेहेत्	मिह्यात्	अमिक्षत्	अमेक्ष्यत्	मेहयति	मिह्यते
अमीलत्	मीलेत्	मील्यात्	अमेलीत्	अमीलिष्यत्	मीलयति	मील्यते
अमुञ्चत्	मुञ्चेत्	मुच्यात्	अमुचत्	अमोक्ष्यत्	मोचयति	मुच्यते
अमुञ्चत्	मुञ्चेत्	मुक्षीष्ट	अमुक्त	अमोक्ष्यत्	,,	,,
अमोचयत्	मोचयेत्	मोच्यात्	अमूमुचत्	अमोचयिष्यत्	मोचयति	मोच्यते
अमोदत्	मोदेत्	मोदिषीष्ट	अमोदिष्ट	अमोदिष्यत्	मोदयति	मुद्यते
अमूर्च्छत्	मूर्च्छेत्	मूर्च्छ्यात्	अमूर्च्छीत्	अमूर्च्छिष्यत्	मूर्च्छयति	मूर्च्छ्यते
अमुष्णात्	मुष्णीयात्	मुष्यात्	अमोषीत्	अमोषिष्यत्	मोषयति	मुष्यते
अमुह्यत्	मुह्येत्	मुह्यात्	अमुहत्	अमोहिष्यत्	मोहयति	मुह्यते
अम्रियत्	म्रियेत्	मृषीष्ट	अमृत	अमरिष्यत्	मारयति	म्रियते
अमृगयत्	मृगयेत्	मृगयिषीष्ट	अममृगत	अमृगयिष्यत्	मृगयति	मृग्यते
अमार्द	मृज्यात्	मृज्यात्	अमार्जीत्	अमार्जिष्यत्	मार्जयति	मृज्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
मृज् (१० उ०, साफ करना)	मार्जयति-ते	मार्जयांचकार	मार्जयिता	मार्जयितु	मार्जयिष्यति	मार्जयतु
मृष् (१० उ०, क्षमा करना)	मर्षयति-ते	मर्षयांचकार	मर्षयिता	मर्षयितु	मर्षयिष्यति	मर्षयतु
म्रा (१ प०, मानना) आ +	मनति	मम्रौ	म्राता	म्रास्यति	मनतु	
म्लै (१ प०, मुरझाना)	म्लायति	मम्लौ	म्लाता	म्लास्यति	म्लायतु	
यज् (१ उ०, यज्ञ करना)	यजति-ते	इयाज	यष्टा	यक्ष्यति	यजतु	
यत् (१ आ०, यत्न करना)	यतते	येते	यतिता	यतिष्यते	यतताम्	
यन्त्र् (१० उ०, नियमित०)	यन्त्रयति	यन्त्रयांचकार	यन्त्रयिता	यन्त्रयिष्यति	यन्त्रयतु	
यम् (१ प०, रोकना) नि+	यच्छति	ययाम	यन्ता	यंस्यति	यच्छतु	
यस् (४ प०, यत्न करना)	यस्यति	ययास	यसिता	यसिष्यति	यस्यतु	
या (२ प०, जाना)	याति	ययौ	याता	यास्यति	यातु	
याच् (१ उ०, माँगना) प०-	याचति	ययाच	याचिता	याचिष्यति	याचतु	
आ०-	याचते	ययाचे	,,	-ते	-ताम्	
यापि (या+णिच्, बिताना)	यापयति	यापयांचकार	यापयिता	यापयिष्यति	यापयतु	
युज् (४ आ०, ध्यान लगाना)	युज्यते	युयुजे	योक्ता	योक्ष्यते	युज्यताम्	
युज् (७ उ०, मिलाना)	युनक्ति	युयोज	,,	योक्ष्यति	युनक्तु	
युज् (१० उ०, लगाना)	योजयति-ते	योजयांचकार	योजयिता	योजयिष्यति	योजयतु	
युध् (४ आ०, लड़ना)	युध्यते	युयुधे	योद्धा	योत्स्यते	युध्यताम्	
रक्ष् (१ प०, रक्षा करना)	रक्षति	ररक्ष	रक्षिता	रक्षिष्यति	रक्षतु	
रच् (१० उ०, बनाना)	रचयति-ते	रचयांचकार	रचयिता	रचयिष्यति	रचयतु	
रञ्ज् (४ उ०, प्रसन्न होना)	रज्यति-ते	ररञ्ज	रङ्क्ता	रङ्क्ष्यति	रज्यतु	
रट् (१ प०, रटना)	रटति	रराट	रटिता	रटिष्यति	रटतु	
रम् (१ आ०, रमना)	रमते	रेमे	रन्ता	रंस्यते	रमताम्	
(वि+रम्, पर०)	विरमति	विरराम	विरन्ता	विरंस्यति	विरमतु	
रस् (१० उ०, स्वाद लेना)	रसयति-ते	रसयांचकार	रसयिता	रसयिष्यति	रसयतु	
राज् (१ उ०, चमकना) प०-	राजति	रराज	राजिता	राजिष्यति	राजतु	
आ०-	राजते	रेजे	,,	-ते	-ताम्	
राध् (५ प०, पूरा करना)	राध्नोति	रराध	राद्धा	रात्स्यति	राध्नोतु	
रु (२ प०, शब्द करना)	रौति	रुराव	रविता	रविष्यति	रौतु	
रुच् (१ आ०, अच्छा लगना)	रोचते	रुरुचे	रोचिता	रोचिष्यते	रोचताम्	
रुद् (२ प०, रोना)	रोदिति	रुरोद	रोदिता	रोदिष्यति	रोदितु	

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अमार्जयत्	मार्जयेत्	मार्ज्यात्	अममार्जत्	अमार्जयिष्यत्	मार्जयति	मार्ज्यते
अमर्षयत्	मर्षयेत्	मर्ष्यात्	अममर्षत्	अमर्षयिष्यत्	मर्षयति	मर्ष्यते
अमनत्	मनेत्	मनायात्	अमनासीत्	अमनास्यत्	मनापयति	मनायते
अम्लायत्	म्लायात्	म्लायात्	अम्लासीत्	अम्लास्यत्	म्लापयति	म्लायते
अयजत्	यजेत्	इज्यात्	अयाक्षीत्	अयक्ष्यत्	याजयति	इज्यते
अयतत	यतेत	यतिषीष्ट	अयतिष्ट	अयतिष्यत	यातयति	यत्यते
अयन्त्रयत्	यन्त्रयेत्	यन्त्र्यात्	अययन्त्रत्	अयन्त्रयिष्यत्	यन्त्रयति	यन्त्रयते
अयच्छत्	यच्छेत्	यम्यात्	अयंसत्	अयंस्यत्	नियमयति	नियम्यते
अयस्यत्	यस्येत्	यस्यात्	अयसत्	अयसिष्यत्	यासयति	यस्यते
अयात्	यायात्	यायात्	अयासीत्	अयास्यत्	यापयति	यायते
अयाचत्	याचेत्	याच्यात्	अयाचीत्	अयाचिष्यत्	याचयति	याच्यते
-त	याचेत	याचिषीष्ट	अयाचिष्ट	-त	,,	,,
अयापयत्	यापयेत्	याप्यात्	अयीयपत्	अयापयिष्यत्	यापयति	याप्यते
अयुज्यत	युज्येत	युक्षीष्ट	अयुक्त	अयोक्ष्यत	योजयति	युज्यते
अयुनक्	युञ्ज्यात्	युज्यात्	अयुजत्	अयोक्ष्यत्	,,	,,
अयोजयत्	योजयेत्	योज्यात्	अयूयुजत्	अयोजयिष्यत्	,,	योज्यते
अयुध्यत	युध्येत	युत्सीष्ट	अयुद्ध	अयोत्स्यत	योधयति	युध्यते
अरक्षत्	रक्षेत्	रक्ष्यात्	अरक्षीत्	अरक्षिष्यत्	रक्षयति	रक्ष्यते
अरचयत्	रचयेत्	रच्यात्	अररचत्	अरचयिष्यत्	रचयति	रच्यते
अरज्यत्	रज्येत्	रज्यात्	अराङ्क्षीत्	अरङ्क्ष्यत्	रञ्जयति	रज्यते
अरटत्	रटेत्	रट्यात्	अरटीत्	अरटिष्यत्	राटयति	रट्यते
अरमत	रमेत	रंसीष्ट	अरंस्त	अरंस्यत	रमयति	रम्यते
व्यरमत्	विरमेत्	विरम्यात्	व्यरंसीत्	व्यरंस्यत्	विरमयति	विरम्यते
अरसयत्	रसयेत्	रस्यात्	अररसत्	अरसयिष्यत्	रसयति	रस्यते
अराजत्	राजेत्	राज्यात्	अराजीत्	अराजिष्यत्	राजयति	राज्यते
-त	-त	राजिषीष्ट	अराजिष्ट	अराजिष्यत	,,	,,
अराध्नोत्	राध्नुयात्	राध्यात्	अरात्सीत्	अरात्स्यत्	राधयति	राध्यते
अरौत्	रूयात्	रूयात्	अरावीत्	अरविष्यत्	रावयति	रूयते
अरोचत	रोचेत	रोचिषीष्ट	अरोचिष्ट	अरोचिष्यत	रोचयते	रुच्यते
अरोदीत्	रुद्यात्	रुद्यात्	अरुदत्	अरोदिष्यत्	रोदयति	रुद्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
रुध् (७ उ०, रोकना) प०-	रुणद्धि	रुरोध	रोद्धा	रोत्स्यति	रुणद्धु	
आ०-	रुन्धे	रुरुधे	,,	-ते	रुन्धाम्	
रुह् (१ प०, उगना)	रोहति	रुरोह	रोढा	रोक्ष्यति	रोहतु	
रूप् (१० उ०, रूप बनाना)	रूपयति-ते	रूपयांचकार	रूपयिता	रूपयिष्यति	रूपयतु	
लक्ष् (१० उ०, देखना)	लक्षयति-ते	लक्षयांचकार	लक्षयिता	लक्षयिष्यति	लक्षयतु	
लग् (१ प०, लगना)	लगति	ललाग	लगिता	लगिष्यति	लगतु	
लङ्घ् (१ आ०, लाँघना) उत्+	लङ्घते	ललंघे	लंघिता	लंघिष्यते	लंघताम्	
लङ्घ् (१० उ०, लाँघना)	लंघयति-ते	लंघयांचकार	लंघयिता	लंघयिष्यति	लंघयतु	
लाड् (१० उ०, प्यार करना)	लाडयति-ते	लाडयांचकार	लाडयिता	लाडयिष्यति	लाडयतु	
लप् (१ प०, बोलना)	लपति	ललाप	लपिता	लपिष्यति	लपतु	
लभ् (१ आ०, पाना)	लभते	लेभे	लब्धा	लप्स्यते	लभताम्	
लम्ब् (१ आ०, लटकना)	लम्बते	ललम्बे	लम्बिता	लम्बिष्यते	लम्बताम्	
लष् (१ उ०, चाहना)	लषति-ते	ललाष	लषिता	लषिष्यति	लषतु	
लस् (१ प०, शोभित होना)	वि+लसति	ललास	लसिता	लसिष्यति	लसतु	
लस्ज् (लज्, ६ आ०, लज्जित०)	लज्जते	ललज्जे	लज्जिता	लज्जिष्यते	लज्जताम्	
लिख् (६ प०, लिखना)	लिखति	लिलेख	लेखिता	लेखिष्यति	लिखतु	
लिङ्ग् (आ+, १ प०, आलिगन करना)	आलिगति	आलिलिग	आलि- गिता	आलि- गिष्यति	आलिगतु	
लिप् (६ उ०, लीपना)	लिम्पति-ते	लिलेप	लेप्सा	लेप्स्यति	लिम्पतु	
लिह् (२ उ०, चाटना)	लेढि	लिलेह	लेढा	लेक्ष्यति	लेढु	
ली (४ आ०, लीन होना)	लीयते	लिल्ये	लेता	लेष्यते	लीयताम्	
लुट् (१ प०, लोटना)	लोटति	लुलोट	लोटिता	लोटिष्यति	लोटतु	
लुङ् (१ प०, बिलोना) आ+	लोडति	लुलोड	लोडिता	लोडिष्यति	लोडतु	
लुप् (४ प०, लुप्त होना)	लुप्यति	लुलोप	लोपिता	लोपिष्यति	लुप्यतु	
लुप् (६ उ० नष्ट करना)	लुम्पति-ते	,,	लोप्ता	लोप्स्यति	लुम्पतु	
लुभ् (४ प०, लोभ करना)	लुभ्यति	लुलोभ	लोभिता	लोभिष्यति	लुभ्यतु	
लू (१ उ०, काटना)	लुनाति	लुलाव	लविता	लविष्यति	लुनातु	
लोक् (१० उ०, देखना) आ+	लोकयति-ते	लोकयांचकार	लोकयिता	लोकयिष्यति	लोकयतु	
लोच् (१० उ०, देखना) आ+	लोचयति	लोचयांचकार	लोचयिता	लोचयिष्यति	लोचयतु	
वच् (१० उ०, बाँचना)	वाचयति	वाचयांचकार	वाचयिता	वाचयिष्यति	वाचयतु	
वञ्च् (१० आ०, उगना)	वञ्चयते	वञ्चयांचक्रे	वञ्चयिता	वञ्चयिष्यते	वञ्चयताम्	
वद् (१ प०, बोलना)	वदति	उवाद	वदिता	वदिष्यति	वदतु	

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अरुणत्	रुन्ध्यात्	रुध्यात्	अरुधत्	अरोत्स्यत्	रोधयति	रुध्यते
अरुन्ध	रुन्धीत	रुत्सीष्ट	अरुद्ध	-त	,,	,,
अरोहत्	रोहेत्	रुह्यात्	अरुक्षत्	अरोक्ष्यत्	रोहयति	रुह्यते
अरूपयत्	रूपयेत्	रूप्यात्	अरुरूपत्	अरुरूपयिष्यत्	रूपयति	रूप्यते
अलक्षयत्	लक्षयेत्	लक्ष्यात्	अललक्षत्	अललक्षयिष्यत्	लक्षयति	लक्ष्यते
अलगत्	लगेत्	लग्यात्	अलगीत्	अलगिष्यत्	लगयति	लग्यते
अलंघत्	लंघेत्	लंघिषीष्ट	अलंघिष्ट	अलंघिष्यत्	लंघयति	लंघ्यते
अलंभयत्	लंभयेत्	लंभ्यात्	अललंभत्	अलंभयिष्यत्	,,	,,
अलाडयत्	लाडयेत्	लाड्यात्	अलीलडत्	अलाडयिष्यत्	लाडयति	लाड्यते
अलपत्	लपेत्	लप्यात्	अलपीत्	अलपिष्यत्	लापयति	लप्यते
अलभत्	लभेत्	लप्सीष्ट	अलब्ध	अलप्स्यत्	लम्भयति	लभ्यते
अलम्बत्	लम्बेत्	लम्बिषीष्ट	अलम्बिष्ट	अलम्बिष्यत्	लम्बयति	लम्ब्यते
अलषत्	लषेत्	लष्यात्	अलषीत्	अलषिष्यत्	लापयति	लप्यते
अलसत्	लसेत्	लस्यात्	अलसीत्	अलसिष्यत्	लासयति	लस्यते
अलज्जत्	लज्जेत्	लज्जिषीष्ट	अलज्जिष्ट	अलज्जिष्यत्	लज्जयति	लज्ज्यते
अलिखत्	लिखेत्	लिख्यात्	अलेखीत्	अलेखिष्यत्	लेखयति	लिख्यते
आलिङ्गत्	आलिङ्गेत्	आलिङ्ग्यात्	आलिङ्गीत्	आलिङ्गिष्यत्	आलिङ्गयति	आलिङ्ग्यते
अलिम्पत्	लिम्पेत्	लिप्यात्	अलिपत्	अलेप्स्यत्	लेपयति	लिप्यते
अलेट्	लिह्यात्	लिह्यात्	अलिक्षत्	अलेक्ष्यत्	लेहयति	लिह्यते
अलीयत्	लीयते	लेषीष्ट	अलेष्ट	अलेष्यत्	लाययति	लीयते
अलोटत्	लोटेत्	लुट्यात्	अलोटीत्	अलोटीष्यत्	लोडयति	लुट्यते
अलोडत्	लोडेत्	लुड्यात्	अलोडीत्	अलोडिष्यत्	लोडयति	लुड्यते
अलुप्यत्	लुप्येत्	लुप्यात्	अलुपत्	अलोपिष्यत्	लोपयति	लुप्यते
अलुम्पत्	लुम्पेत्	,,	,,	अलोप्स्यत्	,,	,,
अलुभ्यत्	लुभ्येत्	लुभ्यात्	अलोभीत्	अलोभिष्यत्	लोभयति	लुभ्यते
अलुनात्	लुनीयात्	लूयात्	अलावीत्	अलविष्यत्	लावयति	लूयते
अलोकयत्	लोकयेत्	लोक्यात्	अलुलोकत्	अलोकयिष्यत्	लोकयति	लोक्यते
अलोचयत्	लोचयेत्	लोच्यात्	अलुलोचत्	अलोचयिष्यत्	लोचयति	लोच्यते
अवाचयत्	वाचयेत्	वाच्यात्	अवीवचत्	अवाचयिष्यत्	वाचयति	वाच्यते
अवञ्चयत्	वञ्चयेत्	वञ्चयिषीष्ट	अववञ्चत्	अवञ्चयिष्यत्	वञ्चयति	वञ्च्यते
अवदत्	वदेत्	उद्यात्	अवादीत्	अवदिष्यत्	वादयति	उद्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
वन्द् (१ आ०, प्रणाम०)		वन्दते	ववन्दे	वन्दिता	वन्दिष्यते	वन्दताम्
वप् (१ उ०, बोना)		वपति-ते	उवाप	वप्ता	वप्स्यति	वपतु
वम् (१ प०, उगलना)		वमति	ववाम	वमिता	वमिष्यति	वमतु
वस् (१ प०, रहना)		वसति	उवास	वस्ता	वत्स्यति	वसतु
वह् (१ उ०, ढोना)		वहति-ते	उवाह	वोढा	वक्ष्यति	वहतु
वा (२ प०, हवा चलना)		वाति	ववौ	वाता	वास्यति	वातु
वाञ्छ् (१ प०, चाहना)		वाञ्छति	ववाञ्छ	वाञ्छिता	वाञ्छिष्यति	वाञ्छतु
विद् (२ प०, जानना)		वेत्ति	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	वेतु
विद् (४ आ०, होना)		विद्यते	विविदे	वेत्ता	वेत्स्यते	विद्यताम्
विद् (६ उ०, पाना)		विन्दति-ते	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	विन्दतु
विद् (१० आ०, कहना)नि+	वेदयते		वेदयांचक्रे	वेदयिता	वेदयिष्यते	वेदयताम्
विश् (६ प०, घुसना) प्र+	विशति		विवेश	वेष्टा	वेक्ष्यति	विशतु
वीज् (१०उ०,पंखा हिलाना)वीजयति-ते		वीजयति-ते	वीजयांचकार	वीजयिता	वीजयिष्यति	वीजयतु
वृ (५ उ०, चुनना)		वृणोति	ववार	वरिता	वरिष्यति	वृणोतु
वृ (९ आ०, छाँटना)		वृणीते	वव्रे	वरिता	वरिष्यते	वृणीताम्
वृ (१०उ०, हटाना, ढकना)	वारयति-ते		वारयांचकार	वारयिता	वारयिष्यति	वारयतु
वृज् (१० उ०, छोड़ना)	वर्जयति-ते		वर्जयांचकार	वर्जयिता	वर्जयिष्यति	वर्जयतु
वृत् (१ आ०, होना)		वर्तते	ववृते	वर्तिता	वर्तिष्यते	वर्तताम्
वृध् (१ आ०, बढ़ना)		वर्धते	ववृधे	वर्धिता	वर्धिष्यते	वर्धताम्
वृष् (१ प०, बरसना)		वर्षति	ववर्ष	वर्षिता	वर्षिष्यति	वर्षतु
वे (१ उ०, बुनना)		वयति-ते	ववौ	वाता	वास्यति	वयतु
वेप् (१ आ०, काँपना)		वेपते	विवेपे	वेपिता	वेपिष्यते	वेपताम्
वेष्ट् (१ आ०, घेरना)		वेष्टते	विवेष्टे	वेष्टिता	वेष्टिष्यते	वेष्टताम्
व्यथ् (१ आ०, दुःखित होना)	व्यथते		विव्यथे	व्यथिता	व्यथिष्यते	व्यथताम्
व्यध् (४ प०, बाँधना)	विध्यति		विव्याध	व्यद्धा	व्यत्स्यति	विध्यतु
व्रज् (१ प०, जाना) परि+	व्रजति		वव्राज	व्रजिता	व्रजिष्यति	व्रजतु
शक् (५ प०, सकना)	शक्नोति		शशाक	शक्ता	शक्ष्यति	शक्रोतु
शङ्क् (१ आ०, शंका करना)	शङ्कते		शशंके	शङ्किता	शङ्किष्यते	शङ्कताम्
शप् (१ उ०, शाप देना)	शपति-ते		शशाप	शप्ता	शप्स्यति	शपतु
शम् (४ प०, शान्त होना)	शाम्यति		शशाम	शमिता	शमिष्यति	शाम्यतु
शंस् (१ प०, प्रशंसा करना) प्र+	शंसति		शशंस	शंसिता	शंसिष्यति	शंसतु
शान् (१ उ०, तेज करना)	शीशांसति		शीशांसांचकार	शीशांसिता	शीशांसिष्यति	शीशांसतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अवन्दत्	वन्देत्	वन्दिषीष्ट	अवन्दिष्ट	अवन्दिष्यत्	वन्दयति	वन्द्यते
अवपत्	वपेत्	उप्यात्	अवाप्सीत्	अवप्स्यत्	वापयति	उप्यते
अवमत्	वमेत्	वम्यात्	अवमीत्	अवमिष्यत्	वमयति	वम्यते
अवसत्	वसेत्	उप्यात्	अवात्सीत्	अवत्स्यत्	वासयति	उष्यते
अवहत्	वहेत्	उह्यात्	अवाक्षीत्	अवक्ष्यत्	वाहयति	उह्यते
अवात्	वायात्	वायात्	अवासीत्	अवास्यत्	वापयति	वायते
अवाञ्छत्	वाञ्छेत्	वाञ्छ्यात्	अवाञ्छीत्	अवाञ्छिष्यत्	वाञ्छयति	वाञ्छ्यते
अवेत्	विद्यात्	विद्यात्	अवेदीत्	अवेदिष्यत्	वेदयति	विद्यते
अविद्यत्	विद्येत्	वित्सीष्ट	अवित्	अवेत्स्यत्	"	"
अविन्दत्	विन्देत्	विद्यात्	अविदत्	अवेदिष्यत्	"	"
अवेदयत्	वेदयेत्	वेदयिषीष्ट	अवीविदत्	अवेदयिष्यत्	"	वेद्यते
अविशत्	विशेत्	विश्यात्	अविक्षत्	अवेक्ष्यत्	वेशयति	विश्यते
अवीजयत्	वीजयेत्	वीज्यात्	अवीविजत्	अवीजयिष्यत्	वीजयति	वीज्यते
अवृणोत्	वृणुयात्	व्रियात्	अवारीत्	अवरिष्यत्	वारयति	व्रियते
अवृणीत्	वृणीत्	वृषीष्ट	अवरिष्ट	अवरिष्यत्	"	"
अवारयत्	वारयेत्	वार्यात्	अवीवरत्	अवारयिष्यत्	"	वार्यते
अवर्जयत्	वर्जयेत्	वर्ज्यात्	अवीवृजत्	अवर्जयिष्यत्	वर्जयति	वर्ज्यते
अवर्तत्	वर्तेत्	वर्तिषीष्ट	अवर्तिष्ट	अवर्तिष्यत्	वर्तयति	वृत्यते
अवर्धत्	वर्धेत्	वर्धिषीष्ट	अवर्धिष्ट	अवर्धिष्यत्	वर्धयति	वृध्यते
अवर्षत्	वर्षेत्	वृष्यात्	अवर्षीत्	अवर्षिष्यत्	वर्षयति	वृष्यते
अवयत्	वयेत्	ऊयात्	अवासीत्	अवास्यत्	वाययति	ऊयते
अवेपत्	वेपेत्	वेपिषीष्ट	अवेपिष्ट	अवेपिष्यत्	वेपयति	वेप्यते
अवेष्टत्	वेष्टेत्	वेष्टिषीष्ट	अवेष्टिष्ट	अवेष्टिष्यत्	वेष्टयति	वेष्ट्यते
अव्यथत्	व्यथेत्	व्यथिषीष्ट	अव्यथिष्ट	अव्यथिष्यत्	व्यथयति	व्यथ्यते
अविध्यत्	विध्येत्	विध्यात्	अव्यात्सीत्	अव्यत्स्यत्	व्यधयति	विध्यते
अब्रजत्	ब्रजेत्	ब्रज्यात्	अब्राजीत्	अब्रजिष्यत्	ब्राजयति	ब्रज्यते
अशक्नोत्	शक्नुयात्	शक्यात्	अशकत्	अशक्ष्यत्	शाकयति	शक्यते
अशंकत्	शंकेत्	शंकिषीष्ट	अशंकिष्ट	अशंकिष्यत्	शंकयति	शंक्यते
अशपत्	शपेत्	शप्यात्	अशाप्सीत्	अशप्स्यत्	शापयति	शप्यते
अशाम्यत्	शाम्येत्	शाम्यात्	अशामत्	अशामिष्यत्	शमयति	शम्यते
अशंसत्	शंसेत्	शंस्यात्	अशंसीत्	अशंसिष्यत्	शंसयति	शंस्यते
अशीशांसत्	शीशांसेत्	शीशांस्यात्	अशीशांसीत्	अशीशांसिष्यत्	शीशांसयति	शीशांस्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
शास् (२ पा०, शिक्षा देना)	शास्ति	शशास	शशिस	शासिता	शासिष्यति	शास्तु
शिक्ष् (१ आ०, सीखना)	शिक्षते	शिशिक्षे	शिशिक्षे	शिक्षिता	शिक्षिष्यते	शिक्षताम्
शी (२ आ०, सोना)	शेते	शिशये	शिशये	शयिता	शयिष्यते	शेताम्
शुच् (१ प०, शोक करना)	शोचति	शुशोच	शुशोच	शोचिता	शोचिष्यति	शोचतु
शुध् (४ प०, शुद्ध होना)	शुध्यति	शुशोध	शुशोध	शोद्धा	शोत्स्यति	शुध्यतु
शुभ् (१ आ०, चमकना)	शोभते	शुशुभे	शुशुभे	शोभिता	शोभिष्यते	शोभताम्
शुष् (४ प०, सूखना)	शुष्यति	शुशोष	शुशोष	शोष्टा	शोक्ष्यति	शुष्यतु
शृ (९ प०, नष्ट करना)	शृणाति	शशार	शशार	शरिता	शरिष्यति	शृणातु
शो (४ प०, छीलना)	श्यति	शशौ	शशौ	शाता	शास्यति	श्यतु
श्चुत् (१ प०, चूना)	श्चोतति	चुश्चोत	चुश्चोत	श्चोतिता	श्चोतिष्यति	श्चोततु
श्रम् (४ प०, श्रम करना)	श्राम्यति	शश्राम	शश्राम	श्रमिता	श्रमिष्यति	श्राम्यतु
श्रि (१ उ०, आश्रय लेना)	आ+श्रयति-ते	शिश्राय	शिश्राय	श्रयिता	श्रयिष्यति	श्रयतु
श्रु (१ प०, सुनना)	शृणोति	शुश्राव	शुश्राव	श्रोता	श्रोष्यति	शृणोतु
श्लाघ् (१ आ०, प्रशंसा करना)	श्लाघते	शश्लाघे	शश्लाघे	श्लाघिता	श्लाघिष्यते	श्लाघताम्
श्लिष् (४ प०, आलिंगन०)	श्लिष्यति	शिश्लेष	शिश्लेष	श्लेष्टा	श्लेक्ष्यति	श्लिष्यतु
श्वस् (२ प०, साँस लेना)	श्वसति	शश्वस	शश्वस	श्वसिता	श्वसिष्यति	श्वसितु
ष्ठिव् (१ प०, थूकना)	नि+ ष्ठीवति	तिष्ठेव	तिष्ठेव	ष्ठेविता	ष्ठेविष्यति	ष्ठीवतु
सञ्ज् (१ प०, मिलना)	सजति	ससञ्ज	ससञ्ज	सङ्क्ता	सङ्क्ष्यति	सजतु
सद् (१ प०, बैठना)	नि+ सीदति	ससाद	ससाद	सत्ता	सत्स्यति	सीदतु
सह् (१ आ०, सहना)	सहते	सेहे	सेहे	सहिता	सहिष्यते	सहताम्
साध् (५ प०, पूरा करना)	साध्नोति	ससाध	ससाध	साद्धा	सात्स्यति	साध्नोतु
सान्त्व् (१० उ०, धैर्य बँधाना)	सान्त्वयति	सान्त्वयांचकार	सान्त्वयिता	सान्त्वयिता	सान्त्वयिष्यति	सान्त्वयतु
सि (५ उ०, बाँधना)	सिनोति	सिषाय	सिषाय	सेता	सेष्यति	सिनोतु
सिच् (६ उ०, सींचना)	सिंचति-ते	सिषेच	सिषेच	सेक्ता	सेक्ष्यति	सिंचतु
सिध् (४ प०, पूरा होना)	सिध्यति	सिषेध	सिषेध	सेद्धा	सेत्स्यति	सिध्यतु
सिव् (४ प०, सीना)	सीव्यति	सिषेव	सिषेव	सेविता	सेविष्यति	सीव्यतु
सु (५ उ०, निचोड़ना)	सुनोति	सुषाव	सुषाव	सोता	सोष्यति	सुनोतु
सू (२ आ०, जन्म देना)	सूते	सुषुवे	सुषुवे	सविता	सविष्यते	सूताम्
सूच् (१० उ०, सूचना देना)	सूचयति	सूचयांचकार	सूचयिता	सूचयिता	सूचयिष्यति	सूचयतु
सूत्र् (१० उ०, संक्षिप्त करना)	सूत्रयति	सूत्रयांचकार	सूत्रयिता	सूत्रयिता	सूत्रयिष्यति	सूत्रयतु
सृ (१ प०, सरकना)	सरति	ससार	ससार	सर्ता	सरिष्यति	सरतु
सृज् (६ प० बनाना)	सृजति	ससर्ज	ससर्ज	स्रष्टा	स्रक्ष्यति	सृजतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अशात्	शिष्यात्	शिष्यात्	अशिषत्	अशासिष्यत्	शासयति	शिष्यते
अशिक्षत्	शिक्षेत्	शिक्षिषीष्ट	अशिक्षिष्ट	अशिक्षिष्यत्	शिक्षयति	शिक्ष्यते
अशेत	शयीत्	शयिषीष्ट	अशयिष्ट	अशयिष्यत्	शाययति	शय्यते
अशोचत्	शोचेत्	शुच्यात्	अशोचीत्	अशोचिष्यत्	शोचयति	शुच्यते
अशुध्यत्	शुध्येत्	शुध्यात्	अशुधत्	अशोत्स्यत्	शोधयति	शुध्यते
अशोभत्	शोभेत्	शोभिषीष्ट	अशोभिष्ट	अशोभिष्यत्	शोभयति	शुभ्यते
अशुष्यत्	शुष्येत्	शुष्यात्	अशुषत्	अशोक्ष्यत्	शोषयति	शुष्यते
अशृणात्	शृणीयात्	शीर्यात्	अशारीत्	अशरिष्यत्	शारयति	शीर्यते
अश्यत्	श्येत्	शयात्	अशासीत्	अशास्यत्	शाययति	शायते
अश्नोत्	श्नोतेत्	श्चुत्यात्	अश्नोतीत्	अश्नोतिष्यत्	श्नोतयति	श्नुत्यते
अश्राम्यत्	श्राम्येत्	श्रम्यात्	अश्रमत्	अश्रमिष्यत्	श्रमयति	श्रम्यते
अश्रयत्	श्रयेत्	श्रीयात्	अशिश्रियत्	अश्रयिष्यत्	श्राययति	श्रीयते
अशृणोत्	शृणुयात्	श्रूयात्	अश्रौषीत्	अश्रोष्यत्	श्रावयति	श्रूयते
अश्लाघत्	श्लाघेत्	श्लाघिषीष्ट	अश्लाघिष्ट	अश्लाघिष्यत्	श्लाघयति	श्लाघ्यते
अश्लिष्यत्	श्लिष्येत्	श्लिष्यात्	अश्लिक्षत्	अश्लेक्ष्यत्	श्लेषयति	श्लिष्यते
अश्वसीत्	श्वस्यात्	श्वस्यात्	अश्वसीत्	अश्वसिष्यत्	श्वसयति	श्वस्यते
अष्ठीवत्	ष्ठीवेत्	ष्ठीव्यात्	अष्ठेवीत्	अष्ठेविष्यत्	ष्ठेवयति	ष्ठीव्यते
असजत्	सजेत्	सज्यात्	असाङ्क्षीत्	असङ्क्ष्यत्	सञ्जयति	सज्यते
असीदत्	सीदेत्	सद्यात्	असदत्	असत्स्यत्	सादयति	सद्यते
असहत	सहेत्	सहिषीष्ट	असहिष्ट	असहिष्यत्	साहयति	सह्यते
असाधोत्	साधुयात्	साध्यात्	असात्सीत्	असात्स्यत्	साधयति	साध्यते
असान्वयत्	सान्वयेत्	सान्व्यात्	अससान्वत्	असान्वयिष्यत्	सान्वयति	सान्व्यते
असिनोत्	सिनुयात्	सीयात्	असैषीत्	असेष्यत्	साययति	सीयते
असिचत्	सिचेत्	सिच्यात्	असिचत्	असेक्ष्यत्	सेचयति	सिच्यते
असिध्यत्	सिध्येत्	सिध्यात्	असिधत्	असेत्स्यत्	सेधयति	सिध्यते
असीव्यत्	सीव्येत्	सीव्यात्	असेवीत्	असेविष्यत्	सेवयति	सीव्यते
असुनोत्	सुनुयात्	सूयात्	असावीत्	असोष्यत्	सावयति	सूयते
असूत	सुवीत्	सविषीष्ट	असविष्ट	असविष्यत्	„	„
असूचयत्	सूचयेत्	सूच्यात्	असूसूचत्	असूचयिष्यत्	सूचयति	सूच्यते
असूत्रयत्	सूत्रयेत्	सूत्र्यात्	असूसूत्रत्	असूत्रयिष्यत्	सूत्रयति	सूत्र्यते
असरत्	सरेत्	स्त्रियात्	असार्षीत्	असरिष्यत्	सारयति	स्त्रियते
असृजत्	सृजेत्	सृज्यात्	अस्नाक्षीत्	अस्नक्ष्यत्	सर्जयति	सृज्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
सेव् (१ आ०, सेवा करना)	सेवते	सिषेवे	सेविता	सेविष्यते	सेवताम्	
सो (४ प०, नष्ट होना)अव+	स्यति	ससौ	साता	सास्यति	स्यतु	
स्खल् (१ प०, गिरना)	स्खलति	चस्खाल	स्खलिता	स्खलिष्यति	स्खलतु	
स्तु (२ उ०, स्तुति करना)	स्तौति	तुष्टाव	स्तोता	स्तोष्यति	स्तौतु	
स्तृ (१ उ०, ढकना, फैलाना)	स्तृणाति	तस्तार	स्तरिता	स्तरिष्यति	स्तृणातु	
स्था (१ प०, रुकना)	तिष्ठति	तस्थौ	स्थाता	स्थास्यति	तिष्ठतु	
स्ना (२ प०, नहाना)	स्नाति	सस्त्रौ	स्नाता	स्नास्यति	स्नातु	
स्निह् (४ प०, स्नेह करना)	स्निह्यति	सिष्णेह	स्नेहिता	स्नेहिष्यति	स्निह्यतु	
स्पन्द् (१ आ०, फड़कना)	स्पन्दते	पस्पन्दे	स्पन्दिता	स्पन्दिष्यते	स्पन्दताम्	
स्पर्ध् (१ आ०, स्पर्धा करना)	स्पर्धते	पस्पर्धे	स्पर्धिता	स्पर्धिष्यते	स्पर्धताम्	
स्पृश् (६ प०, छूना)	स्पृशति	पस्पृशं	स्पृष्टा	स्पृक्ष्यति	स्पृशतु	
स्पृह् (१० उ०, चाहना)	स्पृहयति	स्पृहयांचकार	स्पृहयिता	स्पृहयिष्यति	स्पृहयतु	
स्फुट् (६ प०, खिलना)	स्फुटति	पुस्फोट	स्फुटिता	स्फुटिष्यति	स्फुटतु	
स्फुर् (६ प०, फड़कना)	स्फुरति	पुस्फोर	स्फुरिता	स्फुरिष्यति	स्फुरतु	
स्मि (१ आ०, मुस्कराना)	स्मयते	सिस्मिये	स्मेता	स्मेष्यते	स्मयताम्	
स्मृ (१ प०, सोचना)	स्मरति	सस्मार	स्मर्ता	स्मरिष्यति	स्मरतु	
स्यन्द् (१ आ०, बहना)	स्यन्दते	सस्यन्दे	स्यन्दिता	स्यन्दिष्यते	स्यन्दताम्	
स्रंस् (१ आ०, सरकना)	स्रंसते	सस्रंसे	स्रंसिता	स्रंसिष्यते	स्रंसताम्	
स्रु (१ प०, चूना, निकलना)	स्रवति	सुस्राव	स्रोता	स्रोष्यति	स्रवतु	
स्वद् (१ उ०, स्वाद लेना)आ+	स्वादयति	स्वादयांचकार	स्वादयिता	स्वादयिष्यति	स्वादयतु	
स्वप् (२ प०, सोना)	स्वपिति	सुष्वाप	स्वप्ता	स्वप्स्यति	स्वपितु	
हन् (२ प०, मारना)	हन्ति	जघान	हन्ता	हनिष्यति	हन्तु	
हस् (१ प०, हँसना)	हसति	जहास	हसिता	हसिष्यति	हसतु	
हा (३ प०, छोड़ना)	जहाति	जहौ	हाता	हास्यति	जहातु	
हिस् (७ प०, हिंसा करना)	हिनस्ति	जिहिस	हिंसिता	हिसिष्यति	हिनस्तु	
हु (३ प०, यज्ञ करना)	जुहोति	जुहाव	होता	होष्यति	जुहोतु	
हृ (१ उ०, ले जाना, चुराना)	हरति-ते	जहार	हर्ता	हरिष्यति	हरतु	
हृष् (४ प०, खुश होना)	हृष्यति	जहर्ष	हर्षिता	हर्षिष्यति	हृष्यतु	
हनु (२ आ०, छिपाना)अप+	ह्रुते	जुह्रुवे	ह्रोता	ह्रोष्यते	हनुताम्	
ह्रस् (१ प०, कम होना)	ह्रसति	जह्रास	ह्रसिता	ह्रसिष्यति	ह्रसतु	
ही (३ प०, लज्जा करना)	जिहेति	जिह्राय	हेता	हेष्यति	जिहेतु	
हवे (१ उ०, बुलाना) आ+	आह्वयति	आजुहाव	आह्वाता	आह्वास्यति	आह्वयतु	

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
असेवत्	सेवेत्	सेविषीष्ट	असेविष्ट	असेविष्यत्	सेवयति	सेव्यते
अस्यत्	स्येत्	सेयात्	असासीत्	असास्यत्	साययति	सीयते
अस्खलत्	स्खलेत्	स्खल्यात्	अस्खालीत्	अस्खलिष्यत्	स्खलयति	स्खल्यते
अस्तौत्	स्तुयात्	स्तूयात्	अस्तावीत्	अस्तोष्यत्	स्तावयति	स्तूयते
अस्तृणात्	स्तृणीयात्	स्त्रीयात्	अस्तारीत्	अस्तरिष्यत्	स्तारयति	स्त्रीयते
अतिष्ठत्	तिष्ठेत्	स्थेयात्	अस्थात्	अस्थास्यत्	स्थापयति	स्थीयते
अस्नात्	स्नायात्	स्नायात्	अस्नासीत्	अस्नास्यत्	स्नपयति	स्नायते
अस्निह्यत्	स्निह्येत्	स्निह्यात्	अस्निहत्	अस्नेहिष्यत्	स्नेहयति	स्निह्यते
अस्पन्दत्	स्पन्देत्	स्पन्दिषीष्ट	अस्पन्दिष्ट	अस्पन्दिष्यत्	स्पन्दयति	स्पन्द्यते
अस्पर्धत्	स्पर्धेत्	स्पर्धिषीष्ट	अस्पर्धिष्ट	अस्पर्धिष्यत्	स्पर्धयति	स्पर्ध्यते
अस्पृशत्	स्पृशेत्	स्पृश्यात्	अस्प्राक्षीत्	अस्पृक्ष्यत्	स्पर्शयति	स्पृश्यते
अस्पृहयत्	स्पृहयेत्	स्पृह्यात्	अपस्पृहत्	अस्पृहयिष्यत्	स्पृहयति	स्पृह्यते
अस्फुटत्	स्फुटेत्	स्फुट्यात्	अस्फुटीत्	अस्फुटिष्यत्	स्फोटयति	स्फुट्यते
अस्फुरत्	स्फुरेत्	स्फूर्यात्	अस्फुरीत्	अस्फुरिष्यत्	स्फारयति	स्फूर्यते
अस्मयत्	स्मयेत्	स्मेषीष्ट	अस्मेष्ट	अस्मेष्यत्	स्माययति	स्मीयते
अस्मरत्	स्मरेत्	स्मर्यात्	अस्मर्षीत्	अस्मरिष्यत्	स्मारयति	स्मर्यते
अस्यन्दत्	स्यन्देत्	स्यन्दिषीष्ट	अस्यन्दिष्ट	अस्यन्दिष्यत्	स्यन्दयति	स्यन्द्यते
अस्त्रंसत्	स्त्रंसेत्	स्त्रंसिषीष्ट	अस्त्रंसिष्ट	अस्त्रंसिष्यत्	स्त्रंसयति	स्त्रंस्यते
अस्त्रवत्	स्त्रवेत्	स्त्रूयात्	असुस्त्रवत्	अस्त्रोष्यत्	स्त्रावयति	स्त्रूयते
अस्वादयत्	स्वादयेत्	स्वाद्यात्	असिष्वदत्	अस्वादयिष्यत्	स्वादयति	स्वाद्यते
अस्वपीत्	स्वप्यात्	सुप्यात्	अस्वाप्सीत्	अस्वप्स्यत्	स्वापयति	सुप्यते
अहन्	हन्यात्	वध्यात्	अवधीत्	अहनिष्यत्	घातयति	हन्यते
अहसत्	हसेत्	हस्यात्	अहसीत्	अहसिष्यत्	हासयति	हस्यते
अजहात्	जह्यात्	हेयात्	अहासीत्	अहास्यत्	हापयति	हीयते
अहिनत्	हिंस्यात्	हिंस्यात्	अहिंसीत्	अहिंसिष्यत्	हिंसयति	हिंस्यते
अजुहोत्	जुहुयात्	हूयात्	अहौषीत्	अहोष्यत्	हावयति	हूयते
अहरत्	हरेत्	हियात्	अहर्षीत्	अहरिष्यत्	हारयति	ह्रियते
अहृष्यत्	हृष्येत्	हृष्यात्	अहृषत्	अहर्षिष्यत्	हर्षयति	हृष्यते
अहुत्	हुवीत्	होषीष्ट	अहोष्ट	अहोष्यत्	हावयति	हनूयते
अहसत्	हसेत्	हस्यात्	अहासीत्	अहसिष्यत्	हासयति	हस्यते
अजिहेत्	जिह्वीयात्	हीयात्	अहैषीत्	अहेष्यत्	हेपयति	हीयते
आह्वयत्	आह्वयेत्	आहूयात्	आह्वत्	आह्वास्यत्	आह्वाययति	आहूयते

(१) अकर्मक धातुएँ

लज्जासत्तास्थितिजागरणं वृद्धिक्षयभयजीवतिमरणम् ।

शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थं धातुगणं तमकर्मकमाहुः ॥

इन अर्थों वाली धातुएँ अकर्मक (कर्म-रहित) होती हैं :— लज्जा, होना, रुकना या बैठना, जागना, बढ़ना, घटना, डरना, जीना, मरना, सोना, खेलना, अच्छा लगना, चमकना ।

(२) अनिट् धातुएँ (जिनमें बीच में इ नहीं लगता)

ऊ ऋदन्त औ' शी श्रि डी को छोड़कर एकाच् सब ।
 शक् पच् वच् मुच् सिच् प्रच्छ त्यज् भज्, भुज् यज् सृज् मसृज् युज् ॥
 अद् पद्य खिद् छिद् विद्य तुद् नुद् भिद् सद क्रुध् क्षुध् बुध् ।
 बन्ध् युध् रुध् साध् व्यध् शुध्, सिध् मन्य हन् क्षिप् आप तप ॥ १ ॥
 तृप् दृप् लिप् लुप् वप् स्वप्, शप् सृप् रभ् लभ् गम् ।
 नम् यम् रम् कृश् दंश् दिश् दृश्, मृश् विश् स्पृश् पुष्य दुष ॥
 कृष् तुष् द्विष् शिल्ष् शुष्य शिष् वस्, दह् दिह् लिह् औ' रुह वह् ।
 धातु ये सब अनिट् हैं, परिगणन इनका है यह ॥ २ ॥

सूचना—अन्त्याक्षरों के क्रम से ये धातुएँ पद्यबद्ध हैं । दिवादिगणी धातुओं में, इस प्रकार की अन्य धातुओं से अन्तर के लिए, अन्त में य लगा है । पहले क् अन्तवाली शक् धातु, बाद में च् अन्तवाली, इसी प्रकार क्रमशः धातुएँ हैं । अजन्त धातुओं में ऊकारान्त और दीर्घ ऋकारान्त तथा शी श्रि डी धातु सेट् हैं, शेष अनिट् हैं । जैसे—चि, जि, कृ, ह, धृ, भृ आदि । केवल विशेष प्रचलित धातुओं का ही संग्रह है । अप्रचलित ३० धातुओं का संग्रह नहीं है । सेट् धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में इ लगता है । इट् का अर्थ है 'इ' । सेट् का अर्थ है, स+इट् अर्थात् 'इ' वाली । इसी प्रकार अनिट् का अर्थ है, अन् +इट् अर्थात् 'इ-नहीं' वाली धातुएँ ।

(५) प्रत्यय-विचार

(१) क (२) कवतु प्रत्यय (देखो अभ्यास ३७, ३८, ३९)

सूचना—क और कवतु प्रत्यय भूतकाल में होते हैं। क का त और कवतु का तवत् शेष रहता है। क कर्मवाच्य या भाववाच्य में होता है, कवतु कर्तृवाच्य में। धातु को गुण या वृद्धि नहीं होती है। संप्रसारण होता है। अन्य नियमों के लिए देखो अभ्यास ३७-३९। क प्रत्ययान्त के रूप पुलिंग में रामवत्, स्त्रीलिंग में आ लगाकर रमावत् और नपुंसकलिंग में गृहवत् चलेंगे। यहाँ केवल पुलिंग के ही रूप दिए गये हैं। क-प्रत्ययान्त का कवतु-प्रत्ययान्त रूप बनाने का सरल प्रकार यह है कि क-प्रत्ययान्त के बाद में 'वत्' और जोड़ दें। अभ्यास ३९ में दिए नियमानुसार तीनों लिंगों के रूप चलाएँ। धातुएँ अकारादि-क्र. से दी गई हैं।

अद्	जग्धः (अन्नम्)	कृष्	कृष्टः	घ्रा	घ्रातः	त्यज्	त्यक्तः
		कृ	कीर्णः		घ्राणः	चै	त्रातः
अधि+इ	अधीतः	क्रन्द्	क्रन्दितः	चर्	चरितः	दंश्	दष्टः
अर्च्	अर्चितः	क्रम्	क्रान्तः	चल्	चलितः	दण्ड्	दण्डितः
अस् (२प.)	भूतः	क्री	क्रीतः	चि	चितः	दम्	दान्तः
आप्	आप्तः	क्रीड्	क्रीडितः	चिन्त्	चिन्तितः	दय्	दयितः
आ+रभ्	आरब्धः	कुध्	कुद्धः	चुर्	चोरितः	दह्	दग्धः
आलम्ब्	आलम्बितः	क्षि	क्षीणः	चेष्ट्	चेष्टितः	दा	दत्तः
आ+ह्वे	आहूतः	क्षिप्	क्षिप्तः	छिद्	छिन्नः	दिव्	द्यूनः, द्यूतः
इ	इतः	क्षुभ्	क्षुब्धः	जन्	जातः	दिश्	दिष्टः
इष्	इष्टः	खन्	खातः	जि	जितः	दीप्	दीप्तः
ईक्ष्	ईक्षितः	खाद्	खादितः	जीव्	जीवितः	दुह्	दुग्धः
उत्+डी	उड्डीनः	गण्	गणितः	जृ	जीर्णः	दृश्	दृष्टः
कथ्	कथितः	गम्	गतः	ज्ञा	ज्ञातः	दो (दा)	दितः
कम्	कान्तः	गर्ज्	गर्जितः	ज्वल्	ज्वलितः	द्युत्	द्योतितः
कम्प्	कम्पितः	गृ	गीर्णः	तन्	ततः	धा	हितः
कुप्	कुपितः	गै (गा)	गीतः	तप्	तप्तः	धाव्	धावितः
कूर्द्	कूर्दितः	ग्रस्	ग्रस्तः	तुष्	तुष्टः	धृ	धृतः
कृ	कृतः	ग्रह्	गृहीतः	तृप्	तृप्तः	ध्मा	ध्मातः

ध्वै	ध्यातः	भुज्	भुक्तः	लिख्	लिखितः	श्रु	श्रुतः
ध्वंस्	ध्वस्तः	भू	भूतः	लिह्	लीढः	श्लिप्	श्लिष्टः
नम्	नतः	भृ	भृतः	लुभ्	लुब्धः	सद्	सन्नः
नश्	नष्टः	भ्रम्	भ्रान्तः	वच् (ब्रू)	उक्तः	सन्	सातः
निन्द	निन्दितः	मद्	मत्तः	वद्	उदितः	सह्	सोढः
नी	नीतः	मन्	मतः	वन्द्	वन्दितः	साध्	साधितः
नृत्	नृत्तः	मन्थ्	मन्थितः	वप्	उप्तः	सिच्	सिक्तः
पच्	मिलृः	मा	मितः	वस्	उषितः	सिध्	सिद्धः
पट्	पठितः	मिल्	मिलितः	वह्	ऊढः	सिव्	स्यूतः
पत्	पतितः	मुच्	मुक्तः	वा	वातः	सृज्	सृष्टः
पद्	पन्नः	मुद्	मुदितः	वि+कस्	विकसितः	सेव्	सेवितः
पलाय्	पलायितः	मुह्	मुग्धः, मूढः	विद् (२प.)	विदितः	सो (सा)	सितः
पा (१ प०)	पीतः	मूर्च्छ्	मूर्च्छितः	विद् (१०)	वेदितः	स्तु	स्तुतः
पाल्	पालितः	मृज्	मृष्टः	विश्	विष्टः	स्था	स्थितः
पुष्	पुष्टः	यज्	इष्टः	वृत्	वृत्तः	स्ना	स्नातः
पूज्	पूजितः	यत्	यतितः	वृध्	वृद्धः	स्निह्	स्निग्धः
पृ	पूर्णः	यम्	यतः	वे	उतः	स्पृश्	स्पृष्टः
प्रच्छ्	पृष्टः	या	यातः	व्यथ्	व्यथितः	स्वप्	सुप्तः
प्रथ्	प्रथितः	याच्	याचितः	व्यध्	विद्धः	स्वाद्	स्वादितः
प्र+हि	प्रहितः	युज्	युक्तः	शङ्क्	शङ्कितः	स्विद्	स्विन्नः
प्रेर्	प्रेरितः	युध्	युद्धः	शक्	शक्तः	हन्	हतः
बन्ध्	बद्धः	रक्ष्	रक्षितः	शप्	शप्तः	हस्	हसितः
बुध्	बुद्धः	रच्	रचितः	शम्	शान्तः	हा (३प०)	हीनः
ब्रू	उक्तः	रञ्ज्	रक्तः	शास्	शिष्टः	हा (३आ०)	हानः
भक्ष्	भक्षितः	रम्	रतः	शिक्ष्	शिक्षितः	हिंस्	हिंसितः
भज्	भक्तः	रुच्	रुचितः	शी	शयितः	हु	हुतः
भञ्ज्	भग्नः	रुद्	रुदितः	शुच्	शुचितः	ह	हतः
भण्	भणितः	रुध्	रुद्धः	शुभ्	शोभितः	हष्	हष्टः
भाष्	भाषितः	रुह्	रूढः	शुष्	शुष्कः	हस्	हसितः
भिद्	भिन्नः	लभ्	लब्धः	शृ	शीर्णः	ही	हीतः, हीणः
भी	भीतः	लप्	लषितः	श्रि	श्रितः	ह्वे	हूतः

(३) शतृ प्रत्यय (देखो अभ्यास ४०)

सूचना—परस्मैपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शतृ होता है। शतृ का अत् शेष रहता है। पुंलिङ्ग में पठत् के तुल्य,, स्त्रीलिङ्ग में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपुंसकलिङ्ग में जगत् के तुल्य रूप चलेंगे। यहाँ पर केवल पुंलिङ्ग के रूप दिये गए हैं। रूप बनाने के नियमों के लिए देखें अभ्यास ४०। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अदन्	चल्	चलन्	पत्	पतन्	व्यध्	विध्यन्
अर्च्	अर्चन्	चि	चिन्वन्	पा (१५०)	पिबन्	शक्	शक्नुवन्
अस् (२५०)	सन्	छिद्	छिन्दन्	पाल्	पालयन्	शप्	शपन्
आप्	आप्नुवन्	जप्	जपन्	पूज्	पूजयन्	शम्	शाम्यन्
आ+रुह्	आरोहन्	जि	जयन्	प्रच्छ्	पृच्छन्	शुष्	शुष्यन्
आ+ह्वे	आह्वयन्	जीव्	जीवन्	प्रेर्	प्रेरयन्	श्रि	श्रयन्
इ	यन्	ज्वल्	ज्वलन्	बन्ध्	बध्नान्	श्रु	शृण्वन्
इष्	इच्छन्	तप्	तपन्	भक्ष्	भक्षयन्	सद्	सीदन्
कुप्	कुप्यन्	तुद्	तुदन्	भज्	भजन्	सिच्	सिञ्चन्
कृ	कुर्वन्	तुष्	तुष्यन्				
कृष्	कर्षन्	तृ	तरन्	भिद्	भिन्दन्	सिव्	सीव्यन्
कृ	किरन्	त्यज्	त्यजन्	भृ	भरन्	सृ	सरन्
क्रन्द्	क्रन्दन्	दण्ड्	दण्डयन्		सृज्	सृजन्	
क्रम्	क्राम्यन्	दह्	दहन्	भू	भवन्	सृप्	सर्पन्
क्रीड्	क्रीडन्	त्यज्	त्यजन्	भ्रम्	भ्रमन्		
					भ्राम्यन्	स्तु	स्तुवन्
क्रुध्	क्रुध्यन्	दिव्	दीव्यन्	मिल्	मिलन्	स्था	तिष्ठन्
क्षम्	क्षाम्यन्	दिश्	दिशन्	रक्ष्	रक्षन्	स्पृश्	स्पृशन्
क्षिप्	क्षिपन्	दुह्	दुहन्	रच्	रचयन्	स्मृ	स्मरन्
खन्	खनन्	दृश्	पश्यन्	रुद्	रुदन्	स्वप्	स्वपन्
खाद्	खादन्	धाव्	धावन्	लप्	लपन्	हन्	हनन्
गण्	गणयन्	धृ	धरन्	लिख्	लिखन्	हस्	हसन्
गम्	गच्छन्	ध्यै	ध्यायन्	लिह्	लिहन्	हा (३५०)	जहत्
गर्ज्	गर्जन्	नम्	नमन्	वद्	वदन्	हिस्	हिंसन्
गृ	गिरन्	नश्	नश्यन्	वस्	वसन्	हु	जुह्वत्
गै	गायन्	निन्द्	निन्दन्	वह्	वहन्	ह्	हरन्
घ्रा	जिघ्रन्	नृत्	नृत्यन्	विश्	विशन्	हृष्	हृष्यन्
चर्	चरन्	पठ्	पठन्	वृष्	वर्षन्	ह्वे	ह्वयन्

(४) शानच् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४१)

सूचना—आत्मनेपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शानच् होता है। उभयपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शतृ और शानच् दोनों होते हैं। शानच् का आन शेष रहता है। शानच् प्रत्ययान्त के रूप पुं० में रामवत्, स्त्री० में आ लगाकर रमावत् और नपुं० में गृहवत् चलेंगे। यहाँ पर पुलिङ्ग के ही रूप दिए हैं। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

आत्मनेपदी धातुएँ

उभयपदी धातुएँ

अधि+इ	अधीयानः	मन्	मन्यमानः	कथ्	कथयन्	कथयमानः
आ+रभ्	आरभमाणः	मुद्	मोदमानः	कृ	कुर्वन्	कुर्वाणः
आ+लम्ब्	आलम्बमानः	मृ	प्रियमाणः	क्री	क्रीणन्	क्रीणानः
आस्	आसीनः	यत्	यतमानः	ग्रह्	गृह्णन्	गृह्णानः
ईक्ष्	ईक्षमाणः	याच्	याचमानः	चि	चिन्वन्	चिन्वानः
ईह्	ईहमानः	युध्	युध्यमानः	चिन्त्	चिन्तयन्	चिन्तयमानः
उद्+डी	उड्डयमानः	रुच्	रोचमानः	चुर्	चोरयन्	चोरयमाणः
कम्प्	कम्पमानः	लभ्	लभमानः	ज्ञा	जानन्	जानानः
कूर्द्	कूर्दमानः	वन्द्	वन्दमानः	तन्	तन्वन्	तन्वानः
गाह्	गाहमानः	वि+राज्	विराजमानः	दा	ददत्	ददानः
ग्रस्	ग्रसमानः	वृत्	वर्तमानः	धा	दधत्	दधानः
चेष्ट्	चेष्टमानः	वृध्	वर्धमानः	नी	नयन्	नयमानः
जन्	जायमानः	व्यथ्	व्यथमानः	पच्	पचन्	पचमानः
त्रै	त्रायमाणः	शङ्क्	शङ्कमानः	ब्रू	ब्रुवन्	ब्रुवाणः
त्वर्	त्वरमाणः	भिक्ष्	भिक्षमाणः	भुज्	भुञ्जन्	भुञ्जानः
दय्	दयमानः	शी	शयानः	मुच्	मुञ्चन्	मुञ्चमानः
द्युत्	द्योतमानः	शुच्	शोचमानः	यज्	यजन्	यजमानः
ध्वंस्	ध्वंसमानः	शुभ्	शोभमानः	यज्	युञ्जन्	युञ्जानः
पलाय्	पलायमानः	श्लाघ्	श्लाघमानः	रुध्	रुन्धन्	रुन्धानः
प्रथ्	प्रथमानः	सं+पद्	संप्रपन्नः	वह्	वहन्	वहमानः
बाध्	बाधमानः	सह्	सहमानः	श्रि	श्रयन्	श्रयमाणः
भास्	भासमानः	सेव्	सेवमानः	सु	सुन्वन्	सुन्वानः
भिक्ष्	भिक्षमाणः	स्मि	स्मयमानः	ह	हरन्	हरमाणः

(५) तुमुन्, (६) तव्यत्, (७) तृच् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४२, ४५, ४८)

सूचना—(क) तुमुन् प्रत्यय 'को' 'के लिए' अर्थ में होता है। तुमुन् का तुम् शेष रहता है। तुमुन्-प्रत्ययान्त अव्यय होता है, अतः रूप नहीं चलते। धातु को गुण होता है। विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ४२। (ख) तव्यत् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुम् प्रत्ययवाले रूप में तुम् के स्थान पर तव्य लगा दें। तव्यत् प्रत्यय 'चाहिये' अर्थ में होता है। तव्यत् का तव्य शेष रहता है। पुं० में तव्य-प्रत्ययान्त के रूप रामवत्, स्त्री० में आ लगाकर रमावत्, नपुं० में गृहवत् चलेंगे। विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ४५। (ग) तृच् प्रत्यय कर्ता या 'करनेवाला' अर्थ में होता है। तृच् का तृ शेष रहता है। तृच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुम् प्रत्ययवाले रूप में तुम् के स्थान पर तृ लगा दें। तृच् प्रत्ययान्त के रूप पुं० में कर्तृ के तुल्य, स्त्री० में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपुं० में कर्तृ नपुं० के तुल्य चलेंगे। तृच् प्रत्यय के विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ४८। उदाहरणार्थ—तुम्, तव्य, तृ लगाकर इन धातुओं के ये रूप होंगे। कृ-कर्तुम्, कर्तव्य, कर्तृ। ह-हर्तुम्, हर्तव्य, हर्तृ। लिख-लेखितुम्, लेखितव्य, लेखितृ। तव्य और तृच् में तुम् के तुल्य ही सन्धि के कार्य होंगे। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अत्तुम्	ईक्ष्	ईक्षितुम्	क्री	क्रेतुम्	ग्रस्	ग्रसितुम्
अधि+इ	अध्येतुम्	कथ्	कथयितुम्	क्रीड्	क्रीडितुम्	ग्रह्	ग्रहीतुम्
अर्च्	अर्चितुम्	कम्	कमितुम्	क्रुध्	क्रोद्धुम्	घ्रा	घ्रातुम्
अस् (२ प०)	भवितुम्	कम्प्	कम्पितुम्	क्षम्	क्षमितुम्	चर्	चरितुम्
आप्	आप्तुम्	कुप्	कोपितुम्	क्षिप्	क्षेप्तुम्	चल्	चलितुम्
आ+रभ्	आरब्धुम्	कूर्द्	कूर्दितुम्	खन्	खनितुम्	चि	चेतुम्
आ+रुह्	आरोढुम्	कृ	कर्तुम्	खाद्	खादितुम्	चिन्त्	चिन्तयितुम्
आ+लप्	आलपितुम्	कृप्	कल्पितुम्	गण्	गणयितुम्	चुर्	चोरयितुम्
आस्	आसितुम्	कृष्	कर्षुम्	गम्	गन्तुम्	चेष्ट्	चेष्टितुम्
आ+ह्वे	आह्वीतुम्	कृ	करितुम्	गर्ज्	गर्जितुम्	छिद्	छेतुम्
इ	एतुम्	क्रन्द्	क्रन्दितुम्	गृ	गरितुम्	जन्	जनितुम्
इष्	एषितुम्	क्रम्	क्रमितुम्	गै (गा)	गातुम्	जप्	जपितुम्

जि	जेतुम्	पद्	पत्तुम्	याच्	याचितुम्	शप्	शत्तुम्
जीव्	जीवितुम्	पलाय्	पलायितुम्	युज्	योक्तुम्	शम्	शमितुम्
ज्ञा	ज्ञातुम्	पा(१,२ पं०)	पातुम्	युध्	योद्धुम्	शिक्ष्	शिक्षितुम्
ज्वल्	ज्वलितुम्	पाल्	पालयितुम्	रक्ष्	रक्षितुम्	शी	शयितुम्
डी	डयितुम्	पुष्	पोषितुम्	रच्	रचयितुम्	शुच्	शोचितुम्
तप्	तप्तुम्	पूज्	पूजयितुम्	रम्	रन्तुम्	शुभ्	शोभितुम्
तृप्	तर्पितुम्	प्रच्छ्	प्रष्टुम्	राज्	राजितुम्	श्रि	श्रयितुम्
तृ	तरितुम्	प्रेर्	प्रेरयितुम्	रुच्	रोचितुम्	श्रु	श्रोतुम्
त्यज्	त्यक्तुम्	बन्ध्	बन्धुम्	रुद्	रोदितुम्	श्लिष्	श्लेष्टुम्
त्रै	त्रातुम्	बाध्	बाधितुम्	रुध्	रोद्धुम्	सह्	सोद्धुम्
दंश्	दंष्टुम्	बुध्	बोद्धुम्	लभ्	लब्धुम्	सिच्	सेक्तुम्
दह्	दग्धुम्	ब्रू	वक्तुम्	लम्ब्	लम्बितुम्	सिध्	सेद्धुम्
दा	दातुम्	भक्ष्	भक्षयितुम्	लष्	लषितुम्	सिव्	सेवितुम्
दिश्	देष्टुम्	भज्	भक्तुम्	लिख्	लेखितुम्	सु	सोतुम्
दीक्ष्	दीक्षितुम्	भाष्	भाषितुम्	लिह्	लेढुम्	सृ	सर्तुम्
दुह्	दोग्धुम्	भिद्	भेतुम्	लुभ्	लोभितुम्	सृज्	स्रष्टुम्
द्युत्	द्योतितुम्	भी	भेतुम्	वच्	वक्तुम्	सृप्	सर्त्तुम्
द्रुह्	द्रोग्धुम्	भुज्	भोक्तुम्	वद्	वदितुम्	सेव्	सेवितुम्
धा	धातुम्	भू	भवितुम्	वन्द्	वन्दितुम्	स्तु	स्तोतुम्
धाव्	धावितुम्	भृ	भर्तुम्	वप्	वसुम्	स्था	स्थातुम्
धृ	धर्तुम्	भ्रम्	भ्रमितुम्	वस्	वस्तुम्	स्ना	स्नातुम्
ध्यै	ध्यातुम्	मन्	मन्तुम्	वह्	वोढुम्	स्पर्ध्	स्पर्धितुम्
ध्वंस्	ध्वंसितुम्	मा	मातुम्	विद् (४,६,७)वेत्तुम्		स्पृश्	स्पृष्टुम्
नम्	नन्तुम्	मिल्	मेलितुम्	विश्	वेष्टुम्	स्मृ	स्मर्तुम्
नश्	नशितुम्	मुच्	मोक्तुम्	वृ (१०) वारयितुम्		हन्	हन्तुम्
निन्द्	निन्दितुम्	मुद्	मोदितुम्	वृत्	वर्तितुम्	हस्	हसितुम्
नी	नेतुम्	मृ	मर्तुम्	वृध्	वर्धितुम्	हा	हातुम्
नृत्	नर्तितुम्	यज्	यष्टुम्	वृष्	वर्षितुम्	हिंस्	हिसितुम्
पच्	पक्तुम्	यत्	यतितुम्	वे	वातुम्	हु	होतुम्
पद्	पठितुम्	यम्	यन्तुम्	शंक्	शङ्कितुम्	ह	हर्तुम्
पत्	पतितुम्	या	यातुम्	शक्	शक्तुम्	हष्	हर्षितुम्

(८) क्त्वा, (९) ल्यप् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४३, ४४)

सूचना— 'कर' या 'करके' अर्थ में क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय होते हैं। क्त्वा का त्वा और ल्यप् का य शेष रहता है। धातु से पहले उपसर्ग नहीं होगा तो क्त्वा होगा। यदि उपसर्ग पहले होगा तो ल्यप् होगा। दोनों प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते हैं, अतः इनके रूप नहीं चलते। दोनों प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के नियमों के लिए देखें अभ्यास ४३, ४४। जिन उपसर्गों के साथ ल्यप् वाले रूप अधिक प्रचलित हैं, वही यहाँ दिए गए हैं। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

अद्	जग्ध्वा	प्रजग्ध्य	क्षम्	क्षमित्वा	संक्षम्य
अधि+इ	—	अधीत्य	क्षिप्	क्षिप्त्वा	प्रक्षिप्य
अर्च्	अर्चित्वा	समर्च्य	क्षुभ्	क्षुभित्वा	प्रक्षुभ्य
अस् (२ प०)	भूत्वा	सम्भूय	खन्	खनित्वा	उत्खन्य
अस् (४ प०)	असित्वा	प्रास्य		खात्वा	उत्खाय
आ+ट्	—	आटृत्य	गण्	गणयित्वा	विगणय्य
आप्	आप्त्वा	प्राप्य	गम्	गत्वा	आगम्य
आस्	आसित्वा	उपास्य			आगत्य
इ	इत्वा	प्रेत्य	गृ	गीर्त्वा	उद्गीर्य
इष्	इष्ट्वा	समिष्य	गै (गा)	गीत्वा	प्रगाय
ईक्ष्	ईक्षित्वा	समीक्ष्य	ग्रस्	ग्रसित्वा	संग्रस्य
उत्+डी	—	उड्डीय	ग्रह्	गृहीत्वा	संगृह्य
कम्	कमित्वा	संकाम्य	घ्रा	घ्रात्वा	आघ्राय
कूर्द्	कूर्दित्वा	प्रकूर्द्य	चर्	चरित्वा	आचर्य
कृ	कृत्वा	उपकृत्य	चल्	चलित्वा	प्रचल्य
कृष्	कृष्ट्वा	आकृष्य	चि	चित्वा	संचित्य
कृ	कीर्त्वा	विकीर्य	चिन्त्	चिन्तयित्वा	संचिन्त्य
क्रन्द्	क्रन्दित्वा	आक्रन्द्य	चुर्	चोरयित्वा	संचोर्य
क्रम्	क्रमित्वा	संक्रम्य	छिद्	छित्त्वा	उच्छिद्य
	क्रान्त्वा		जन्	जनित्वा	संजाय
क्री	क्रीत्वा	विक्रीय	जप्	जपित्वा	संजप्य
क्रीड्	क्रीडित्वा	प्रक्रीड्य	जि	जित्वा	विजित्य
कुध्	कुद्ध्वा	संकुध्य	जीव्	जीवित्वा	संजीव्य

ज्ञा	ज्ञात्वा	विज्ञाय	पलाय् (परा+अय्) -	पलाय्य
ज्वल्	ज्वलित्वा	प्रज्वल्य	पा (१ प०)	पीत्वा
तन्	तनित्वा	वितित्य	पाल्	पालयित्वा
तप्	तप्त्वा	संतप्य	पुष्	पुष्ट्वा
तुष्	तुष्ट्वा	संतुष्य	पूज्	पूजयित्वा
तृ	तीर्त्वा	उतीर्य	पृ	पूर्त्वा
त्यज्	त्यक्त्वा	परित्यज्य	प्रच्छ्	पृष्ट्वा
दंश्	दष्ट्वा	संदश्य	बन्ध्	बद्ध्वा
दह्	दग्ध्वा	संदह्य	बुध्	बुद्ध्वा
दा	दत्त्वा	आदाय	ब्रू	उक्त्वा
दिव्	देवित्वा	संदीव्य	भक्ष्	भक्षयित्वा
दिश्	दिष्ट्वा	उपदिश्य	भज्	भक्त्वा
दीप्	दीपित्वा	संदीप्य	भञ्ज्	भङ्क्त्वा
दुह्	दुग्ध्वा	संदुह्य	भाष्	भाषित्वा
दृश्	दृष्ट्वा	संदृश्य	भिद्	भित्त्वा
द्युत्	द्योतित्वा	विद्युत्य	भी	भीत्वा
धा	हित्वा	विधाय	भुज्	भुक्त्वा
धाव्	धावित्वा	प्रधाव्य	भू	भूत्वा
धृ	धृत्वा	आधृत्य	भृ	भृत्वा
ध्मा	ध्मात्वा	आध्माय	भ्रंश्	भ्रष्ट्वा
ध्यै	ध्यात्वा	संध्याय	भ्रम्	भ्रमित्वा
नम्	नत्वा	प्रणम्य		भ्रान्त्वा
नश्	नष्ट्वा	विनश्य	मथ्	मथित्वा
नि+वृ	-	निवृत्य	मन्	मत्वा
नी	नीत्वा	आनीय	मा	मित्वा
नुद्	नुत्वा	प्रणुद्य	मिल्	मिलित्वा
नृत्	नर्तित्वा	प्रनृत्य	मुच्	मुक्त्वा
पच्	पक्त्वा	संपच्य	मुह्	मुग्ध्वा
पट्	पठित्वा	संपठ्य	यज्	इष्ट्वा
पत्	पतित्वा	निपत्य	यम्	यत्वा
पद्	पत्त्वा	संपद्य	या	यात्वा

याच्	याचित्वा	अनुयाच्य	शम्	शान्त्वा	निशम्य
युज्	युक्त्वा	प्रयुज्य	शाम्	शिष्ट्वा	अनुशिष्य
युध्	युद्ध्वा	प्रयुध्य	शी	शयित्वा	मंशय्य
रक्ष्	रक्षित्वा	संरक्ष्य	शुप्	शुष्ट्वा	परिशुष्य
रच्	रचयित्वा	विरचय्य	श्रि	श्रित्वा	आश्रित्य
रभ्	रब्ध्वा	आरभ्य	श्रु	श्रुत्वा	संश्रुत्य
रम्	रत्वा	विरम्य	श्लिप्	श्लिष्ट्वा	आश्लिष्य
रुद्	रुदित्वा	विरुद्य	श्रस्	श्रसित्वा	विश्रस्य
रुध्	रुद्ध्वा	विरुध्य	सद्	सत्त्वा	निषद्य
रुह्	रूढ्वा	आरुह्य	सह्	सोढ्वा	संसह्य
लप्	लपित्वा	विलप्य	साध्	साद्ध्वा	प्रसाध्य
लभ्	लब्ध्वा	उपलभ्य	सिच्	सित्वा	अभिषिच्य
लम्ब्	लम्बित्वा	आलम्ब्य	सिध्	सिद्ध्वा	निषिध्य
लप्	लपित्वा	अभिलप्य	सिव्	सेवित्वा	संसीव्य
लिख्	लिखित्वा	आलिख्य	सृज्	सृष्ट्वा	विसृज्य
लिह्	लीढ्वा	आलिह्य	सेव्	सेवित्वा	निषेव्य
ली	लीत्वा	निलीय	सो	सित्वा	अवसाय
लुभ्	लुब्ध्वा	प्रलुभ्य	स्तु	स्तुत्वा	प्रस्तुत्य
वद्	उदित्वा	अनूद्य	स्था	स्थित्वा	प्रस्थाय
वन्द्	वन्दित्वा	अभिवन्द्य	स्ना	स्नात्वा	प्रस्नाय
वप्	उप्त्वा	समुप्य	स्निह्	स्निग्ध्वा	उपस्निह्य
वस्	उषित्वा	उपोष्य	स्पृश्	स्पृष्ट्वा	संस्पृश्य
वह्	ऊढ्वा	प्रोह्य	स्मृ	स्मृत्वा	विस्मृत्य
विद् (२ प०)	विदित्वा	संविद्य	स्वप्	सुप्त्वा	संषुप्य
विद् (१०)	वेदयित्वा	निवेद्य	हन्	हत्वा	निहत्य
विश्	विष्ट्वा	प्रविश्य	हस्	हसित्वा	विहस्य
वृत्	वर्तित्वा	निवृत्य	हा (३ प०)	हित्वा	विहाय
वृध्	वर्धित्वा	संवृध्य	हु	हुत्वा	आहुत्य
वृप्	वर्षित्वा	प्रवृष्य	ह	हत्वा	प्रहत्य
व्यध्	विद्ध्वा	आविध्य	हप्	हपित्वा	प्रहृष्य
शप्	शप्त्वा	अभिशाप्य	हे	हन्त्वा	

(१०) ल्युट्, (११) अनीयर् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४५, ४९)

सूचना— (क) ल्युट् प्रत्यय भाववाचक शब्द बनाने के लिए धातु से लगता है। ल्युट् का 'अन' शेष रहता है। धातु को गुण होता है। ल्युट्-प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिंग होता है। अन्य नियमों के लिए देखें अभ्यास ४९। (ख) 'चाहिए' अर्थ में अनीयर् प्रत्यय होता है। अनीयर् का 'अनीय' शेष रहता है। अनीयर् प्रत्यय वाला रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि ल्युट् के अन के स्थान पर अनीय लगा दें। अन्य नियमों के लिए देखें अभ्यास ४५। जैसे—कृ का करण, करणीय। दा-दान, दानीय। पठ्-पठन, पठनीय। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अदनम्	कूर्द्	कूर्दनम्	ग्रस्	ग्रसनम्	त्रै (त्रा)	त्राणम्
अधि+इ	अध्ययनम्	कृ	करणम्	ग्रह्	ग्रहणम्	दंश्	दंशनम्
अन्विष्	अन्वेषणम्	कृप्	कल्पनम्	घ्रा	घ्राणम्	दण्ड्	दण्डनम्
अर्च्	अर्चनम्	कृष्	कर्षणम्	चर्	चरणम्	दम्	दमनम्
अर्ज्	अर्जनम्	कृ	करणम्	चल्	चलनम्	दह्	दहनम्
अस् (२)	भवनम्	क्रन्द्	क्रन्दनम्	चि	चयनम्	दा	दानम्
अस् (४)	असनम्	क्रम्	क्रमणम्	चिन्त्	चिन्तनम्	दिव्	देवनम्
आ+क्रम्	आक्रमणम्	क्री	क्रयणम्	चुर्	चोरणम्	दिश्	देशनम्
आ+चर्	आचरणम्	क्रीड्	क्रीडनम्	चेष्ट्	चेष्टनम्	दीप्	दीपनम्
आ+रभ्	आरभणम्	क्रुध्	क्रोधनम्	छिद्	छेदनम्	दुह्	दोहनम्
आ+रुह्	आरोहणम्	क्लिश्	क्लेशनम्	जन्	जननम्	दृश्	दर्शनम्
आ+लप्	आलपनम्	क्षम्	क्षमणम्	जप्	जपनम्	द्युत्	द्योतनम्
आस्	आसनम्	क्षिप्	क्षेपणम्	जि	जयनम्	द्रुह्	द्रोहणम्
आ+ह्वे	आह्वानम्	खन्	खननम्	जीव्	जीवनम्	धा	धानम्
इ	अयनम्	खाद्	खादनम्	ज्ञा	ज्ञानम्	धाव्	धावनम्
इष्	एषणम्	गण्	गणनम्	ज्वल्	ज्वलनम्	धृ	धरणम्
ईक्ष्	ईक्षणम्	गम्	गमनम्	डी	डयनम्	ध्यै (ध्या)	ध्यानम्
उद्+डी	उड्डयनम्	गर्ज्	गर्जनम्	तप्	तपनम्	ध्वंस्	ध्वंसनम्
कथ्	कथनम्	गाह्	गाहनम्	तुष्	तोषणम्	नन्द्	नन्दनम्
कम्	कमनम्	गृ	गरणम्	तृप्	तर्पणम्	नम्	नमनम्
कम्प्	कम्पनम्	गै (गा)	गानम्	तृ	तरणम्	नश्	नशनम्
कुप्	कोपनम्	ग्रन्थ्	ग्रन्थनम्	त्यज्	त्यजनम्	नि+गृ	निगरणम्

निन्द्	निन्दनम्	भुज्	भोजनम्	लभ्	लभनम्	शम्	शमनम्
नि+यम्	नियमनम्	भू	भवनम्	लम्ब्	लम्बनम्	शास्	शासनम्
नि+वस्	निवसनम्	भृ	भरणम्	लष्	लषणम्	शिक्ष्	शिक्षणम्
नि+विद्	निवेदनम्	भ्रंश्	भ्रंशनम्	लस्	लसनम्	शी	शयनम्
नि+सिध्	निषेधनम्	भ्रम्	भ्रमणम्	लिख्	लेखनम्	शुभ्	शोभनम्
नी	नयनम्	मद्	मदनम्	लिह्	लेहनम्	शुष्	शोषणम्
नृत्	नर्तनम्	मन्	मननम्	ली	लयनम्	श्रि	श्रयणम्
पच्	पचनम्	मन्थ्	मन्थनम्	लुट्	लोटनम्	श्रु	श्रवणम्
पठ्	पठनम्	मा	मानम्	लुप्	लोपनम्	सं+मिल्	संमेलनम्
पत्	पतनम्	मिल्	मेलनम्	लुभ्	लोभनम्	सद्	सदनम्
पलाय्	पलायनम्	मुच्	मोचनम्	लोक्	लोकनम्	सह्	सहनम्
पा (१,२)	पानम्	मुद्	मोदनम्	लोच्	लोचनम्	साध्	साधनम्
पाल्	पालनम्	मुष्	मोषणम्	वच्	वचनम्	सिच्	सेचनम्
पुष्	पोषणम्	मुह्	मोहनम्	वञ्च्	वञ्चनम्	सिव्	सेवनम्
पूज्	पूजनम्	मृ	मरणम्	वद्	वदनम्	सु	सवनम्
प्र+काश्	प्रकाशनम्	यज्	यजनम्	वन्द्	वन्दनम्	सृ	सरणम्
प्रच्छ्	प्रच्छनम्	यत्	यतनम्	वप्	वपनम्	सृज्	सर्जनम्
प्र+आप्	प्रापणम्	यम्	यमनम्	वर्ण्	वर्णनम्	सृप्	सर्पणम्
प्र+विश्	प्रवेशनम्	या	यानम्	वह्	वहनम्	सेव्	सेवनम्
प्र+हस्	प्रहसनम्	याच्	यांचनम्	वि+किस्	विकसनम्	स्तु	स्तवनम्
प्रेर् (प्र+ईर्)	प्रेरणम्	युज्	योजनम्	विद्	वेदनम्	स्था	स्थानम्
प्रेष्	प्रेषणम्	युध्	योधनम्	वि + धा	विधानम्	स्ना	स्नानम्
बन्ध्	बन्धनम्	रंज्	रंजनम्	वि + नश्	विनशनम्	स्निह्	स्नेहनम्
बाध्	बाधनम्	रक्ष्	रक्षणम्	वि + लप्	विलपनम्	स्पर्श	स्पर्शनम्
बुध्	बोधनम्	रच्	रचनम्	वि + श्वस्	विश्वसनम्	स्मृ	स्मरणम्
ब्रू	वचनम्	रम्	रमणम्	वृ	वरणम्	स्त्रंस	स्त्रंसनम्
भंज्	भंजनम्	राज्	राजनम्	वृत्	वर्तनम्	स्वप्	स्वपनम्
भक्ष्	भक्षणम्	रुच्	रोचनम्	वृध्	वर्धनम्	हन्	हननम्
भज्	भजनम्	रुद्	रोदनम्	वृष्	वर्षणम्	हु	हवनम्
भाष्	भाषणम्	रुध्	रोधनम्	वेप्	वेपनम्	ह	हरणम्
भिद्	भेदनम्	लप्	लपनम्	शप्	शपनम्	हष्	हर्षणम्

(१२) घञ् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४७)

सूचना— भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है। घञ् का 'अ' शेष रहता है। घञन्त शब्द पुलिग होता है। घञ् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के नियमों के लिए देखें अभ्यास ४७। घञ् - प्रत्ययान्त शब्द उपसर्गों के साथ बहुत प्रचलित हैं। उपसर्ग लगाकर स्वयं अन्य रूप बनावें।
धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अधि+इ	अध्यायः	चर्	चारः	प्र+भू	प्रभावः	वि+लप्	विलापः
अभि+लप्	अभिलाषः	चल्	चालः	प्र+विश्	प्रवेशः	वि+वह्	विवाहः
अव+तृ	अवतारः	चि	कायः	प्र+सद्	प्रसादः	वि+श्रम्	विश्रामः
अव+लिह्	अवलेहः	चुर्	चोरः	प्र+सृ	प्रसारः	वि+श्वस्	विश्वान्यः
अस् (२ प०)	भावः	छिद्	छेदः	प्र+स्तु	प्रस्तावः	वि+सृज्	विस्मयः
आ+क्षिप्	आक्षेपः	जप्	जापः	प्र+ह	प्रहारः	वृप्	वर्षः
आ+गम्	आगमः	तप्	तापः	बुध्	बोधः	शप्	शापः
आ+चर्	आचारः	त्यज्	त्यागः	भज्	भागः	शम्	शमः
आ+दृश्	आदर्शः	दह्	दाहः	भिद्	भेदः	शुच्	शोकः
आ+धृ	आधारः	दा	दायः	भुज्	भोगः	शुष्	शोषः
आ+मुद्	आमोदः	दिव्	देवः	मिल्	मेलः	श्रि	श्रायः
आ+रुह्	आरोहः	दुह्	दोहः	मुह्	मोहः	श्रु	श्रावः
आ+वृत्	आवर्तः	द्रुह्	द्रोहः	मृज्	मार्गः	श्लिप्	श्लेषः
आ+हन्	आघातः	धा	धायः	यज्	यागः	सं+कृ	संस्कारः
उत्+पद्	उत्पादः	नश्	नाशः	युज्	योगः	सं+तन्	सन्तानः
उन्+सह्	उत्साहः	नि+इ	न्यायः	युध्	योधः	सं+तुष्	सन्तोषः
उप+दिश्	उपदेशः	नि+वस्	निवासः	रञ्ज्	रागः	सं+मन्	संमानः
कम्	कामः	नि+सिध्	निषेधः	रम्	रामः	सं+यम्	संयमः
कुप्	कोपः	पच्	पाकः	रुध्	रोधः	सिच्	सेकः
कृ	कारः	पठ्	पाठः	लभ्	लाभः	सृज्	सर्गः
कृष्	कर्षः	पत्	पातः	लिख्	लेखः	स्निह्	स्नेहः
क्षिप्	क्षेपः	पुष्	पोषः	लुभ्	लोभः	स्पृश्	स्पर्शः
क्षुभ्	क्षोभः	प्र+काश्	प्रकाशः	वद्	वादः	स्वप्	स्वापः
गम्	गमः	प्र+कृ	प्रकारः	वि+कस्	विकासः	हस्	हासः
ग्रस्	ग्रासः	प्र+कृष्	प्रकर्षः	वि+कृप्	विकल्पः	हृ	हारः
ग्रह्	ग्राहः	प्र+नम्	प्रणामः	विन्द्	विन्दः	हृ	हारः

(१३) ण्वल् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४९)

सूचना—कर्ता या 'करने वाला' अर्थ में ण्वल् प्रत्यय होता है। ण्वल् के स्थान पर 'अक' शेष रहता है। धातु को गुण या वृद्धि होगी। कर्ता के अनुसार तीनों लिंग होते हैं। विशेष नियम के लिए देखें अभ्यास ४९। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

अध्यापि	अध्यापकः	द्विप्	द्वेषकः	प्र+विश्	प्रवेशकः	रुध्	रोधकः
अन्विष्	अन्वेषकः	धा	धायकः	प्र+सृ	प्रसारकः	लिख्	लेखकः
उद्+पद्	उत्पादकः	धाव्	धावकः	प्र+स्तु	प्रस्तावकः	वच्	वाचकः
उद्+धृ	उद्धारकः	धृ	धारकः	प्रेर् (प्र+ईर्)	प्रेरकः	वह्	वाहकः
उत्+मद्	उन्मादकः	ध्यै	ध्यायकः	बन्ध्	बन्धकः	वि+कस्	विकासकः
उप+दिश्	उपदेशकः	ध्वंस्	ध्वंसकः	बाध्	बाधकः	वि+आप्	व्यापकः
उप+आस्	उपासकः	नश्	नाशकः	बुध्	बोधकः	वि+धा	विधायकः
कृ	कारकः	निन्द्	निन्दकः	ब्रू	वाचकः	वि+भज्	विभाजकः
कृष्	कर्षकः	नि+विद्	निवेदकः	भक्ष्	भक्षकः	वि+स्कम्भ्	विष्कम्भकः
क्रीड्	क्रीडकः	नि+वृ	निवारकः	भज्	भाजकः	वृध्	वर्धकः
खाद्	खादकः	नि+सिध्	निषेधकः	भाष्	भाषकः	वृष्	वर्षकः
गण्	गणकः	नी	नायकः	भिद्	भेदकः	शास्	शासकः
गम्	गमकः	नृत्	नर्तकः	भुज्	भोजकः	शिक्ष्	शिक्षकः
गै	गायकः	पच्	पाचकः	भू	भावकः	शुष्	शोषकः
ग्रह्	ग्राहकः	पठ्	पाठकः	मुच्	मोचकः	श्रु	श्रावकः
चि	चायकः	पत्	पातकः	मुद्	मोदकः	सं+चल्	संचालकः
चिन्त्	चिन्तकः	परि+ईक्ष्	परीक्षकः	मुह्	मोहकः	सं+तप्	संतापकः
छिद्	छेदकः	पा	पायकः	मृ	मारकः	सं+युज्	संयोजकः
जन्	जनकः	पाल्	पालकः	यज्	याजकः	सं+ह	संहारकः
तृ	तारकः	पुष्	पोषकः	यम्	यमकः	साध्	साधकः
दह्	दाहकः	पूज्	पूजकः	याच्	याचकः	सिच्	सेचकः
दीप्	दीपकः	प्र+काश्	प्रकाशकः	युज्	योजकः	सेव्	सेवकः
दुह्	दोहकः	प्र+क्षिप्	प्रक्षेपकः	युध्	योधकः	स्था	स्थापकः
दृश्	दर्शकः	प्र+चर्	प्रचारकः	रंज्	रंजकः	स्मृ	स्मारकः
द्युत्	द्योतकः	प्रच्छ्	प्रच्छकः	रक्ष्	रक्षकः	हन्	घातकः
द्रुह्	द्रोहकः	प्र+दा	प्रदायकः	रुच्	रोचकः	हृष्	हर्षकः

(१४) क्तिन्, (१५) यत् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४६, ५१)

सूचना— (क) भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है। क्तिन् का 'ति' शेष रहता है। 'ति' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ५१। (ख) 'चाहिए' अर्थ में अजन्त धातुओं से यत् प्रत्यय होता है। यत् का 'य' शेष रहता है। तीनों लिंगों के रूप चलते हैं। विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ४६। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

क्तिन् प्रत्यय

यत् प्रत्यय

अधि+इ	अधीति:	तृप्	तृप्ति:	यम्	यति:	अधि+इ	अध्येयम्
अस् (२ प०)	भूति:	दीप्	दीप्ति:	युज्	युक्ति:	आ+ख्या	आख्येयम्
आप्	आसि:	दृश्	दृष्टि:	रम्	रति:	उप+मा	उपमेयम्
आ+संज्	आसक्ति:	धृ	धृति:	रुह्	रुद्धि:	क्री	क्रेयम्
आ+सद्	आसत्ति:	नम्	नति:	वि+आप्	व्याप्ति:	क्षि	क्षेयम्
आ+हु	आहुति:	नी	नीति:	वि+नश्	विनष्टि:	गै (गा)	गेयम्
इष्	इष्टि:	पच्	पक्ति:	वि+श्रम्	विश्रान्ति:	घ्रा	घ्रेयम्
उप+लभ्	उपलब्धि:	पा (१ प०)	पीति:	वृत्	वृत्ति:	चि	चेयम्
ऋध्	ऋद्धि:	पुष्	पुष्टि:	वृध्	वृद्धि:	जि	जेयम्
कम्	कान्ति:	पृ	पूति:	वृष्	वृष्टि:	ज्ञा	ज्ञेयम्
कृ	कृति:	प्र+आप्	प्राप्ति:	शक्	शक्ति:	दा	देयम्
कृष्	कृष्टि:	प्री	प्रीति:	शम्	शान्ति:	धा	धेयम्
कृ	कीर्ति:	बुध्	बुद्धि:	शुध्	शुद्धि:	ध्यै (ध्या)	ध्येयम्
कृत्	कीर्ति:	ब्रू	उक्ति:	श्रु	श्रुति:	नी	नेयम्
क्रम्	क्रान्ति:	भज्	भक्ति:	सं+पद्	संपत्ति:	पा (१ प०)	पेयम्
क्षम्	क्षान्ति:	भी	भीति:	सं+सृ	संसृति:	भू	भव्यम्
गम्	गति:	भुज्	भुक्ति:	सं+ह	संहति:	मा	मेयम्
गै	गीति:	भू	भूति:	सिध्	सिद्धि:	वि+धा	विधेयम्
चि	चिति:	भ्रम्	भ्रान्ति:	सृज्	सृष्टि:	श्रु	श्रव्यम्
छिद्	छित्ति:	मन्	मति:	स्तु	स्तुति:	सु	सव्यम्
जन्	जाति:	मा	मिति:	स्था	स्थिति:	स्था	स्थेयम्
ज्ञा	ज्ञाति:	मुच्	मुक्ति:	स्मृ	स्मृति:	हा	हेयम्
तुष्	तुष्टि:	यज्	इष्टि:	स्वप्	सुप्ति:	हु	हव्यम्

(६) सन्धि-विचार

(क) स्वर-सन्धि

(१) (इको यणचि) ई ई को यू, उ ऊ को वृ, ऋ ऋ को रु, लृ लृ को लृ हो जाता है, यदि बाद में कोई स्वर हो तो। सवर्ण (वैसा ही) स्वर हो तो नहीं। जैसे—

(१) प्रति + एकः = प्रत्येकः	(२) पठतु + एकः = पठत्वेकः	(३) पितृ + आ = पित्रा
इति + अत = इत्यत्र	अनु + अयः = अन्वयः	मातृ + ए = मात्रे
इति + आह = इत्याह	मधु + अरिः = मध्वरिः	धातृ + अंशः = धात्रंशः
यदि + अपि = यद्यपि	गुरु + आज्ञा = गुर्वाज्ञा	कर्तृ + आ = कर्त्रा
सुधी + उपास्यः =	पठतु + अत्र = पठत्वत्र	कर्तृ + ई = कर्त्री
सुध्युपास्यः	वधू + औ = वध्वौ	(४) लृ + आकृतिः = लाकृतिः

(२) (एचोऽयवायावः) ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय् और औ को आव् हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो। (पदान्त ए या ओ के बाद अ होगा तो नहीं)। जैसे—

(१) हरे + ए = हरये	(२) भौ + अति = भवति	(३) नै + अकः = नायकः
कवे + ए = कवये	पो + अनः = पवनः	गै + अकः = गायकः
ने + अनम् = नयनम्	विष्णो + ए = विष्णवे	गै + अति = गायति
जे + अः = जयः	भानो + ए = भानवे	(४) पौ + अकः = पावकः
संचे + अः = संचयः	भो + अनम् = भवनम्	द्वौ + एतौ = द्वावेतौ

(३) (क) (वान्तो यि प्रत्यये) ओ को अव्, औ को आव् हो जाता है, बाद में य से प्रारम्भ होनेवाला कोई प्रत्यय हो तो। (ख) (गोर्युतौ, अध्वपरिमाणे च) गो शब्द के ओ को अव् होता है बाद में यूति शब्द हो तो, मार्ग की लम्बाई के अर्थ में। (ग) (धातोस्तन्निमित्तस्यैव) धातु के ओ को अव् और औ को आव् होता है यकारादि प्रत्यय बाद में हो तो। यह तभी होगा जब ओ या औ प्रत्यय के कारण हुआ हो। जैसे—

(क) गो + यम् = गव्यम्	(ख) गो + यूतिः = गव्यूतिः	(ग) लो + यम् = लव्यम्
नौ + यम् = नाव्यम्		भौ + यम् = भाव्यम्

(४) (आदगुणः) (१) अ या आ के बाद इ या ई हो तो दोनों को 'ए' होगा। (२) अ या आ के बाद उ या ऊ हो तो दोनों को 'ओ' होगा। (३) अ या आ के बाद ऋ या ॠ हो तो दोनों को 'अर्' होगा। (४) अ या आ के बाद लृ होगा तो दोनों को 'अल्' होगा। जैसे—

(१) महा + ईशः = महेशः	(२) पर + उपकारः = परोपकारः	(३) महा + ऋषिः = महर्षिः
गण + ईशः = गणेशः	महा + उत्सवः = महोत्सवः	राज + ऋषिः = राजर्षिः
उप + इन्द्रः = उपेन्द्रः	गंगा + उदकम् = गंगोदकम्	ग्रीष्म + ऋतुः = ग्रीष्मर्तुः
रमा + ईशः = रमेशः	हित + उपदेशः = हितोपदेशः	(४) तव + लृकारः = तवल्कारः

(५) (वृद्धिोचि) (१) अ या आ के बाद ए या ऐ हो तो दोनों को 'ऐ' होगा। (२) अ या आ के बाद ओ या औ हो तो दोनों को 'औ' होगा।

(१) अत्र+एकः = अत्रैकः

कृष्ण+एकत्वम् = कृष्णैकत्वम्

सा+एषा = सैषा

देव+ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम्

(२) तण्डुल+ओदनम् = तण्डुलौदनम्

गङ्गा+ओघः = गङ्गाघः

देव+औदार्यम् = देवौदार्यम्

कृष्ण+औत्कण्ठ्यम् = कृष्णौत्कण्ठ्यम्

(६) (क) (एत्येधत्यूट्सु) अ या आ के बाद एकारादि इ धातु या एध् धातु हो या ऊट् (ऊ) हो तो दोनों को मिलकर एक वृद्धि अक्षर (ऐ या औ) होता है। अ या आ + ए = ऐ। अ या आ + ओ या ऊ = औ। उप + एति = उपैति। अप + एति = अपैति। उप + एधते = उपैधते। प्रष्ठ + ऊहः = प्रष्ठौहः। विश्व + ऊहः = विश्वौहः। (ख) (अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्) अक्ष + ऊहिनी में वृद्धि होकर 'अक्षौहिणी' रूप बनता है। (ग) (स्वादीरिणिः) स्व के बाद ईर या ईरिन् होगा तो वृद्धि होगी। स्व + ईरः = स्वैरः। स्व + ईरिन् = स्वैरिन्, स्वैरी। स्व = ईरिणी = स्वैरिणी। (घ) (प्रादूहोढोढ्येष्येषु) प्र के बाद ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य हो तो वृद्धि होती है। प्र + ऊहः = प्रौहः। प्र + ऊढः = प्रौढः। प्र + ऊढिः = प्रौढिः। प्र + एषः = प्रैषः। प्र + एष्यः = प्रैष्यः।

(७) (एङः पदान्तादति) पद (अर्थात् सुबन्त या तिङन्त) के अन्तिम ए या ओ के बाद अ हो तो उसको पूर्वरूप (अर्थात् ए या ओ जैसा रूप) हो जाता है। (अ हटा है, इस बात के सूचनार्थ ऽ (अवग्रहचिह्न) लगा दिया जाता है। जैसे—

(१) हरे+अव = हरेऽव

लोके+अस्मिन् = लोकेऽस्मिन्

विद्यालये+अस्मिन् = विद्यालयेऽस्मिन्

(२) विष्णो+अव = विष्णोऽव

रामो+अधुना = रामोऽधुना

लोको+अयम् = लोकोऽयम्

(८) (एङिपररूपम्) उपसर्ग के अ के बाद धातु का ए या ओ हो तो दोनों के स्थान पर पररूप (अर्थात् ए या ओ जैसा रूप) हो जाता है। अर्थात् (१) अ + ए = ए, (२) अ + ओ = ओ। जैसे—

(१) प्र + एजते = प्रेजते

(२) उप + ओषति = उपोषति

(९) (शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्) शकन्ध् आदि शब्दों में टि (अर्थात् अन्तिम र-सहित अगला अंश) को पररूप हो जाता है। शक + अन्धुः = शकन्धुः। कर्क + अन्धुः = कर्कन्धुः। मनस् + ईषा = मनीषा। कुल + अटा = कुलटा। पतत् + अञ्जलिः = पतञ्जलिः। मार्त + ण्डः = मार्तण्डः। (क) (सीमन्तः केशवेशे) सीम + अन्तः = सीमन्तः (बालों में माँग)। अन्यत्र सीमान्तः (हृद)। (ख) (सारङ्गः पशुपक्षिणोः) सार + अङ्गः = सारङ्गः (पशु, पक्षी)। अन्यत्र साराङ्गः। (ग) (आत्वोष्ठयोः समासे वा) समास में विकल्प से ओतु, ओष्ठ को पररूप। स्थूल + ओतुः = स्थूलोतुः, स्थूलौतुः। बिम्ब + ओष्ठः = बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः।

(१०) (उपसर्गादृति धातौ) अकारान्त उपसर्ग के बाद कोई ऋ से प्रारम्भ होनेवाली धातु हो तो दोनों को आर् वृद्धि हो जायेगी। अ+ऋ = आर्। उप+ऋच्छति = उपाच्छति। प्र+ऋच्छति = प्राच्छति।

(११) (अचो रहाभ्यां द्वे) किसी स्वर के बाद र या ह हो और उसके बाद कोई यर् (ह को छोड़कर कोई व्यंजन) हो तो उसे विकल्प से द्वित्व हो जाता है। जैसे—कार्+यम् = कार्यम्, कार्यम्। कर् + तव्यम् = कर्तव्यम्, कर्तव्यम्। कर् + म = कर्म, कर्म।

(१२) (ओमाडोश्च) अ के बाद ओम् या आङ् (आ) हो तो पररूप अर्थात् दोनों को ओम् या आ होता है। शिवाय+ओं नमः = शिवायों नमः। शिव+एहि (आ+इहि) = शिवेहि।

(१३) (अकः सवर्णे दीर्घः) अ इ उ ऋ के बाद कोई सवर्ण (सदृश) अक्षर हो तो दोनों के स्थान पर उसी वर्ण का दीर्घ अक्षर हो जाता है। अर्थात् (१) अ या आ+अ या आ = आ। (२) इ या ई+इ या ई = ई। (३) उ या ऊ+उ या ऊ = ऊ। (४) ऋ+ऋ = ऋ।

(१) हिम+आलयः = हिमालयः	(२) गिरि+ईशः = गिरीशः	(३) गुरु+उपदेशः = गुरुपदेशः
विद्या+आलयः = विद्यालयः	श्री+ईशः = श्रीशः	विष्णु+उदयः = विष्णुदयः
दैत्य+अरिः = दैत्यारिः	इति+इदम् = इतीदम्	(४) होत+ऋकारः = होतृकारः

(१४) (सर्वत्र विभाषा गोः) गो शब्द के बाद अ हो तो विकल्प से उसे प्रकृतिभाव (वैसा ही रहना) होता है। गो + अग्रम् = गोअग्रम्, गोऽग्रम्।

(१५) (अवङ् स्फोटायनस्य) स्वर बाद में हो तो गो शब्द के ओ को अवङ् (अव) हो जाता है विकल्प से। गो + अग्रम् = गवाग्रम्। गो + अक्षः = गवाक्षः।

(१६) (इन्द्रे च) गो के ओ को अवङ् (अव) होगा, इन्द्र बाद में हो तो। गो + इन्द्रः = गवेन्द्रः।

(१७) (ऋत्यकः) ह्रस्व या दीर्घ अ इ उ के बाद ऋ हो तो विकल्प से प्रकृतिभाव होगा। जहाँ सन्धि नहीं होगी वहाँ यदि शब्द का अन्तिम अक्षर दीर्घ होगा तो वह ह्रस्व हो जायेगा। ब्रह्मा + ऋषिः = ब्रह्मऋषिः, ब्रह्मर्षिः। सप्त + ऋषीणाम् = सप्तऋषीणाम्, सप्तर्षीणाम्।

(१८) (प्रत्यभिवादेऽणुद्वे) अभिवादन के प्रत्युत्तर में वाक्य के अन्तिम अक्षर को प्लुत (३) हो जाता है और वह उदात्त होता है। आयुष्मानेधि देवदत्त३।

(१९) (दूरादधूते च) दूर से सम्बोधन में वाक्य के अन्तिम अक्षर को प्लुत होगा। आगच्छ देवदत्त३।

(२०) (ईदूदेदद्विवचनं प्रगृह्यम्) शब्द या धातु के द्विवचन के ई, ऊ और ए के साथ कोई सन्धि नहीं होगी। हरी + एतौ = हरी एतौ। विष्णू + इमौ = विष्णू इमौ। गङ्गे = अमू = गङ्गे अमू। पचेते + इमौ = पचेते इमौ।

(२१) (अदसो मात्) अदस् शब्द के म् के बाद ई या ऊ होंगे तो उसके साथ कोई सन्धि नहीं होगी। अमी + ईशाः = अमी ईशाः। अमू + आसाते = अमू आसाते।

(ख) हल्-सन्धि (व्यंजन-सन्धि)

(२२) (स्तोः श्चुना श्चुः) स् या तवर्ग से पहले या बाद में श् या चवर्ग कोई भी हो तो स् को श् और तवर्ग को चवर्ग होगा। त् > च्, द् > ज्, न् > ज्, स् > श्। जैसे—

रामस्+च = रामश्च	सत्+चित् = सच्चित्	सद्+जनः = सज्जनः
कस्+चित् = कश्चित्	सत्+चरित्रः = सच्चरित्रः	उद्+ज्वलः = उज्ज्वलः
हरिस्+शेते = हरिश्शेते	उत्+चारणम् = उच्चारणम्	शार्ङ्गिन्+जय = शार्ङ्गिञ्जय

(२३) (शात्) श् के बाद तवर्ग को चवर्ग नहीं होगा। (नियम २२ का अपवाद सूत्र)। प्रश्नः = प्रश्नः। विश्+नः = विश्नः।

(२४) (ष्टुना ष्टुः) स् या तवर्ग से पहले या बाद में ष् या टवर्ग कोई भी हो तो स् को ष् और तवर्ग को टवर्ग होगा। त् > ट्, द् > ढ्, न् > ण्, स् > ष्। जैसे—

रामस्+षष्ठः = रामष्षष्ठः	इष्+तः = इष्टः	उद्+डीनः = उड्डीनः
रामस्+टीकते = रामष्टीकते	दुष्+तः = दुष्टः	विष्+नुः = विष्णुः
पेष्+ता = पेष्ठा	तत्+टीका = तट्टीका	कृष्+नः = कृष्णः

(२५) (कः) (न पदान्ताद्वोरनाम्) पद के अन्तिम टवर्ग के बाद स् और तवर्ग को ष् और टवर्ग नहीं होते, नाम् को छोड़कर। (नियम २४ का अपवाद)। षट् + सन्तः = षट् सन्तः। षट् + ते = षट् ते।

(ख) (अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्) टवर्ग के बाद नाम्, नवति, नगरी हों तो नियम २४ के अनुसार इनके न को ण होगा। (बाद में नियम २९ के अनुसार ङ् को ण् होगा)। षट् + नाम् = षण्णाम्। षट् + नवतिः = षण्णवतिः। षट् + नगर्यः = षण्णगर्यः।

(२६) (तोः षि) तवर्ग के बाद ष हो तो तवर्ग को टवर्ग नहीं होगा। सन् + षष्ठः = सन् षष्ठः।

(२७) (झलां जशोऽन्ते) झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और ऊष्म) को जश् (३ अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय अक्षर) होते हैं, झल् पद के अन्तिम अक्षर हों तो। (पद का अर्थ है सुबन्त शब्द या तिङन्त धातुएँ)। जैसे—

दिक्+अम्बरः = दिगम्बरः	चित्+आनन्दः = चिदानन्दः	षट्+एव = षडेव
दिक्+गजः = दिग्गजः	जगत्+ईशः = जगदीशः	षट्+आननः = षडाननः
अच्+अन्तः = अजन्तः	उत्+देश्यम् = उद्देश्यम्	सुप्+अन्तः = सुबन्तः

(२८) (झलां जश् झशि) झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और उष्म) को जश् (३ अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय अक्षर) होते हैं, बाद में झश् (वर्ग के ३, ४) हों तो। (विशेष—यह नियम पद के बीच में लगता है और नियम २७ पद के अन्त में। यही दोनों में भेद है) जैसे—

दध्+धः = दग्धः	बुध्+धिः = बुद्धिः	लभ्+धः = लब्धः
दुध्+धम् = दुग्धम्	सिध्+धिः = सिद्धिः	क्षुभ्+धः = क्षुब्धः
द्रोघ्+धा = द्रोघ्धा	वृध्+धिः = वृद्धिः	आरभ्+धम् = आरब्धम्

(२९) (क) (यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा) पदान्त यर् (ह् के अतिरिक्त सभी व्यंजन) के बाद अनुनासिक (वर्ग का पंचम अक्षर) हो तो यर् को अपने वर्ग का पंचम अक्षर हो जायेगा। यह नियम ऐच्छिक है। (ख) (प्रत्यये भाषायां नित्यम्) यदि प्रत्यय का ' म ' इत्यादि बाद में होगा तो यह नियम ऐच्छिक नहीं होगा, अपितु नित्य लागेगा।

दिक्+नागः = दिङ्नागः	सद्+मतिः = सन्मतिः	तत्+मात्रम् = तन्मात्रम्
तत्+न = तन्न	पद्+नगः = पन्नगः	तत्+मयम् = तन्मयम्
एतत्+मुरारिः = एतन्मुरारिः	षट्+मुखः = षण्मुखः	वाक्+मयम् = वाङ्मयम्

(३०) (तोलि) तवर्ग के बाद ल हो तो तवर्ग को भी ल् हो जाता है। अर्थात् (१) त् या द् + ल = ल्ल, (२) न् + ल = ण्ल । जैसे—

तत्+लयः = तल्लयः	उद्+लेखः = उल्लेखः
तत्+लीनः = तल्लीनः	विद्वान्+लिखति = विद्वल्लिखति

(३१) (उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य) उद् के बाद स्था या स्तम्भ धातु हो तो उसे पूर्वसवर्ण होता है अर्थात् स्था और स्तम्भ के स् को थ् होगा। बाद में नियम ३२ के अनुसार थ् का लोप हो जायेगा। उद्+स्थानम् = उत्थानम्। उद् + स्तम्भनम् = उत्तम्भनम्। द् को नियम ३४ से त्।

(३२) (झरो झरि सवर्णे) व्यंजन के बाद झर् (वर्ग के १, २, ३, ४ और श ष स) का विकल्प से लोप होता है, बाद में सवर्ण (वैसा ही) झर् हो तो। उद्+थ् थानम् = उत्थानम्। रुन्ध्+धः = रुन्धः। कृष्णर्+ध्धिः = कृष्णधिः।

(३३) (झयो होऽन्यतरस्याम्) झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद ह् हो तो उसे विकल्प से पूर्वसवर्ण होता है अर्थात् पूर्व अक्षर के वर्ग का चतुर्थ अक्षर हो जाता है। क् या ग् +ह = गघ, त् या द्+ह = दध। वाग्+हरिः = वाग्घरिः, वाग्हरिः। तद्+हितः = तद्धितः।

(३४) (खरि च) झलों (१, २, ३, ४ ऊम्) को चर् (१, उसी वर्ग के प्रथम अक्षर) होते हैं, बाद में खर् (१, २, श, ष, स) हों तो। ग् > क्, ज् > च्, द् > त्।

सद्+कारः = सत्कारः	तद्+परः = तत्परः	तज्+छिवः = तच्छिवः
उद्+पन्नः = उत्पन्नः	उद्+साहः = उत्साहः	दिग्+पालः = दिक्पालः

(३५) (क) (शश्छोऽटि) पदान्त झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद श् हो तो उसको छ् हो जाता है। यदि उस श् के बाद अट् (स्वर, ह्, य्, व्, र्) हो तो। श् को छ् होने पर पूर्ववर्ती द् को नियम २२ से ज् और ज् को नियम ३४ से च्। पूर्ववर्ती त् हो तो नियम २२ से च्। यह नियम विकल्प से लगता है।

तद् (तत्) + शिवः = तत्शिवः तच्छिवः	सत्+शीलः = सच्छीलः
„ „ + शिला = तत्शिला, तच्छिला	उत्+श्रायः = उच्छ्रायः

(ख) (छत्वमपीति कच्यम्) श् के बाद अम् (स्वर, ह्, अन्तःस्थ, वर्ग का ५) हो तो श् को छ् विकल्प से छ् होगा। तत्+श्लोकेन = तच्छ्लोकेन, तच्श्लोकेन।

(३६) (मोऽनुस्वारः) पदान्त म् को अनुस्वार (ँ) हो जाता है, बाद में कोई हल् (व्यंजन) हो तो। बाद में स्वर होगा तो अनुस्वार कदापि नहीं होगा। जैसे—

हरिम्+वन्दे = हरिं वन्दे	सत्यम्+वद = सत्यं वद
कार्यम्+कुरु = कार्यं कुरु	धर्मम्+चर = धर्मं चर

(३७) (नश्चापदान्तस्य झलि) अपदान्त न् और म् को अनुस्वार (ँ) हो जाता है, बाद में झल् (वर्ग के १, २, ३, ४ ऊष्म) हो तो। जैसे—यशान् + सि = यशांसि। पयान्+सि = पयांसि। नम्+स्यति = नंस्यति। आक्रम्+स्यते = आक्रंस्यते। यह नियम पद के बीच में लगता है।

(३८) (अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) अनुस्वार के बाद यय् (श, ष, स, ह को छोड़कर सभी व्यंजन) हो तो अनुस्वार को परसवर्ण (अगले वर्ण का पंचम अक्षर) हो जाता है। जैसे—

अं+कः = अङ्कः	अं+चितः = अञ्चितः	शां+तः = शान्तः
शं+का = शङ्का	गुं+फितः = गुम्फितः	गुं+फति = गुम्फति

(३९) (वा पदान्तस्य) पद के अन्तिम अनुस्वार के बाद यय् (श, ष, स, ह को छोड़कर सभी व्यंजन) हो तो अनुस्वार को परसवर्ण विकल्प से होगा। यह नियम पदान्त में लगता है। त्वं+करोषि = त्वङ्करोषि, त्वं करोषि। सम्+गच्छध्वम् = सङ्गच्छध्वम्, संगच्छध्वम्।

(४०) (मो राजि समः क्रौ) सम् के बाद राज् शब्द हो तो सम् के म् को म् ही रहता है। उसको अनुस्वार नहीं होता। सम् + राट् = सम्राट्। सम्राजौ, सम्राजः।

(४१) (इणोः कुक् टुक् शरि) इ या ण् के बाद शर् (श, ष, स) हो तो विकल्प से बीच में क् या ट् जुड़ जाते हैं। इ के बाद क् और ण् के बाद ट्। प्राइ+षष्ठः = प्राइषष्ठः, प्राइषष्ठः। सुगण्+षष्ठः = सुगणट्षष्ठः, सुगणषष्ठः।

(४२) (डः सि धुट्) इ के बाद स हो बीच में ध् विकल्प से जुड़ जाता है। नियम ३४ से ध् को त् और पूर्ववर्ती ड को ट्। षट्+सन्तः = षट्सन्तः, षट्सन्तः।

(४३) (नश्च) न् के बाद स हो तो बीच में विकल्प से ध् जुड़ जाता है। नियम ३४ से ध् को त्। सन् + सः = सन्तसः, सन्तसः।

(४४) (शि तुक्) पदान्त न् के बाद श् हो तो विकल्प से बीच में त् जुड़ जाता है। नियम ३५ से श् को छ्। सन् + शम्भुः = सञ्छम्भुः, सञ्छम्भुः।

(४५) (डमो ह्रस्वादचि डमुण् नित्यम्) ह्रस्व स्वर के बाद इ ण् न् हों और बाद में कोई स्वर हो तो बीच में एक इ ण् न् और जुड़ जाता है। जैसे—प्रत्यङ्+आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्+ईशः = सुगण्णीशः। सन्+अच्युतः = सन्नच्युतः।

(४६) (क) (रषाभ्यां नो णः समानपदे) र्, ष्, या ऋ ऋ के बाद न् को ण् हो जाता है। जैसे—कीर्+नः = कीर्णः, पूर्+नः = पूर्णः। पूष्+ना = पूष्णा। पितृ+नाम् = पितृणाम्। (ख) (अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेजि) र् और ष् के बाद न् को ण् होगा, बीच में स्वर, ह, अन्तस्थ, कवर्ग, पवर्ग, आ, न् हो तो भी। रामेन=रामेण। (ग) (पदान्तस्य) पद के अन्तिम न् को ण् नहीं होता। रामान् का रामान् ही रहेगा।

(४७) (क) (अपदान्तस्य मूर्धन्यः, इण्कोः, आदेशप्रत्यययोः) अ आ को छोड़कर सभी स्वर, ह, अन्तःस्थ और कवर्ग के बाद स् को ष् होता है, यदि वह किसीके स्थान पर आदेश हुआ हो या प्रत्यय का स् हो। पद के अन्तिम स् को ष् नहीं होगा। जैसे—रामे+सु=रामेषु, हरि+सु=हरिषु। अधुक्+सत्=अधुक्षत्। (ख) (नुम्विसर्जनीयशर्ध्ववायेऽपि) इण् (अ आ से भिन्न स्वर, ह, अन्तःस्थ) और कवर्ग के बाद स् को ष् होता है, यदि बीच में नुम् (न्), विसर्ग (:) और श् ष् स् में से कोई एक हो तो भी। धनून्+सि = धनूषि। पिपटीष्+सु = पिपटीषु। पिपटीः+सु = पिपटीःषु।

(४८) (समः सुटि, संपुंकानां सो वक्तव्यः) सम्+स्कर्ता में म् के स्थान पर र होकर स् हो जाता है और उससे पहले अनुस्वार (ं) या अनुनासिक (ः) लग जाता है। बीच के एक स् का लोप भी हो जायेगा। सम्+स्कर्ता = सँस्कर्ता, संस्कर्ता। सम्+कृ धातु होने पर इसी प्रकार स् लगाकर सन्धि होगी। संस्करोति, संस्कृतम्, संस्कारः आदि।

(४९) (पुमः खव्यम्परे) पुम् के म् को र होकर नियम ४८ के अनुसार स् हो जायेगा, बाद में कोकिलः, पुत्रः आदि शब्द हों तो। स् से पहले ं या ः लग जाएँगे। पुम्+कोकिलः = पुंस्कोकिलः। पुम्+पुत्रः = पुंस्पुत्रः।

(५०) (नश्छव्यप्रशान्) पद के अन्तिम न् को रु (: , स्) होता है, यदि छव् (च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्) बाद में हो और छव् के बाद अम् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के पंचम अक्षर) हो तो। प्रशान् शब्द में नियम नहीं लगेगा। न् को स् होने पर उससे पहले ं या ः लग जाएँगे। इस नियम का रूप होगा—न्+छव् = ःस्+छव् या ंस्+छव्। नियम २२ के अनुसार श्चुत्व प्राप्त होगा तो होगा।

कस्मिन्+चित् = कस्मिंश्चित्

धीमान्+च = धीमांश्च

तस्मिन्+तरौ = तस्मिंस्तारौ

शार्ङ्गिन्+छिन्धि = शार्ङ्गिंश्छिन्धि

चक्रिन्+त्रायस्व = चकिंस्त्रायस्व

तस्मिन्+तथा = तस्मिंस्तथा

(५१) (कानाग्रेडिते) कान् +कान् में पहले कान् के न् को र होकर स् होगा और उससे पहले ः या ं होगा। कान् + कान् = काँस्कान्, कांस्कान्।

(५२) (क) (छे च) ह्रस्व स्वर के बाद छ हो तो बीच में त् ल-ा जाता है। नियम २२ से त् को च् हो जाएगा। स्व+छाया = स्वच्छाया। शिव+छाया = शिवच्छाया। स्व+छन्दः = स्वच्छन्दः। (ख) (दीर्घात्) दीर्घ स्वर के बाद छ हो तो भी बीच में त् लगेगा। त् को च् पूर्ववत्। चे+छिद्यते=चेच्छिद्यते। (ग) (पदान्ताद् वा) पद के अन्तिम दीर्घ अक्षर के बाद छ हो तो विकल्प से त् लगेगा। लक्ष्मी+छाया = लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया। (घ) (आङ्माडोश्च) आ और मा के बाद छ होगा तो त् नित्य लगेगा। त् को च् पूर्ववत्। आ+छादयति = आच्छादयति। मा+छिदत् = माच्छिदत्।

(ग) विसर्ग-सन्धि (स्वादि-सन्धि)

(५३) (ससजुषो रुः) पद के अन्तिम स् को रु (र) होता है । सुजुष् शब्द के ष को भी रु होता है । (सूचना — इस रु को साधारणतया नियम ५४ से विसर्ग होकर विसर्ग : ही शेष रहता है । जैसे—राम+स् = रामः, कृष्ण+स् = कृष्णः । इसको ही नियम ६६, ६७, ६८ से उ या य् होता है । जहाँ उ या य् नहीं होगा, वहाँ र शेष रहता है । अतः अ आ के अतिरिक्त अन्य स्वरों के बाद स् या विसर्ग का र शेष रहता है, बाद में कोई स्वर या व्यंजन (वर्ग के ३, ४, ५ हों तो) । जैसे—

हरिः+अवदत् = हरिरवदत्	वधूः+एषा = वधूरेषा
शिशुः+आगच्छत् = शिशुरागच्छत्	गुरोः+भाषणम् = गुरोर्भाषणम्
पितुः+इच्छा = पितुरिच्छा	हरेः+द्रव्यम् = हरेर्द्रव्यम्

(५४) (खरवसानयोर्विसर्जनीयः) र को विसर्ग होता है, बाद में खर् (वर्ग के १, २, श ष स) हो या कुछ न हो तो । पुनर्+पृच्छति = पुनः पृच्छति । राम+स् (र) = रामः । (सूचना — पुं० शब्दों के प्रथमा एक० में जो विसर्ग दीखता है, वह स् का ही विसर्ग है । उसको नियम ५३ से रु (र) होता है और नियम ५४ से र को विसर्ग (:) ।

(५५) (विसर्जनीयस्य सः) विसर्ग के बाद खर् (वर्ग के १, २, श ष स) हो तो विसर्ग को स् हो जाता है । (श या चवर्ग बाद में हो तो नियम २२ के श्रुत्व सन्धि भी) । जैसे—

हरिः+त्रायते = हरिस्त्रायते	विष्णुः+त्राता = विष्णुस्त्राता
रामः+तिष्ठति = रामस्तिष्ठति	बालः+चलति = बालश्चलति
कः+चित् = कश्चित्	जनाः+तिष्ठन्ति = जनास्तिष्ठन्ति

(५६) (वा शरि) विसर्ग के बाद शर् (श, ष, स) हो तो विसर्ग को विसर्ग और स् दोनों होते हैं । श्रुत्व या श्रुत्व (नियम २२, २४) यदि प्राप्त होंगे तो लगेंगे । जैसे—

हरिः+शेते = हरिःशेते, हरिश्शेते	रामः+षष्ठः = रामषष्ठः
रामः+शेते = रामःशेते, रामश्शेते	बालः+स्वपिति = बालस्वपिति

(५७) (कस्कादिषु च) कस्क आदि शब्दों में विसर्ग से पहले अ या आ होगा तो विसर्ग को स् होगा, यदि इण् (इ, उ) होगा तो ष् होगा । कः+कः = कस्कः । कौतः+कुतः = कौतस्कुतः । सर्पिः+कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका । धनुः+कपालम् = धनुष्कपालम् । भाः+करः = भास्करः ।

(५८) (सोऽपदादौ, पाशकल्पककाम्येष्विति०) पाश, कल्प, क और काम्य प्रत्यय बाद में हों तो विसर्ग को स् हो जाएगा । पयः+पाशम् = पयस्पाशम् । यशः+कल्पम् = यशस्कल्पम् । यशः+कम् = यशस्कम् । यशस्काम्यति ।

(५९) (इणः षः) पाश, कल्प, क, काम्य प्रत्यय बाद में हो तो विसर्ग को ष् हो जायेगा, यदि वह विसर्ग इ, उ के बाद होगा तो । सर्पिष्पाशम्, सर्पिष्कल्पम्, सर्पिष्कम् ।

(६०) (नमस्युरसोर्गत्योः) गतिसंज्ञक नमस् और पुरस् के विसर्ग को स् होता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो। (कृ धातु बाद में होती है तो नमस्, पुरस् गतिसंज्ञक होते हैं)
नमः+करोति = नमस्करोति। पुरः+करोति = पुरस्करोति।

(६१) (इदुदुपथस्य चाप्रत्ययस्य) उपधा (अन्तिम से पूर्ववर्ण) में इ या उ हो तो उसके विसर्ग को ष होता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो। यह विसर्ग प्रत्यय का नहीं होना चाहिए। निः+प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम्। निः+क्रान्तः = निष्क्रान्तः। आविः+कृतम् = आविष्कृतम्।
दुः+कृतम् = दुष्कृतम्।

(६२) (तिरसोऽन्यतरस्याम्) तिरस् के विसर्ग को विकल्प से ष होता है, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। तिरः+करोति = तिरस्करोति, तिरः करोति। तिरः+कृतम् = तिरस्कृतम्।

(६३) (इसुसोः सामर्थ्ये) इस् और उस् के विसर्ग को विकल्प से ष होता है, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। दोनों पदों में मिलने की सामर्थ्य होनी चाहिए, तभी ष होगा। सर्पिः+करोति = सर्पिष्करोति, सर्पिः करोति। धनुः+करोति = धनुष्करोति, धनुःकरोति।

(६४) (नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य) समास होने पर इस् और उस् के विसर्ग को नित्य ष होगा, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। इस् और उस् वाला शब्द उत्तरपद (बाद के पद) में नहीं होना चाहिए। सर्पिः+कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका।

(६५) (अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य) अ के बाद विसर्ग को स् नित्य होता है, समास में, बाद में कृ कम् आदि हों तो। यह विसर्ग अव्यय का नहीं होना चाहिए और उत्तरपद में न हो। अयः+कारः = अयस्कारः। अयः+कामः = अयस्कामः। इसी प्रकार अयस्कंसः, अयस्कुम्भः, अयस्पात्रम्, अयस्कुशा, अयस्कर्णी।

(६६) (अतो रोरप्लुतादप्लुते) ह्रस्व अ के बाद रु (स् के र् या :) को उ हो जाता है, बाद में ह्रस्व अ हो तो। (सूचना—इस उ को पूर्ववर्ती अ के साथ सन्धिनियम ४ से गुण करके ओ हो जाता है और बाद के अ को सन्धि नियम ७ से पूर्वरूप सन्धि होती है। अतएव अर् या अः+अ = ओऽ होता है।) जैसे—

शिवः (शिव र्)+अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः	कः+अयम् = कोऽयम्
रामः (राम र्)+अस्ति = रामोऽस्ति	रामः+अवदत् = रामोऽवदत्
कः (क र्)+अपि = कोऽपि	देवः+अधुना = देवोऽधुना

(६७) (हशि च) ह्रस्व अ के बाद रु (स् के र् या :) को उ हो जाता है, बाद में हश् (वर्ग के ३, ४, ५ ह, अन्तःस्थ) हो तो। (सूचना—सन्धिनियम ६६ बाद में अ हो तब लगता है, यह बाद में हश् हो तो। उ करने के बाद सन्धिनियम ४ से अ+उ को गुण होकर ओ होगा। अतः अः+हश् = ओ+हश् होगा, अर्थात् अः को ओ होगा।)

शिवः (शिव र्)+वन्द्यः = शिवो वन्द्यः	देवः+गच्छति = देवो गच्छति
रामः (राम र्)+वदति = रामो वदति	बालः+हसति = बालो हसति

(६८) (भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि) भोः, भगोः, अघोः शब्द और अ या आ के बाद रु (स्कार या :) को य् होता है, यदि बाद में अश् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के ३, ४, ५) हो तो। सूचना—इसके उदाहरण आगे नियम ७० में देखें।

(६९) (हलि सर्वेषाम्) भोः, भगोः, अघोः और अ या आ के बाद य् का लोप अवश्य हो जाता है, बाद में व्यंजन हो तो। सूचना—इसके उदाहरण आगे नियम ७० में देखें।

(७०) (लोपः शाकल्यस्य) अ या आ पहले हो तो पदान्त य् और व् का लोप विकल्प से होता है, बाद में अश् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के ३, ४, ५) हो । (सूचना—नियम ६८ के य् के बाद व्यंजन होगा तो नियम ६९ से य् का लोप अवश्य होगा। य् के बाद यदि कोई स्वर आदि होगा तो नियम ७० से य् का लोप ऐच्छिक होगा। य् का लोप होने पर कोई दीर्घ, गुण आदि सन्धि नहीं होगी। अर्थात् अः या आः+अश् = अ या आ+अश्।)

भोः (भोय्)+देवाः = भो देवाः

नराः+हसन्ति = नरा हसन्ति

देवाः (देवाय्)+नम्याः = देवा नम्याः

देवाः+इह = देवा इह, देवायिह

देवाः (देवाय्)+यान्ति = देवा यान्ति

पुत्रः+आगच्छति = पुत्र आगच्छति

(७१) (क) (रोऽसुपि) अहन् के न् को र् होता है, बाद में कोई सुप् (विभक्ति) न हो तो। अहन्+अहः = अहरहः। अहन्+गणः = अहर्गणः। (ख) (रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्) रूप, रात्रि, रथन्तर बाद में हो तो अहन् के न् को रु होगा। उसको नियम ६७ से उ होगा और नियम ४ से गुण होकर ओ होगा। अहन्+रूपम् = अहोरूपम्, अहन्+रात्रः = अहोरात्रः। इसी प्रकार अहोरथन्तरम्। (ग) (अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः) अहर् आदि के र् के बाद पति आदि हों तो र् को र् विकल्प से रहता है। अहर्+पतिः = अहर्पतिः। इसी प्रकार गीर्पतिः, धूर्पतिः। अन्यत्र विसर्ग।

(७२) (रो रि) र् के बाद र् हो तो पहले र् का लोप हो जाता है।

(७३) (ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः) ढ्र या र् लोप हुआ हो तो उससे पूर्ववर्ती उ, इ, उ को दीर्घ हो जाता है। उढ्र+ढः = ऊढ्रः, लिढ्र+ढः = लीढ्रः।

पुनर्+रमते = पुना रमते

शम्भुर्+राजते = शम्भू राजते

हरिर्+रम्यः = हरी रम्यः

अन्तर्+राष्ट्रियः = अन्ताराष्ट्रियः

(७४) (एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि) सः और एषः के विसर्ग या स्कार लोप होता है, बाद में कोई व्यंजन हो तो। (सकः, एषकः, असः, अनेषः के विसर्ग का लोप नहीं होगा।) (सूचना—सः, एषः के बाद अ होगा तो सन्धिनियम ६६ से 'ओऽ' होगा। अन्य स्वर बाद में होंगे तो नियम ६८ और ७० से विसर्ग का लोप होगा।)

(१) सः (सस्)+पठति = स पठति

(२) सः+अयम् = सोऽयम्

एषः (एषस्)+विष्णुः = एष विष्णुः

सः+इच्छति = स इच्छति

(७५) (सोऽचि लोपे चेत्यादपूरणम्) सः के विसर्ग का लोप हो जाता है, यदि बाद में स्वर हो और लोप करने से श्लोक के पाद की पूर्ति हो। सः+एषः = सैष दाशरथी रामः।

(७) प्रत्यय-परिचय

आवश्यक निर्देश

१. पुस्तक में मुख्य रूप से प्रयुक्त १०० धातुओं से क्त आदि प्रत्यय लगाकर बने हुए रूपों का विवरण इस प्रत्यय-परिचय में सारणी (चार्ट) के रूप में प्रस्तुत किया गया। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

२. धातुओं के मूलरूप कोष्ठ में दिए गए हैं। कतिपय धातुओं के प्रारम्भ या अन्त में कुछ अनुबन्ध लगे हुए हैं। इन अनुबन्धों के लोप से धातु में कुछ विशेष कार्य होते हैं। जैसे—डुकृञ् (कृ) धातु के डु के हटने से धातु से क्त्रि (त्रि) और मप् (म) प्रत्यय। (डिवतः क्त्रिः, ३-३-८८, क्त्रेर्मन्तियम्, ४-४-२०)। कृत्या निर्वृत्तं कृत्रिमम्, कृ+त्रि+म = कृत्रिमम्। इसी प्रकार डुपचष् (पच्) का पक्त्रिमम् और डुवप् (वप्) का उपत्रिमम् बनता है। डुकृञ् में ञ् हटने से अर्थात् जित् होने से धातु उभयपदी है। स्वरितजितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले (१-३-७२)। सभी जित् धातुएँ उभयपदी होती हैं। जैसे—डुदाञ् (दा), डुधाञ् (धा) आदि। सभी डित् (जिसमें ङ् हटा है) धातुएँ आत्मनेपदी होती हैं। अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (१-३-१२)। जैसे—चक्षिङ् (चक्ष), शीङ् (शी), दीङ् (दी), देङ् (दे) आदि धातुएँ। धातु का अन्तिम उ हटने से क्त्वा (त्वा) प्रत्यय होने पर इ विकल्प से होता है। जैसे—दिवु (दिव्) का देवित्वा द्यूत्वा, सिवु (सिव्) का सेवित्वा-स्यूत्वा, शमु (शम्) का शमित्वा-शान्त्वा। टु हटने से धातु से अथुच् (अथु) प्रत्यय होता है। ट्वितोऽथुच् (३-३-८९)। टुवेपृ (वेप्) का वेपथुः, टुओश्चि (श्चि) का श्वयथुः।

३. उभयपदी धातुओं के शतृ प्रत्यय के रूप सारणी में दिए गये हैं। शानच् प्रत्यय करने पर ये रूप होंगेः—कथ्—कथयमानः, कृ—कुर्वाणः, क्री—क्रीणानः, क्षिप्—क्षिपमाणः, ग्रह्—ग्रहणानः, चि—चिन्वानः, चिन्त्—चिन्तयमानः, चूर्—चोरयमाणः, ज्ञा—जानानः, तन्—तन्वानः, तुद्—तुदमानः, छिद्—छिन्दानः, दा—ददानः, दुह्—दुहानः, धा—दधानः, नी—नयमानः, पच्—पचमानः, ब्रू—ब्रुवाणः, भक्ष्—भक्षयमाणः, भञ्ज्—भञ्जानः, भिद्—भिन्दानः, भुज्—भुञ्जानः, भृ—बिभ्राणः, मुच्—मुञ्चमानः, याच्—याचमानः, युज्—युञ्जानः, रुध्—रुन्धानः, लिह्—लिहानः, वह्—वहमानः, सु—सुन्वानः, ह—हरमाणः।

प्रत्यय-परिचय (धातु का मूलरूप कोष्ठ में है)

धातु	अर्थ	क्त	क्तवतु	शतृ। शानच्	क्त्वा	ल्यप्
अद् (अद, २ प०, खाना)	जग्धः	जग्धवान्	अदन्	जग्ध्वा	प्रजग्ध्य	
अश् (अशू, ५ आ०, व्यास०)	अष्टः	अष्टवान्	अश्नुवानः	अशित्वा	समश्य	
अस् (अस, २ प०, होना)	भूतः	भूतवान्	सन्	भूत्वा	संभूय	
आप् (आप्लु, ५ प०, पाना)	आसः	आसवान्	आप्नुवन्	आपृत्वा	प्राप्य	
आस् (आस, २ आ०, बैठना)	आसितः	आसितवान्	आसीनः	आसित्वा	उपास्य	
इ (इण्, २ प०, जाना)	इतः	इतवान्	यन्	इत्वा	प्रेत्य	
इ,अधि+(इङ्, २आ०,पढ़ना)	अधीतः	अधीतवान्	अधीयानः	—	अधीत्य	
इष् (इष, ६प०,चाहना)	इष्टः	इष्टवान्	इच्छन्	इष्ट्वा	समिष्य	
ईक्ष् (ईक्ष, १ आ०, देखना)	ईक्षितः	ईक्षितवान्	ईक्षमाणः	ईक्षित्वा	समीक्ष्य	
कथ् (कथ, १० उ०, कहना)	कथितः	कथितवान्	कथयन्	कथयित्वा	संकथ्य	
कुप् (कुप, ४ प०, क्रोध करना)	कुपितः	कुपितवान्	कुप्यन्	कोपित्वा	प्रकुप्य	
कृ (डुकृञ्, ८ उ०, करना)	कृतः	कृतवान्	कुर्वन्	कृत्वा	उपकृत्य	
कृष् (कृष, १ प०, जोतना)	कृष्टः	कृष्टवान्	कर्षन्	कृष्ट्वा	प्रकृष्य	
कृ (कृ, ६ प०, बखेरना)	कीर्णः	कीर्णवान्	किरन्	कीर्त्वा	प्रकीर्य	
क्री (डुक्रीञ्, ९ उ०, खरीदना)	क्रीतः	क्रीतवान्	क्रीणन्	क्रीत्वा	विक्रीय	
क्षिप् (क्षिप, ६ उ०, फेंकना)	क्षिप्तः	क्षिप्तवान्	क्षिपन्	क्षिप्त्वा	प्रक्षिप्य	
गम् (गम्लु, १ प०, जाना)	गतः	गतवान्	गच्छन्	गत्वा	आगत्य	
गृ (गृ, ६ प०, निगलना)	गीर्णः	गीर्णवान्	गिरन्	गीर्त्वा	उद्गीर्य	
ग्रह् (ग्रह, ९ उ०, लेना)	गृहीतः	गृहीतवान्	गृह्णन्	गृहीत्वा	संगृह्य	
घ्रा (घ्रा, १ प०, सूँघना)	घ्रातः	घ्रातवान्	जिघ्रन्	घ्रात्वा	आघ्राय	
चि (चिञ्, ५ उ०, चुनना)	चितः	चितवान्	चिन्वन्	चित्वा	संचित्य	
चिन्त् (चिति, १० उ०, सोचना)	चिन्तितः	चिन्तितवान्	चिन्तयन्	चिन्तयित्वा	संचिन्त्य	
चुर (चुर, १० उ०, चुराना)	चोरितः	चोरितवान्	चोरयन्	चोरयित्वा	संचोर्ष	
छिद् (छिदिर्, ७ उ०, काटना)	छिन्नः	छिन्नवान्	छिन्दन्	छित्वा	संछिद्य	
जन् (जनी, ४ आ०, पैदा होना)	जातः	जातवान्	जायमानः	जनित्वा	संजाय	
जि (जि, १ प०, जीतना)	जितः	जितवान्	जयन्	जित्वा	विजित्य	
ज्ञा (ज्ञा, ९ उ०, जानना)	ज्ञातः	ज्ञातवान्	जानन्	ज्ञात्वा	विज्ञाय	
तन् (तनु, ८ उ०, फैलाना)	ततः	ततवान्	तन्वन्	तनित्वा	वितत्य	
तुद् (तुद, ६ उ०, दुःख देना)	तुन्नः	तुन्नवान्	तुदन्	तुत्वा	संतुद्य	
त्यज् (त्यज, १ प०, छोड़ना)	त्यक्तः	त्यक्तवान्	त्यजन्	त्यक्त्वा	परित्यज्य	
दा (डुदाञ्, ३ उ०, देना)	दत्तः	दत्तवान्	ददत्	दत्त्वा	आदाय	
दिव् (दिबु, ४ प०, चमकना)	द्युतः	द्युतवान्	दीव्यन्	देवित्वा	संदीव्य	

तुमुन्	तव्यत्	तृच्	ल्युट्	कर्म०	णिच्	सन्
अत्तुम्	अत्तव्यम्	अत्ता	अदनम्	अद्यते	आदयति	जिघत्सति
अशितुम्	अशितव्यम्	अशिता	अशनम्	अश्यते	आशयति	अशिशिषते
भवितुम्	भवितव्यम्	भविता	भवनम्	भूयते	भावयति	बुभूषति
आप्तुम्	आप्तव्यम्	आप्ता	आपनम्	आप्यते	आपयति	ईप्सति
आसितुम्	आसितव्यम्	आसिता	आसनम्	आस्यते	आसयति	आसिसिषते
एत्तुम्	एतव्यम्	एता	अयनम्	ईयते	गमयति	जिगमिषति
अध्येत्तुम्	अध्येतव्यम्	अध्येता	अध्ययनम्	अधीयते	अध्यापयति	अधिजिगांसते
एषितुम्	एषितव्यम्	एषिता	एषणम्	इष्यते	एषयति	एषिषति
ईक्षितुम्	ईक्षितव्यम्	ईक्षिता	ईक्षणम्	ईक्ष्यते	ईक्षयति	ईचिक्षिषते
कथयितुम्	कथयितव्यम्	कथयिता	कथनम्	कथ्यते	कथयति	चिकथयिषति
कोपितुम्	कोपितव्यम्	कोपिता	कोपनम्	कुप्यते	कोपयति	चुकोपिषति
कर्तुम्	कर्तव्यम्	कर्ता	करणम्	क्रियते	कारयति	चिकीर्यति
कर्षुम्	कर्षव्यम्	कर्षा	कर्षणम्	कृष्यते	कर्षयति	चिकृक्षति
करितुम्	करितव्यम्	करिता	करणम्	कीर्यते	कारयति	चिकरिषति
क्रेतुम्	क्रेतव्यम्	क्रेता	क्रयणम्	क्रीयते	क्रापयति	चिक्रीषति
क्षेतुम्	क्षेतव्यम्	क्षेता	क्षेपणम्	क्षिप्यते	क्षेपयति	चिक्षिप्सति
गन्तुम्	गन्तव्यम्	गन्ता	गमनम्	गम्यते	गमयति	जिगमिषति
गरितुम्	गरितव्यम्	गरिता	गरणम्	गीर्यते	गारयति	जिगरिषति
ग्रहीतुम्	ग्रहीतव्यम्	ग्रहीता	ग्रहणम्	गृह्यते	ग्राहयति	जिगृक्षति
घ्रातुम्	घ्रातव्यम्	घ्राता	घ्राणम्	घ्रायते	घ्रापयति	जिघ्रासति
चेतुम्	चेतव्यम्	चेता	चयनम्	चीयते	चापयति	चिचीषति
चिन्तयितुम्	चिन्तयितव्यम्	चिन्तयिता	चिन्तनम्	चिन्त्यते	चिन्तयति	चिचिन्तयिषति
चोरयितुम्	चोरयितव्यम्	चोरयिता	चोरणम्	चोर्यते	चोरयति	चुचोरयिषति
छेतुम्	छेतव्यम्	छेता	छेदनम्	छिद्यते	छेदयति	चिच्छित्सति
जनितुम्	जनितव्यम्	जनिता	जननम्	जायते	जनयति	जिजनिषते
जेतुम्	जेतव्यम्	जेता	जयनम्	जीयते	जापयति	जिगीषति
ज्ञातुम्	ज्ञातव्यम्	ज्ञाता	ज्ञानम्	ज्ञायते	ज्ञापयति	जिज्ञासते
तनितुम्	तनितव्यम्	तनिता	तननम्	तन्यते	तानयति	तितंसति
तोत्तुम्	तोत्तव्यम्	तोत्ता	तोदनम्	तुद्यते	तोदयति	तुतुत्सति
त्यक्तुम्	त्यक्तव्यम्	त्यक्ता	त्यजनम्	त्यज्यते	त्याजयति	तित्यक्षति
दातुम्	दातव्यम्	दाता	दानम्	दीयते	दापयति	दित्सति
देवितुम्	देवितव्यम्	देविता	देवनम्	दीव्यते	देवयति	दिदेविषति

धातु	अर्थ	क्त	क्तवतु	शतृ। शानच्	क्त्वा	ल्यप्
दुह् (दुह, २ उ०, दुहना)	दुग्धः	दुग्धवान्	दुहन्	दुग्ध्वा	संदुह्य	
दृश् (दृशिर, १ प०, देखना)	दृष्टः	दृष्टवान्	पश्यन्	दृष्ट्वा	संदृश्य	
धा (डुधाञ्, ३ उ०, धारण०)	हितः	हितवान्	दधत्	हित्वा	विधाय	
नम् (णम, १ प०, झुकना)	नतः	नतवान्	नमन्	नत्वा	प्रणम्य	
नश् (णश, ४ प०, नष्ट होना)	नष्टः	नष्टवान्	नश्यन्	नशित्वा	विनश्य	
नी (णीञ्, १ उ०, ले जाना)	नीतः	नीतवान्	नयन्	नीत्वा	आनीय	
नृत् (नृती, ४ प०, नाचना)	नृत्तः	नृत्तवान्	नृत्यन्	नर्तित्वा	प्रनृत्य	
पच् (डुपचप्, १ उ०, पकना)	पक्कः	पक्कवान्	पचन्	पक्त्वा	संपच्य	
पठ् (पठ, १ प०, पढ़ना)	पठितः	पठितवान्	पठन्	पठित्वा	संपठ्य	
पद् (पद, ४ आ०, जाना)	पन्नः	पन्नवान्	पद्यमानः	पत्त्वा	विपद्य	
पा (पा, १ प०, पीना)	पीतः	पीतवान्	पिबन्	पीत्वा	निपाय	
पा (पा, २ प०, रक्षा करना)	पातः	पातवान्	पान्	पात्वा	प्रपाय	
प्रच्छ् (प्रच्छ, ६ प०, पूछना)	पृष्टः	पृष्टवान्	पृच्छन्	पृष्ट्वा	संपृच्छ्य	
बन्ध् (बन्ध, ९ प०, बाँधना)	बद्धः	बद्धवान्	बध्न्	बद्ध्वा	संबध्य	
ब्रू (ब्रूञ्, २ उ०, बोलना)	उक्तः	उक्तवान्	ब्रुवन्	उक्त्वा	प्रोच्य	
भक्ष् (भक्ष, १० उ०, खाना)	भक्षितः	भक्षितवान्	भक्षयन्	भक्षयित्वा	संभक्ष्य	
भञ्ज् (भञ्जो, ७ प०, तोड़ना)	भग्नः	भग्नवान्	भञ्जन्	भक्त्वा	विभज्य	
भिद् (भिदिर, ७ उ०, तोड़ना)	भिन्नः	भिन्नवान्	भिन्दन्	भित्वा	संभिद्य	
भी (जिभी, ३ प०, डरना)	भीतः	भीतवान्	बिभ्यत्	भीत्वा	संभीय	
भुज् (भुज, ७ उ०, पालना, खाना)	भुक्तः	भुक्तवान्	भुज्जानः	भुक्त्वा	संभुज्य	
भू (भू, १ प०, होना)	भूतः	भूतवान्	भवन्	भूत्वा	संभूय	
भृ (डुभृञ्, ३ प०, पालना)	भृतः	भृतवान्	बिभ्रत्	भृत्वा	संभृत्य	
भ्रम् (भ्रमु, ४ प०, घूमना)	भ्रान्तः	भ्रान्तवान्	भ्राम्यन्	भ्रान्त्वा	संभ्रम्य	
मन्थ् (मन्थ, ९ प०, मथना)	मथितः	मथितवान्	मथन्	मन्थित्वा	संमथ्य	
मा (माङ्, ३ आ०, नापना)	मितः	मितवान्	मिमानः	मित्वा	उपमीय	
मुच् (मुच्च्, ६ उ०, छोड़ना)	मुक्तः	मुक्तवान्	मुञ्चन्	मुक्त्वा	विमुच्य	
मुद् (मुद, १ आ०, प्रसन्न०)	मुदितः	मुदितवान्	मोदमानः	मुदित्वा	प्रमुद्य	
मृ (मृङ्, ६ आ०, मरना)	मृतः	मृतवान्	प्रियमाणः	मृत्वा	प्रमृत्य	
या (या, २ प०, जाना)	यातः	यातवान्	यान्	यात्वा	प्रयाय	
याच् (टुयाच्, १ उ०, माँगना)	याचितः	याचितवान्	याचमानः	याचित्वा	प्रयाच्य	
युज् (युजिर, ७ उ०, मिलाना)	युक्तः	युक्तवान्	युज्जन्	युक्त्वा	प्रयुज्य	
युध् (युध, ४ उ०, लड़ना)	युद्धः	युद्धवान्	युध्यमानः	युद्ध्वा	प्रयुध्य	
रक्ष् (रक्ष, १ प०, रक्षा०)	रक्षितः	रक्षितवान्	रक्षन्	रक्षित्वा	संरक्ष्य	
रुद् (रुदिर, २ प०, रोना)	रुदितः	रुदितवान्	रुदन्	रुदित्वा	प्ररुद्य	

तुमुन्	तव्यत्	तृच्	ल्युट्	कर्म०	णिच्	सन्
दोग्धुम्	दोग्धव्यम्	दोग्धा	दोहनम्	दुह्यते	दोहयति	दुधुक्षति
द्रष्टुम्	द्रष्टव्यम्	द्रष्टा	दर्शनम्	दृश्यते	दर्शयति	दिदृक्षते
धातुम्	धातव्यम्	धाता	धानम्	धीयते	धापयति	धित्सति
नन्तुम्	नन्तव्यम्	नन्ता	नमनम्	नम्यते	नमयति	निनंसति
नशितुम्	नशितव्यम्	नशिता	नशनम्	नश्यते	नाशयति	निनशिषति
नेतुम्	नेतव्यम्	नेता	नयनम्	नीयते	नाययति	निनीषति
नर्तितुम्	नर्तितव्यम्	नर्तिता	नर्तनम्	नृत्यते	नर्तयति	निनर्तिषति
पकुम्	पक्तव्यम्	पक्ता	पचनम्	पच्यते	पाचयति	पिपक्षति
पठितुम्	पठितव्यम्	पठिता	पठनम्	पठ्यते	पाठयति	पिपठिषति
पत्तुम्	पत्तव्यम्	पत्ता	पदनम्	पद्यते	पादयति	पित्सते
पातुम्	पातव्यम्	पाता	पानम्	पीयते	पाययति	पिपासति
पातुम्	पातव्यम्	पाता	पानम्	पायते	पालयति	पिपासति
प्रष्टुम्	प्रष्टव्यम्	प्रष्टा	प्रच्छनम्	पृच्छ्यते	प्रच्छयति	पिप्रच्छिषति
बन्धुम्	बन्धव्यम्	बन्धा	बन्धनम्	बध्यते	बन्धयति	बिभन्त्सति
वकुम्	वक्तव्यम्	वक्ता	वचनम्	उच्यते	वाचयति	विवक्षति
भक्षयितुम्	भक्षयितव्यम्	भक्षयिता	भक्षणम्	भक्ष्यते	भक्षयति	बिभक्षयिषति
भङ्कुम्	भङ्क्तव्यम्	भङ्क्ता	भञ्जनम्	भज्यते	भञ्जयति	बिभङ्क्षति
भेत्तुम्	भेत्तव्यम्	भेत्ता	भेदनम्	भिद्यते	भेदयति	बिभित्सति
भेतुम्	भेतव्यम्	भेता	भयनम्	भीयते	भाययति	बिभीषति
भोक्तुम्	भोक्तव्यम्	भोक्ता	भोजनम्	भुज्यते	भोजयति	बुभुक्षति-ते
भवितुम्	भवितव्यम्	भविता	भवनम्	भूयते	भावयति	बुभूषति
भर्तुम्	भर्तव्यम्	भर्ता	भरणम्	भ्रियते	भारयति	बुभूर्षति
भ्रमितुम्	भ्रमितव्यम्	भ्रमिता	भ्रमणम्	भ्रम्यते	भ्रमयति	बिभ्रमिषति
मन्थितुम्	मन्थितव्यम्	मन्थिता	मन्थनम्	मथ्यते	मन्थयति	मिमन्थिषति
मातुम्	मातव्यम्	माता	मानम्	मीयते	माययति	मित्सते
मोक्तुम्	मोक्तव्यम्	मोक्ता	मोचनम्	मुच्यते	मोचयति	मुमुक्षते
मोदितुम्	मोदितव्यम्	मोदिता	मोदनम्	मुद्यते	मोदयति	मुमुदिषते
मर्तुम्	मर्तव्यम्	मर्ता	मरणम्	म्रियते	मारयति	मुमूर्षति
यातुम्	यातव्यम्	याता	यानम्	यायते	यापयति	यियासति
याचितुम्	याचितव्यम्	याचिता	याचनम्	याच्यते	याचयति	यियाचिषति
योक्तुम्	योक्तव्यम्	योक्ता	योजनम्	युज्यते	योजयति	युयुक्षति-ते
योद्धुम्	योद्धव्यम्	योद्धा	योधनम्	युध्यते	योधयति	युयुत्सते
रक्षितुम्	रक्षितव्यम्	रक्षिता	रक्षणम्	रक्ष्यते	रक्षयति	रिरक्षिषति
रोदितुम्	रोदितव्यम्	रोदिता	रोदनम्	रुद्यते	रोदयति	रुरुदिषति

धातु	अर्थ	क्त	क्तवतु	शतृ। शानच्	क्त्वा	ल्यप्
रुध् (रुधिर, ७ उ०, रोकना)	रुद्धः	रुद्धवान्	रुन्धन्	रुद्ध्वा	विरुध्य	
लभ् (डुलभम्, १ आ०, पाना)	लब्धः	लब्धवान्	लभमानः	लब्ध्वा	उपलभ्य	
लिख् (लिख, ६ प०, लिखना)	लिखितः	लिखितवान्	लिखन्	लिखित्वा	आलिख्य	
लीह् (लिह, २ उ०, चाटना)	लीढः	लीढवान्	लिहन्	लीढ्वा	संलिह्य	
वद् (वद, १ प०, बोलना)	उदितः	उदितवान्	वदन्	उदित्वा	अनूद्य	
वस् (वस, १ प०, रहना)	उषितः	उषितवान्	वसन्	उषित्वा	प्रोष्य	
वह् (वह, १ उ०, ढोना)	ऊढः	ऊढवान्	वहन्	ऊढ्वा	प्रोह्य	
विद् (विद, २ प०, जानना)	विदितः	विदितवान्	विदन्	विदित्वा	संविद्य	
वृत् (वृत्त, १ आ०, होना)	वृत्तः	वृत्तवान्	वर्तमानः	वर्तित्वा	निवृत्य	
वृध् (वृधु, १ आ०, बढ़ना)	वृद्धः	वृद्धवान्	वर्धमानः	वर्धित्वा	संवृध्य	
शक् (शक्लु, ५ प०, सकना)	शक्तः	शक्तवान्	शक्नुवन्	शक्त्वा	संशक्य	
शास् (शासु, २ प०, शिक्षा०)	शिष्टः	शिष्टवान्	शासत्	शिष्ट्वा	अनुशिष्य	
शी (शीङ्, २ आ०, सोना)	शयितः	शयितवान्	शयानः	शयित्वा	संशय्य	
शो (शो, ४ प०, छीलना)	शातः	शातवान्	श्यन्	शात्वा	संशाय	
श्रम् (श्रमु, ४ प०, श्रम०)	श्रान्तः	श्रान्तवान्	श्राम्यन्	श्रमित्वा	परिश्रम्य	
श्रु (श्रु, १ प०, सुनना)	श्रुतः	श्रुतवान्	शृण्वन्	श्रुत्वा	संश्रुत्य	
सद् (षदल्, १ प०, बैठना)	सन्नः	सन्नवान्	सीदन्	सत्त्वा	निषद्य	
सह् (षह, १ आ०, सहना)	सोढः	सोढवान्	सहमानः	सोढ्वा	संसह्य	
सिक् (षिक्, ४ प०, सीना)	स्यूतः	स्यूतवान्	सीव्यन्	सेवित्वा	संसीव्य	
सु (षुज्, ५ उ०, निचोड़ना)	सुतः	सुतवान्	सुन्वन्	सुत्वा	प्रसुत्य	
सेक् (षेक्, १ आ०, सेवा०)	सेवितः	सेवितवान्	सेवमानः	सेवित्वा	संसेव्य	
सो (षो, ४ प०, नष्ट होना)	सितः	सितवान्	स्यन्	सित्वा	अवसाय	
स्तु (ष्टुज्, २ उ०, स्तुति०)	स्तुतः	स्तुतवान्	स्तुवन्	स्तुत्वा	प्रस्तुत्य	
स्था (ष्ठा, १ प०, रुकना)	स्थितः	स्थितवान्	तिष्ठन्	स्थित्वा	प्रस्थाय	
स्पृश् (स्पृश, ६ प०, छूना)	स्पृष्टः	स्पृष्टवान्	स्पृशन्	स्पृष्ट्वा	संस्पृश्य	
स्मृ (स्मृ, १ प०, स्मरण०)	स्मृतः	स्मृतवान्	स्मरन्	स्मृत्वा	विस्मृत्य	
स्वप् (जिष्वप्, २ प०, सोना)	सुप्तः	सुप्तवान्	स्वपन्	सुपृत्वा	संसुप्य	
हन् (हन, २ प०, मारना)	हतः	हतवान्	घ्नन्	हत्वा	निहत्य	
हस् (हसे, १ प०, हँसना)	हसितः	हसितवान्	हसन्	हसित्वा	विहस्य	
हा (ओहाक्, ३ प०, छोड़ना)	हीनः	हीनवान्	जहत्	हित्वा	विहाय	
हिंस् (हिसि, ७ प०, हिंसा०)	हिंसितः	हिंसितवान्	हिंसन्	हिंसित्वा	विहिंस्य	
हु (हु, ३ प०, हवन करना)	हुतः	हुतवान्	जुहवत्	हुत्वा	आहुत्य	
ह् (ह, १ उ०, हरण०)	हतः	हतवान्	हरन्	हत्वा	प्रहत्य	
ही (ही, ३ प०, लजाना)	हीणः	हीणवान्	जिहियत्	हीत्वा	संहीय	

तुमुन्	तव्यत्	तृच्	ल्युट्	कर्म०	णिच्	सन्
रोद्धुम्	रोद्धव्यम्	रोद्धा	रोधनम्	रुध्यते	रोधयति	रुरुत्सति
लब्धुम्	लब्धव्यम्	लब्धा	लभनम्	लभ्यते	लम्भयति	लिप्सते
लेखितुम्	लेखितव्यम्	लेखिता	लेखनम्	लिख्यते	लेखयति	लिलिखिषति
लेदुम्	लेदव्यम्	लेढा	लेहनम्	लिह्यते	लेहयति	लिलिक्षति-ते
वदितुम्	वदितव्यम्	वदिता	वदनम्	उद्यते	वादयति	विवदिषति
वस्तुम्	वस्तव्यम्	वस्ता	वसनम्	उष्यते	वासयति	विवत्सति
वोदुम्	वोदव्यम्	वोढा	वहनम्	उह्यते	वाहयति	विवक्षति-ते
वेदितुम्	वेदितव्यम्	वेदिता	वेदनम्	विद्यते	वेदयति	विविदिषति
वर्तितुम्	वर्तितव्यम्	वर्तिता	वर्तनम्	वृत्त्यते	वर्तयति	विवर्तिषते
वर्धितुम्	वर्धितव्यम्	वर्धिता	वर्धनम्	वृध्यते	वर्धयति	विवर्धिषते
शकुम्	शक्तव्यम्	शक्ता	शकनम्	शक्यते	शाकयति	शिक्षति
शासितुम्	शासितव्यम्	शासिता	शासनम्	शिष्यते	शासयति	शिशासिषति
शयितुम्	शयितव्यम्	शयिता	शयनम्	शय्यते	शाययति	शिशयिषते
शातुम्	शातव्यम्	शाता	शानम्	शायते	शाययति	शिशासति
श्रमितुम्	श्रमितव्यम्	श्रमिता	श्रमणम्	श्राम्यते	श्रमयति	शिश्रमिषति
श्रोतुम्	श्रोतव्यम्	श्रोता	श्रवणम्	श्रूयते	श्रावयति	शुश्रूषते
सत्तुम्	सत्तव्यम्	सत्ता	सदनम्	सद्यते	सादयति	सिसत्सति
सोदुम्	सोदव्यम्	सोढा	सहनम्	सह्यते	साहयति	सिसहिषते
सेवितुम्	सेवितव्यम्	सेविता	सेवनम्	सेव्यते	सेवयति	सिसेविषति
सोतुम्	सोतव्यम्	सोता	सवनम्	सूयते	सावयति	सुसूषति
सेवितुम्	सेवितव्यम्	सेविता	सेवनम्	सेव्यते	सेवयति	सिसेविषते
सातुम्	सातव्यम्	साता	सानम्	सीयते	साययति	सिषासति
स्तोतुम्	स्तोतव्यम्	स्तोता	स्तवनम्	स्तूयते	स्तावयति	तुष्टूषति
स्थातुम्	स्थातव्यम्	स्थाता	स्थानम्	स्थीयते	स्थापयति	तिष्ठासति
स्प्रष्टुम्	स्प्रष्टव्यम्	स्प्रष्टा	स्पर्शनम्	स्पृश्यते	स्पर्शयति	पिस्पृक्षति
स्मर्तुम्	स्मर्तव्यम्	स्मर्ता	स्मरणम्	स्मर्यते	स्मारयति	सुस्मर्षते
स्वप्तुम्	स्वप्तव्यम्	स्वप्ता	स्वपनम्	सुप्यते	स्वापयति	सुषुप्सति
हन्तुम्	हन्तव्यम्	हन्ता	हननम्	हन्यते	घातयति	जिघांसति
हसितुम्	हसितव्यम्	हसिता	हसनम्	हस्यते	हासयति	जिहसिषति
हातुम्	हातव्यम्	हाता	हानम्	हीयते	हापयति	जिहासति
हिसितुम्	हिसितव्यम्	हिसिता	हिसनम्	हिस्यते	हिसयति	जिहिसिषति
होतुम्	होतव्यम्	होता	हवनम्	हूयते	हावयति	जुहूषति
हर्तुम्	हर्तव्यम्	हर्ता	हरणम्	ह्रियते	हारयति	जिह्रीषति
हेतुम्	हेतव्यम्	हेता	हयणम्	हीयते	हेपयति	जिह्रीषति

(८) वाक्यार्थक-शब्द (वाक्यार्थ-बोधक शब्द)

सूचना—यहाँ पर उदाहरणार्थ कतिपय वाक्यार्थ-बोधक शब्दों का संग्रह किया गया है। निम्नलिखित पद्धति को अपनाकर सैकड़ों इस प्रकार के शब्द बनाए जा सकते हैं।

(१) समास

(क) अव्ययीभाव समास—अव्ययीभाव समास करने से बहुत से वाक्यार्थक शब्द बनते हैं। इसमें कुछ अव्यय हैं, उनसे वाक्यांश का बोध होता है। जैसे—कृष्ण के समीप—उपकृष्णम्, मद्र देश की समृद्धि—सुमद्रम्, यवनों का क्षय—दुर्यवनम्, मक्खियों का अभाव—निर्मक्षिकम्, इस समय सोना उचित नहीं है—अतिनिद्रम्, गंगा के किनारे-किनारे—अनुगङ्गम्, शक्ति का उल्लंघन न करके या शक्ति के अनुसार—यथाशक्ति, आँख के संमुख—प्रत्यक्षम्, आँख से ओझल—परोक्षम्, हर घर की ओर—प्रतिगृहम्, तिनके को भी न छोड़कर—सतृणम्।

(ख) तत्पुरुष समास—१. (मयूरव्यंसकादि) जैसे—जिसके पास कुछ नहीं है—अकिंचनः, जहाँ केवल खाने-पीने की ही बात चलती है—अशनीतपिबता, खाओ और मस्त रहो, जहाँ पर यही प्रसंग रहता है—खादतमोदता, जिसको कहीं से कोई डर नहीं है—अकुतोभयः। २. (पात्रेसमितादि) केवल खाने के साथी—पात्रेसमिताः, अपने घर कुत्ता भी शेर होता है—गेहेशूरः, गेहेनर्दी। ३. (प्रादिसमास) प्रकृष्ट आचार्य—प्राचार्यः, माला को अतिक्रमण करनेवाला—अतिमालः, पढ़ाई से तंग आया हुआ—पर्यध्ययनः, कौशम्बी से निकला हुआ—निष्कौशाम्बिः। दो अंगुल नाप की—द्व्यङ्गुलं दारु (लकड़ी)।

(ग) बहुव्रीहि—जिसको जल मिल गया है—प्राप्तोदकः, जिसने रथ ढोया है, ऐसा बैल—ऊढरथः अनड्वान्, जिसके वस्त्र पीले हैं, ऐसे विष्णु—पीताम्बरः हरिः, जिसमें वीर पुरुष रहते हैं, ऐसा गाँव—वीरपुरुषकः ग्रामः, जिसके पत्ते गिर गए हैं, ऐसा वृक्ष—प्रपर्णः वृक्षः, जिसके कोई पुत्र नहीं है—अपुत्रः, जिसके पास चितकबरी गाएँ हैं—चित्रगुः, जो स्त्री के वचन को ही प्रमाण मानता है—स्त्रीप्रमाणः, जिसने सोने की अँगूठी पहनी हुई है—हैममुद्रिकः, बीस के करीब—आसन्नविंशाः, दो या तीन—द्वित्राः, पाँच या छः—पञ्चषाः, बाल खींचकर झगड़ा हुआ—केशाकेशि, हाथापाई करके झगड़ा हुआ—मुष्टीमुष्टि, जिसकी पत्नी जवान है—युवजानिः, दो पैरोंवाला—द्विपात्, चार पैरोंवाला—चतुष्पात्, पुष्ट छातीवाला—व्यूढोरस्कः।

(घ) एकशेष—माता और पिता—पितरौ, भाई और बहन—भ्रातरौ, हंस और हंसी—हंसौ, पुत्र और पुत्री—पुत्रौ, सास और ससुर—श्वशुरौ।

(२) तद्धित प्रत्यय

(क) अपत्यार्थक — (पुत्र या पुत्री अर्थ में अण्, इञ् आदि प्रत्यय) वसुदेव का पुत्र—वासुदेवः, शिव का पुत्र—शैवः। इसी प्रकार विश्वामित्र > वैश्वामित्रः, दशरथ > दाशरथिः, (राम), सुमित्रा > सौमित्रिः (लक्ष्मण), द्रोण > द्रौणिः (अश्वत्थामा), विनता > वैनतेयः (गरुड़), बहन का पुत्र—भागिनेयः (भानजा), कुन्ती > कौन्तेयः, माद्री > माद्रेयः, पृथा > पार्थः पाण्डु के पुत्र—पाण्डवाः, कुरु के पुत्र या वंशज > कौरवाः, राधा का पुत्र—राधेयः (कर्ण), दिति के पुत्र—दैत्याः, दनु के पुत्र—दानवाः, अदिति के पुत्र—आदित्याः। (राजा अर्थ में अण् आदि प्रत्यय) पञ्चाल देश का राजा—पाञ्चालः, पुरु जनपद का राजा—पौरवः, अंग देश का राजा—आङ्गः, बंग का राजा—बाङ्गः, मगध का राजा—मागधः, कम्बोज का राजा—काम्बोजः।

(ख) चातुरार्थिक — १. (रक्तार्थक या रंग से रँगने अर्थ में अण् आदि प्रत्यय) गेरु से रँगा हुआ वस्त्र—काषायम्, मँजीठ से रँगा हुआ—माञ्जिष्ठम्, नील से रँगा हुआ—नीलम्, पीले रंग से रँगा हुआ—पीतकम्, हल्दी से रँगा हुआ—हारिद्रम्। २. (देवतार्थक अण् आदि) इन्द्र जिसका देवता है—ऐन्द्रं हविः। इसी प्रकार पशुपति > पाशुपतम्, सोम > सौम्यम्, वायु > वायव्यम्, अग्नि > आग्नेयम्, ३. (समूह अर्थ में अण् आदि) कौओं का समूह—काकम्, बकों का समूह > बाकम्। इसी प्रकार भिक्षा > भैक्षम्, युवति > यौवनम्, जन > जनता, ग्राम > ग्रामता, बन्धु > बन्धुता। ४. (पढ़ने या जाननेवाला अर्थ में अण् आदि प्रत्यय) व्याकरण पढ़ने या जाननेवाला—वैयाकरणः। इसी प्रकार न्याय > नैयायिकः, मीमांसा > मीमांसकः, पुराण > पौराणिकः, इतिहास > ऐतिहासिकः।

(ग) शैषिक — १. (होना आदि अर्थों में अण् आदि प्रत्यय) आँख से देखने योग्य—चाक्षुषं रूपम्, कान से सुनने योग्य—श्रावणः शब्दः। राष्ट्र में होनेवाला > राष्ट्रियः, गाँव में रहनेवाला > ग्राम्यः, ग्रामीणः, दक्षिण में रहनेवाला > दाक्षिणात्यः, पश्चिम में रहनेवाला—पाश्चात्यः पूर्व में रहनेवाला—पौरस्त्यः, समीप रहनेवाला—अमात्यः। मास में होनेवाला—मासिकम्, वर्ष > वार्षिकम्, दिन > दैनिकम्। शाम को होनेवाला—सायन्तनम्, पहले होनेवाला—पुरातनम्। २. (उत्पन्न होना अर्थ में अण् आदि) हिमालय से उत्पन्न होनेवाली—हैमवती गङ्गा। ३. (ग्रन्थ-निर्माण अर्थ में अण् आदि) शकुन्तला-विषयक ग्रन्थ—शाकुन्तलम्। वासवदत्ता > वासवदत्ता। ४. (कृति अर्थ में अण् आदि) पाणिनि की कृति—पाणिनीयम्। वररुचि > वाररुचम्। ५. (मार्ग, निवास, इसका यह, आदि अर्थों में अण् आदि) सुघ्न का निवासी—स्रौघः, शरद्-सम्बन्धी—शारदम्।

(घ) मत्वर्थक—(वाला या मुतुप् के अर्थ में मत्, इन् आदि प्रत्यय) गुणों से युक्त—गुणवान्। इसी प्रकार धन > धनवान्, विद्या > विद्यावान्, धी > धीमान्, श्री > श्रीमान्, बुद्धि > बुद्धिमान्, रूप > रूपवती स्त्री। गुणों से युक्त—गुणिन्, धन से युक्त > धनिन्। दण्ड > दण्डिन्, कर > करिन्। धनवाला—धनिकः। माया > मायिकः। लोमवाला—लोमशः, सुन्दर अङ्गोंवाली—अङ्गना। तारों से युक्त—तारकितं नभः। इसी प्रकार पुष्प > पुष्पितः, कुसुम > कुसुमितः, दुःख > दुःखितः, क्षुधा > क्षुधितः, अडकुर > अडकुरितः। (युक्त अर्थ में विन् प्रत्यय) यशवाला—यशस्वी। इसी प्रकार तेजस् > तेजस्वी, माया > मायावी, मेधा > मेधावी, ओजस् > ओजस्वी। अत्युत्तम वाणी (बोलने) वाला—वाग्मी, बकवाद करनेवाला—वाचालः, वाचाटः। बड़े दाँतवाला—दन्तुरः, बड़ी तोंदवाला—तुन्दिलः।

(ङ) (प्रमाण या नाप-तोल अर्थ में द्वयस, दघ्न, मात्र प्रत्यय) कमर तक—कटिमात्रम्। घुटने तक—जानुदघ्नम्। जाँघ तक—ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्।

(च) (विकार अर्थ में अण् आदि) मिट्टी का बना हुआ—मार्तिकम्। पत्थर का बना हुआ—आश्मः, राँगा का बना हुआ—जातुषम्। इसी प्रकार गो > गव्यम्, पयस् > पयस्यम्।

(छ) (विविध अर्थों में तद्धित प्रत्यय) पाशों से खेलनेवाला—आक्षिकः। दही से बना हुआ—दाधिकम्। नाव से पार करनेवाला—नाविकः। उडुप > औडुपिकः। हाथी की सवारी करनेवाला—हास्तिकः। समाज की रक्षा करनेवाला—सामाजिकः। रथ को ढोनेवाला—रथ्यः। धुरा को ढोनेवाला—धुर्यः, धौर्यः। सभा में शिष्टता से रहनेवाला—सभ्यः। शरणागतों पर सज्जन—शरण्यः, अतिथियों पर सज्जन—आतिथ्येयः। दाँतों के लिए हितकर—दन्त्यम्, गले के लिए हितकर—कण्ठ्यम्। अपने लिए हितकर—आत्मनीनम्। ७० रु० में खरीदा—साम्तिकम्। खान में काम करनेवाला—आहारिकः। एक गुरु से पढ़नेवाले—सतीर्थ्याः। एक माता से उत्पन्न—सोदर्यः, समानोदर्यः।

(ज) (तस्येदम्, इसका यह अर्थ में अण् आदि) देवों का—दैविकम्, भूतों का—भौतिकम्, आत्मा-सम्बन्धी—आध्यात्मिकम्। देवता और असुरों का—दैवासुरम्। उपगु का > औपगवम्।

(झ) (जैसा न हो, वैसा होना या वैसा करना अर्थ में च्वि प्रत्यय) काले को सफेद करता है—शुक्लीकरोति। काला करता है—कृष्णीकरोति। इसी प्रकार ग्राम > ग्रामीकरोति, भस्मन् > भस्मीकरोति, भस्मीभवति।

(३) तिङ् प्रत्यय

(क) (उपसर्ग+धातु) धातुओं से पहले उपसर्ग आदि लगाने से पूरे वाक्य का अर्थ निकलता है। जैसे—उपकार करता है—उपकरोति, उपकार किया—उपाकरोत्, उपकृतम्। इसी प्रकार प्रहार करता है—प्रहरति, विहार करता है—विहरति, संहार करता है—संहरति, अनुकरण करता है—अनुकरोति, प्रणाम करता है—प्रणामति, संस्कार करता है—संस्करोति, अनुभव करता है—अनुभवति, तिरस्कार करता है—तिरस्करोति, उत्पन्न करता है—उत्पादयति, संवाद करता है—संवदति, अनुग्रह करता है—अनुगृह्णाति।

(ख) (करवाना अर्थ में णिच् प्रत्यय) पढ़ाता या पढ़वाता है—पाठयति, करवाता है—कारयति, भेजता है—गमयति, डरता है—भाययति, खरीदवाता है—क्रापयति, समझाता है—अधिगमयति, विश्वास दिलाता है—प्रत्याययति, साफ करता है—मार्जयति।

(ग) (इच्छा करना या चाहना अर्थ में सन् प्रत्यय) पढ़ना चाहता है—पिपठिषति। सन्-प्रत्ययान्त से उ लगाकर संज्ञा-शब्द भी बनते हैं। जैसे—पढ़ने का इच्छुक—पिपठिषुः। करना चाहता है, करने का इच्छुक—चिकीर्षति, चिकीर्षुः। जाना चाहता है, जाने का इच्छुक—जिगमिषति, जिगमिषुः। इसी प्रकार युध् > युयुत्सते, युयुत्सुः, हन् > जिघांसति, जिघांसुः। प्रच्छ् > पिप्रच्छिषति, पिप्रच्छिषुः, मृ > मुमूर्षति, मुमूर्षुः, आप् > ईप्सति, ईप्सुः, दृश् > दिदृक्षते, दिदृक्षुः। देना चाहता है, देने का इच्छुक—दित्सति, दित्सुः, प्राप्त करना चाहता है, प्राप्त करने का इच्छुक—लिप्सते, लिप्सुः। काम करना चाहता है, करने का इच्छुक—विधित्सति, विधित्सुः।

(घ) (बार-बार करना अर्थ में यङ् प्रत्यय) बार-बार नाचता है—नरीनृत्यते। बार-बार जीतता है—जेगीयते, बार-बार पढ़ता है—पापठ्यते, बार-बार घूमता है—बंभ्रम्यते, बार-बार करता है—चेक्रीयते।

(ङ) (नामधातु प्रत्यय) अपने लिए पुत्र चाहता है—पुत्रीयति, पुत्र-काम्यति। शिष्य को पुत्रवत् मानता है—पुत्रीयति छात्रम्। कृष्णवत् आचरण करता है—कृष्णायते। अप्सरा के तुल्य आचरण करती है—अप्सरायते। सूत्र बनाता है—सूत्रयति। पटपट शब्द करता है—पटपटायते। खटखट करता है—खटखटाकरोति।

(४) कृत्-प्रत्यय

(क) (चाहिए या योग्य अर्थ में तव्य और अनीय प्रत्यय) करना चाहिए—कर्तव्यम्, करणीयम्। देना चाहिए—दातव्यम्, दानीयम्। लिखना चाहिए—लेखितव्यम्, लेखनीयम्। हँसना चाहिए—हसितव्यम्, हसनीयम्। गाना चाहिए—गातव्यम्, गानीयम्। पीना चाहिए—पातव्यम्, पानीयम्। स्मरण करना चाहिए—स्मर्तव्यम्, स्मरणीयम्। जाना चाहिए—गन्तव्यम्, गमनीयम्। बुलाना चाहिए—आह्वातव्यम्, आह्वानीयम्। खरीदना चाहिए—क्रेतव्यम्, क्रयणीयम्। बेचना चाहिए—विक्रेतव्यम्, विक्रयणीयम्। उठना चाहिए—उत्थातव्यम्, उत्थानीयम्।

(ख) (चाहिए या योग्य अर्थ में यत् और ण्यत् प्रत्यय) देने योग्य—देयम्। गाने योग्य—गेयम्। पीने योग्य—पेयम्। रुकना चाहिए—स्थेयम्। छोड़ना चाहिए—हेयम्। जीतना चाहिए—जेयम्। इकट्ठा करना चाहिए—चेयम्। सुनना चाहिए—श्रव्यम्। करने योग्य—कार्यम्। हरने योग्य—हार्यम्। रखने योग्य—धार्यम्। छोड़ने योग्य—त्याज्यम्। खाने योग्य—भोज्यम्। उपभोग के योग्य—भोग्यम्।

(ग) (करनेवाला अर्थ में अण्, क, ट आदि प्रत्यय) घड़ा बनानेवाला—कुम्भकारः। माला बनानेवाला—मालाकारः। जल लानेवाला—कहारः। धन देनेवाला—धनदः। जल देनेवाला—जलदः। सुख देनेवाला—सुखदः। दुःख देनेवाला—दुःखदः। धूप से बचानेवाला—आतपत्रम्। यश को करनेवाली—यशस्करी विद्या। आज्ञा-पालन करनेवाला—वचनकरः। काम करनेवाला नौकर—कर्मकरः। चित्र बनानेवाला—चित्रकरः। सेना में घूमनेवाला—सेनाचरः।

(घ) (करनेवाला अर्थ में इष्णु और क्रिप्) सजकर रहनेवाला—अलंकरिष्णुः। सहन करनेवाला—सहिष्णुः। प्रभुत्व करनेवाला—प्रभविष्णुः। मंत्र बनानेवाला—मन्त्रकृत्। सोम तैयार करनेवाला—सोमकृत्। पृथ्वी का पालन करनेवाला—भूभृत्।

(ङ) (स्वभाव अर्थ में णिनि) शाकाहार करनेवाला—शाकाहारी, निरामिषभोजी। मांसाहार स्वभाववाला—मांसाहारी, आमिषभोजी। झूठ बोलने वाला—मिथ्यावादी। गर्म खाने वाला—उष्णभोजी। शराब पीनेवाला—सुरापायी, मद्यपः। अपने-आपको पंडित माननेवाला—पण्डितमानी, पण्डितमन्यः।

(१) पत्रादि-लेखन-प्रकारः

आवश्यक निर्देश

पत्रों के लेखन में निम्नलिखित बातों का अवश्य ध्यान रखें:—

(१) पत्र-लेखन बहुत सरल और स्पष्ट भाषा में होना चाहिए। इसमें प्रायः वार्तालाप में व्यवहृत भाषा का ही रूप अपनाया जाता है, जिससे पत्र का भाव सरलता से हृदयंगम हो सके।

(२) पत्रों में अनावश्यक विशेषणों का परित्याग करना चाहिए। पाण्डित्य-प्रदर्शन का प्रयत्न पत्र में अनुचित है, यह निबन्ध आदि में कुछ अंश तक शिष्टसम्मत है।

(३) जिस उद्देश्य से पत्र लिखा गया है, उसका स्पष्ट उल्लेख करना चाहिये।

(४) पत्र यथासम्भव संक्षिप्त होना चाहिए। उसमें आवश्यक बातों का ही उल्लेख करना चाहिए। अनावश्यक बातों का उल्लेख और विस्तार उचित नहीं है।

(५) साधारणतया पत्रों को ४ श्रेणी में बाँट सकते हैं। तदनुसार ही उनका लेखन होता है।

(क) अतिपरिचित व्यक्तियों को। (ख) सामान्य परिचित व्यक्तियों को। (ग) अपरिचित व्यक्तियों को। (घ) केवल व्यावहारिक पत्र।

(क) (१) पिता, पुत्र, माता, मित्र, पत्नी, पति आदि के लिए ऐसे पत्र होते हैं। इनमें प्रारम्भ में ऊपर दाहिनी ओर स्व-स्थान-नाम तथा तिथि या दिनांक देना चाहिए। (२) उसके नीचे सम्बोधनपूर्वक अपने से बड़ों को प्रणामः, नमस्कारः, नमस्ते आदि लिखें। समान आयुवालों को नमस्ते, छोटों को स्वस्ति, आशीर्वादः आदि। (३) पत्र के अन्त में बड़ों के लिए 'भवदाज्ञाकारी', 'भवत्कृपाकांक्षी' आदि, समान आयुवालों को 'भवदीयः', 'भावत्कः' आदि, छोटों को 'शुभाकांक्षी', 'शुभचिन्तकः' आदि लिखना चाहिये। (४) पत्र का पता लिखने में पहली पंक्ति में व्यक्ति का नाम लिखना चाहिए। उसके नीचे उपाधि आदि। दूसरी पंक्ति में ग्राम-नाम, मुहल्ला या सड़क आदि का नाम। तीसरी पंक्ति में पोस्ट ऑफिस (डाकखाना) का नाम। चौथी पंक्ति में जिले का नाम। यदि दूसरे प्रान्त या देश के लिए हो तो अन्त में प्रान्त या देश का नाम लिखें।

(ख) सामान्य परिचित में सम्बोधन में व्यक्ति का नाम निर्देश करें। शेष पूर्ववत्।

(ग) अपरिचितों को सम्बोधन में 'श्रीमन्', 'महोदय' आदि लिखें। अन्त में 'भवदीयः' या 'भावत्कः'। शेष पूर्ववत्। इसमें काम की बात ही मुख्यरूप से लिखें।

(घ) केवल व्यावहारिक पत्रों में—(१) प्रारम्भ में अधिकारी, व्यक्ति या कम्पनी आदि का नाम एवं कार्यालय-सम्बन्धी पता लिखें। (२) तदनन्तर सम्बोधन में 'श्रीमन्' या 'महोदय'। (३) प्रणामः, नमस्ते आदि न लिखें। (४) अन्त में 'भवदीयः' (५) केवल कार्य-सम्बन्धी बात लिखें। पारिवारिक या वैयक्तिक नहीं।

(१) पित्रे पत्रम्

प्रयाग-विश्वविद्यालयः

तिथिः — श्रावण-शुक्ला १०, २०२१ वि०

श्रीमतो माननीयस्य पितृवर्यस्य चरणारविन्दयोः ! सादरं प्रणतिततिः ।

अत्र शं तत्रास्तु । समधिगतं मया भावत्वं कृपापत्रम् । अवगतं च निखिलं वृत्तम् । अद्यत्वेऽध्ययनकर्मण्येव नितरां व्यापृतोऽस्मि । एम०ए० संस्कृतविषये प्रवेशमवाप्यातितरां मुदमावहे । वेदानां गुणगरिमा, उपनिषदां हृदयावर्जकत्वम्, कालिदासादि-महाकवीनां कलाकौशलम्, भारतीयसंस्कृतेः साधिष्ठता, भाषाविज्ञानस्य वैज्ञानिकी सरणिर्मनोज्ञता च स्वान्तं मे प्रतिपलं प्रसादयति । आशासे कृतभूरिपरिश्रमः सद्य एव समेष्वपि विषयेषु दाक्षिण्यमासादयितास्मि । मान्याया मातृश्ररणयोः प्रणतिर्वाच्या ।

भवदाज्ञाकारी सूनुः — भारतेन्दुः

(२) सुहृदे पत्रम्

नैनीतालतः

दिनाङ्कः २१-४-१९६५ ईसवीयः

प्रियमित्र श्यामलाल यादव ! सप्रणयं नमस्ते ।

अत्र कुशलं तत्रास्तु । भवत्प्रेमपत्रं प्राप्य मानसं मेऽतीव मोदमावहति । परिवारे सर्वेषामपि कुशलतामवगत्य हृष्टोऽस्मि । ऐषमस्तने संवत्सरे ग्रीष्मर्तौ सपरिवारं नैनीतालागमनाय मतिर्विधेया । नगरमेतत् प्राकृतिकसुषमायाः सर्वस्वम्, पर्वतमालापरिवृतम्, शीतलाच्छोदसंभृतसरसा सनाथम्, वन्यवृक्षवीरुद्विराजितम्, कृत्रिमाकृत्रिमोभयोपकरणसंकुलम्, सततशीतलसदागतिमनोहरं रमणीयं च । आशासेऽत्रागमनेनानुग्रहीष्यन्ति माम् । कुशलमन्यत् । ज्येष्ठेभ्यो नमः, कनिष्ठेभ्यश्च स्वस्ति । पत्रोत्तरप्रदानेनानुग्राह्योऽहम् ।

भवद्बन्धुः — सुरेन्द्रनाथो दीक्षितः

(३) भ्रात्रे पत्रम्

गुरुकुल-महाविद्यालय-ज्वालापुरतः

दिनाङ्कः २०-६-१९६५ ई०

प्रिय बन्धुर विजयकुमार ! सस्नेहं नमस्ते ।

अत्र कुशलं तत्रास्तु । एतदवगत्य भवान्नूनं हर्षमनुभविष्यति यदहं संवत्सरेऽस्मिन् शास्त्रिपरीक्षामुत्तीर्णः । तत्र च प्रथमा श्रेणिः संप्राप्ता । साम्प्रतमहं संस्कृतविषये एम०ए० परीक्षां दितास्मि । आशासे परेशप्रसादात् तत्रापि साफल्यमाप्स्यामि । सर्वेऽपि गुरवो मयि कृपापराः । शिष्टं विशिष्टं स्वः । परिचितेभ्यो नमः ।

भवद्बन्धुः — रामचन्द्रः शर्मा

(४) अवकाशार्थं प्रार्थनापत्रम्

श्रीमन्तः प्रधानाचार्यमहोदयाः,

राजकीय-महाविद्यालयः, नैनीतालः ।

मान्यवर !

अहमद्य दिनद्वयाद् शीतज्वरेण पीडितोऽस्मि । ज्वरकृततापेन भृशं कार्यमुपगतोऽस्मि । अतो विद्यालयमागन्तुं न प्रभवामि । कृपया दिवसद्वयस्यावकाशं स्वीकृत्य मामनुग्रहीष्यन्ति श्रीमन्तः ।

भवतामाज्ञानकारी शिष्यः

हरगोविन्दो जोशी

(५) पुस्तकप्रेषणार्थं प्रकाशकाय आदेशः

श्री प्रबन्धकमहोदयाः,

विश्वविद्यालय-प्रकाशनम्, भैरवनाथः, वाराणसी ।

श्रीमन्तः,

दृष्टिपथमुपागतं मे भवत्प्रकाशितं "प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी" नामकं पुस्तकम् । ग्रन्थस्यास्योपयोगितां समीक्ष्य नितरां हतहृदयोऽस्मि । कृपया पुस्तकपञ्चकम् अधोनिर्दिष्टस्थाने वी०पी०पी० द्वारा शीघ्रं संप्रेष्यानुग्रहीतव्यम् ।

दिनाङ्कः—३०-६-१९६५ ई०

भवदीयः—डॉ० सुरेन्द्रनाथ-दीक्षितो व्याकरणाचार्यः, एम०ए०, पी-एच०डी०,

हिन्दी-प्राध्यापकः, एल० एस० कॉलेजः मुजफ्फरपुरम् ।

(६) निमन्त्रणपत्रम्

श्रीमन्महोदय !

एतद् विज्ञाय नूनं भवन्तो हर्षमनुभविष्यन्ति यत् पेशस्य महत्याऽनुकम्पया मम ज्येष्ठया दुहितुर्विमलादेव्याः शुभपाणिग्रहणसंस्कारो वाराणसी-वास्तव्यस्य श्रीमतो रामचन्द्रप्रसादगुप्तस्य ज्येष्ठपुत्रेण एम०ए० इत्युपाधिविभूषितेन श्रीसुरेन्द्रप्रसादगुप्तेन सह दिनाङ्के २-७-१९६५ ईसवीये रात्रौ दशवादने सम्पत्स्यते । सर्वेऽपि भवन्तः सादरं सविनयं च प्रार्थ्यन्ते यत् सपरिवारं निर्दिष्टसमये समागत्य वरवधूयुगलं स्वाशीर्वादप्रदानेनानुग्रहीष्यन्त्यस्मान् ।

१०११, मुट्ठीगंजः,

प्रयागः

दिनाङ्कः—२६-६-१९६५ ई०

भवद्दर्शनाभिलाषी

बैजनाथप्रसादगुप्तः

(स्वीकृति-सूचनयाऽनुग्राह्यः)

(७) परिषदः सूचना

श्रीमन्तो मान्याः,

सविनयमेतद् निवेद्यते यद् आस्माकीनाया महाविद्यालयीयसंस्कृतपरिषदः साप्ताहिक-मधिवेशनम् आगामिनि शुक्रवासरे (दिनाङ्कः-२६-२-१९६५ ई०) सायंकाले चतुर्वादने महाविद्यालयस्य महाकक्षे भविष्यति। सर्वेषामपि विद्यार्थिनामुपाध्यायानां चोपस्थितिः सादरं सविनयं प्रार्थ्यते।

दिनाङ्कः-२३-२-१९६५ ई०

निवेदिका-

(कु०) माया त्रिपाठी (मन्त्रिणी)

(८) प्रस्तावः, अनुमोदनम्, समर्थनं च

(१) (क) आदरणीयाः सभासदः, प्रिया विद्यार्थिबान्धवाश्च !

सौभाग्यमेतदस्माकं यदद्य (कर्णपुरस्थ-डी० ए० वी० कॉलेज-संस्थायाः संस्कृतविभागस्याध्यक्षवर्याः श्रीमन्तो डॉ० हरिदत्तशास्त्रिणः, नवतीर्थाः, व्याकरणवेदान्ताचार्याः, एम०ए०, पी-एच०डी० आदि-विविधोपाधिभूषिताः) अत्र समयाताः सन्ति। अतः प्रस्तौमि यत् श्रीमन्तो मान्या विद्वद्ग्रेण्या आचार्यवर्या अद्यतन्याः सभाया अस्याः सभापतित्वं स्वीकृत्यास्मान् अनुग्रहीष्यन्तीति। आशासे एतेषां सभापतित्वे सदसोऽस्य सर्वमपि कार्यकलापं सुचारुतया सम्पत्स्यते इति। आशासे अन्येऽपि सभासदः प्रस्तावस्यास्यानुमोदनं समर्थनं च करिष्यन्ति।

(२) (क) मान्या सभासदः !

अहमेतस्याः सभाया मन्त्रिपदार्थं (सभापतिपदार्थम्, उपसभापतिपदार्थम्, कोषाध्यक्षपदार्थम्) श्रीमतः नाम प्रस्तवीमि।

(ख) अहं प्रस्तावस्यास्य हृदयेनानुमोदनं करोमि।

(ग) अहं प्रस्तावस्यास्य हार्दिकं समर्थनं करोमि।

(९) पुरस्कार-वितरणम्

श्रीयुताय (रामचन्द्रशर्मणे), (एम०ए०) कक्षायाः (द्वितीय) वर्षस्थाय (व्याख्यान-प्रतियोगितायां सर्वप्रथमस्थानप्राप्त्यर्थं) निमित्तं (प्रथमं) पारितोषिकमिदं सहर्षं प्रदीयते।

मन्त्री

दिनाङ्कः

सभासंचालकः (सभाध्यक्षः, प्रधानः)

(१०) जयन्ती-समारोहः

एतत् संसूचयन्त्या मया भूयान् प्रहर्षोऽनुभूयते यदागामिनि शुक्रवासरे गुरुपूर्णिमादिवसे (आषाढ-पूर्णिमा वि० २०१७) दिनाङ्के ८-७-१९६० ईसवीये महाविद्यालयस्य महाकाक्षे सायंकाले चतुर्वादने व्यास-जयन्ती समारोहः संयोजयिष्यते। समेषामपि संस्कृतज्ञानां संस्कृतप्रेमिणां च समुपस्थितिः प्रार्थ्यते। आशासे यत् सर्वैरपि यथासमयं समागत्य महाकवये श्रीमते व्यासाय श्रद्धाञ्जलिं समर्प्य, तद्गुणग्रामं समाकर्ण्य, तद्विरचितानि हृद्यानि पद्यानि निशम्य, गूढभावावलिविभूषितां तदीयामाध्यात्मिकविद्यां च श्रावं श्रावं स्वान्तःसुखमनुभविष्यते इति।

दिनाङ्कः ६-७-१९६० ई०

कु० रश्मि-कोचरः

सभा-संयोजिका

(११) दर्शनार्थं समय-याचना

श्रीमन्तो मुख्यमन्त्रिमहोदयाः डॉ० सम्पूर्णानन्दमहाभागाः.

उत्तर प्रदेशः, लक्ष्मणपुरम् (लखनऊ)

श्रीमन्तः परमसंमाननीयाः,

अहं कालिदास-जयन्ती-समारोहविषयमाश्रित्यात्रभवद्भिः सह किञ्चिदालपितुकामोऽस्मि। आशासे भवन्तो दशकलामात्रसमयप्रदानेन मामनुग्रहीष्यन्ति। भवन्निर्दिष्टसमये भवतां सविधे समागत्य भवद्दर्शनेन भवत्परामर्शेन चात्मानं कृतकृत्यं मन्ये।

दिनाङ्कः ६-७-१९६० ई०

भवद्दर्शनाभिलाषी

प्रेमनाथः

(१२) व्याख्यानम्

श्रीमन्तः परमसंमाननीयाः परिषत्पतयः ! आदरणीयाः सभासदश्च !

अद्याहं भवतां समक्षे..... (विद्या, अहिंसा, देश-सेवा, समाज-सुधार-) विषयमङ्गीकृत्य किञ्चिद् वक्तुकामोऽस्मि। संस्कृतभाषाभाषणस्यानभ्यासवशाद् न संभाव्यते साधीयस्या भावाभिव्यक्त्या भाषितुम्। पदे पदे स्खलनमपि च संभाव्यते। 'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः। हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः।' अतः प्रमादप्रभूतास्तुटयो मे भवद्भिः क्षन्तव्याः परिमार्जनीयाश्च।..... (तदनन्तरं व्याख्यानस्य प्रारम्भः)।

(१०) निबन्ध-माला

आवश्यक निर्देश

(१) किसी विषय पर अपने विचारों और भावों को सुन्दर, सुगठित, सुबोध एवं क्रमबद्ध भाषा में लिखने को निबन्ध कहते हैं। निबन्ध के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है :—

१. निबन्ध की सामग्री। २. निबन्ध की शैली।

निबन्ध की सामग्री एकत्र करने के ३ साधन हैं—१. निरीक्षण अर्थात् प्रकृति को स्वयं देखना और ज्ञान एकत्र करना। २. अध्ययन अर्थात् पुस्तकों आदि से उस विषय का ज्ञान प्राप्त करना। ३. मनन अर्थात् स्वयं उस विषय पर विचार या चिन्तन करना।

(२) निबन्ध-लेखन में इन बातों का सदा ध्यान रखें—(क) प्रस्तावना या आरम्भ—प्रारम्भ में विषय का निर्देश, उसका लक्षण आदि रखें। (ख) विवेचन—बीच में विषय का विस्तृत विवेचन करें। उस वस्तु के लाभ, हानि, गुण, अवगुण, उपयोगिता, अनुपयोगिता आदि का विस्तृत विचार करें। अपने कथन की पुष्टि में सूक्ति, पद्य या श्लोक उद्धरणरूप में दे सकते हैं। (ग) उपसंहार—अन्त में अपने कथन का सारांश संक्षेप में। प्रस्तावना और उपसंहार एक या दो सन्दर्भ (पैराग्राफ) में ही हों। अधिक स्थान विवेचन में दें।

(३) निबन्ध की शैली के विषय में इन बातों का ध्यान रखें :—१. भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हो। २. भाषा प्रारम्भ से अन्त तक एक-सी हो। ३. भाषा में प्रवाह हो। स्वाभाविकता हो। ४. उपयुक्त और असंदिग्ध शब्दों का प्रयोग करें। ५. भाषा सरल, सुबोध और आकर्षक हो। ६. लोकोक्ति और अलंकारों को भी स्थान दें। ७. अनावश्यक विस्तार, पुनरुक्ति, अधिक पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा क्लिष्टता का त्याग करें।

(४) निबन्ध के मुख्यतया तीन भेद हैं :—

(क) वर्णनात्मक निबन्ध—इसमें पशु, पक्षी, नदी, ग्राम, नगर, पर्वत, समुद्र, ऋतु-वर्णन, यात्रा, पर्व, रेल, तार, विमान आदि का स्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन होता है।

(ख) विवरणात्मक निबन्ध—इनमें घटित घटनाओं, युद्धों, प्राचीन कथाओं, ऐतिहासिक वर्णनों, जीवन-चरितों आदि का संग्रह होता है।

(ग) विचारात्मक निबन्ध—इनमें आध्यात्मिक, मनोविज्ञान-सम्बन्धी, सामाजिक, राजनीतिक तथा अमूर्त विषयों चिन्ता, क्रोध, अहिंसा, सत्य, परोपकार आदि का संग्रह होता है। इन निबन्धों में इन विषयों के गुण, दोष, लाभ, हानि आदि का विचार होता है।

उदाहरण के लिए २० निबन्ध अतिप्रसिद्ध विषयों पर प्रौढ संस्कृत में दिए गए हैं।

१. वेदानां महत्त्वम्

वेदशब्दार्थः—‘विद ज्ञाने’ इति ज्ञानार्थकाद् विद्धातोर्घञि प्रत्यये कृते वेद इति रूपं निष्पद्यते। एवं वेदशब्दो ज्ञानार्थकः। ज्ञानराशिर्वेद इति वक्तुं शक्यते। विद सत्तायाम्, विद विचारणे, विदल् लाभे, विद चेतनाख्याननिवासेषु इति धातुभ्योऽपि घञि वेदरूपं निष्पद्यते। वेदा ज्ञानराशित्वात् शाश्वतस्थायिनः, ज्ञाननिधयः, मानवहितप्रापकाः, मनुज-कर्तव्य-बोधका इति विविधधात्वर्थग्रहणाद् ज्ञायते।

वेदानां वैशिष्ट्यम्—वेदार्थानुशीलनाद् ज्ञायते यद् वेदा हि विविधज्ञानविज्ञान-राशयः, संस्कृतेराधाररूपाः, कर्तव्याकर्तव्यावबोधकाः, शुभाशुभनिदर्शकाः, जीवनस्योन्नायकाः, विश्वहितसंपादकाः, आचार-संचारकाः, सुखशान्तिसाधकाः, ज्ञानालोकप्रसारकाः, सत्यतायाः सरणयः, कलाकलापरेकाः, आशया आश्रयाः, नैराश्य-विनाशकाः, चतुर्वर्गावासिसोपान-स्वरूपाश्च सन्ति।

वेदानां महत्त्वविचारचिन्तायां कतिपयेऽनुयोगाः पुरतोऽवतिष्ठन्ते। कति वेदाः? किं वेदानां महत्त्वम्? किं वेदानां वेदत्वम्? किं तत्र विशिष्टं ज्ञानम्? किं तेषां व्यावहारिकी उपयोगिता? किं वेदाध्ययनस्य जीवने उपयोगित्वम्? किं च समस्याबहुले जगति समस्या-निराकरणत्वं वेदानाम्? किं च वेदानां धार्मिकं राजनीतिकम् आर्थिकं भाषा-वैज्ञानिकम् ऐतिहासिकं काव्यशास्त्रीयं शास्त्रीयं सामाजिकं सांस्कृतिकं च महत्त्वम्? इत्येवात्र समासतो विव्रियते प्रस्तूयते च।

वैदिकं साहित्यम्—मुख्यत्वेन वेदशब्दः ऋग्यजुःसामाथर्वनामभिः प्रचलितानां चतसृणां वेदसंहितानां बोधकः। एतेषामेव चतुर्णां वेदानां व्याख्यानभूता ब्राह्मणग्रन्थाः सन्ति, येषु वैदिककर्मकाण्डस्य विशदं वर्णनमस्ति। एतेषु वेदानाम् आध्यात्मिकी व्याख्याऽपि प्रस्तूयते। एतेषां परिशिष्टरूपेण आरण्यकग्रन्थाः सन्ति। एषु अध्यात्मविद्याया विवेचनं प्राप्यते। उपनिषत्सु च तस्या एवाध्यात्मविद्यायाश्चरमोत्कर्षः संलक्ष्यते। वैदिकसाहित्यशब्देन समग्रोऽपि मन्त्र-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषत्-संग्रहरूपो निधिर्गृह्यते। अतएव ‘मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्’ (आप० श्रौत० ३१) इति निर्दिश्यते।

वेदानां धार्मिकं महत्त्वम्—वेदा मन्वादिभिः ऋषिभिः परमप्रमाणत्वेनोपन्यस्ताः। ‘वेदोऽखिलो धर्ममूलम्’ (मनुस्मृति २.६) इति समुद्धोषयता मनुना समग्रस्यापि वेदनिधेर्धर्माधाररूपेण प्रतिष्ठा विहिता। मानवस्याखिलं कृत्यजातं कर्तव्याकर्तव्यं च वेदेषु विशदतया निरूप्यते। अतएव वेदा आचारसंहिता-रूपेण प्रमाणीक्रियन्ते।

यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।

स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥ (मनु० २.७)

सर्वेऽपि विद्वत्तल्लजा भारतीया दार्शनिकाः, आचारशिक्षणप्रवणाः स्मृतिकाराः, शब्दतत्त्वमीमांसादक्षा वैयाकरणाः, अन्ये च शास्त्रकारा वेदानां परमप्रामाण्यं प्रतिपदम् उद्घोषयन्ति । अतएव महर्षिणा पतञ्जलिना कर्तव्यत्वेन समादिश्यते यत्—

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्ययो ज्ञेयश्च ।

(महाभाष्य, आह्निक १)

स्मृतिकारैर्न एतावतैव विरप्यते, अपितु निर्दिश्यते यद् ब्राह्मणेन एकनिष्ठया वेदाध्ययनं संपाद्यम् । एतद् ब्राह्मणस्य परमं तपः । यश्च वेदाध्ययनम् अवमत्य शास्त्रान्तरे कृतमतिः, स जीवन्नेव सपरिवारः शूद्रत्वम् उपयाति ।

वेदमेव सदाऽध्यस्येत् तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः ।

वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ (मनु० २.१६६)

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।

स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ (मनु० २.१६८)

वेदानां सांस्कृतिकं महत्त्वम्— भारतीयायाः संस्कृतेर्मूलस्रोतोऽनुसंधीयते चेत् तर्हि वेदा एव तन्मूलस्रोतस्त्वेनोपतिष्ठन्ति । वेदेष्वेव प्रब्रतमा भारतीया संस्कृतिर्वर्णिताऽस्ति । भारतीयायाः संस्कृतेर्मूलरूपं वेदेष्वेवोपलभ्यते । वेदेष्वेव प्राक्तनभारतीयानां जीवनदर्शनं, कार्यकलापः, आचार-विचाराः, नैतिकं सामाजिकं च चरितं प्राप्यते । मानवानां विविधकर्तव्यादिनिर्धारणं तत्रैवोपलभ्यते । उक्तं च मनुना—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।

वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ मनु० १.२१

लोकमान्य-तिलकमहाभागास्तु वेदेषु प्रामाण्यबुद्धिमेव आर्यत्वस्य लक्षणं व्यादिशन्ति— 'प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु', वेदेष्वेवाार्याणां संस्कृतेर्विशुद्धं रूपं विस्तरशः प्राप्यते । आर्याणां यज्ञेषु दृढविश्वासः, एकेश्वरवादेन सहैव बहुदेवतावादस्यापि स्वीकरणम्, अनासक्तभावनया कर्मविधिः, ईश्वरस्य सर्वव्यापकत्वम्, ज्ञानकर्मणोः समन्वयः, भौतिकवादं प्रत्यनास्था, पुनर्जन्मनि विश्वासः, मोक्षस्य जीवनोद्देश्यत्वं चेत्यादितथ्यानि वेदेष्वेव प्राप्यन्ते ।

विश्वसंस्कृतेरैतिह्यं गवेषितं चेत् तर्हि वेदा एव सर्वप्रमुखत्वेन दृष्टिपथम् अवतरन्ति । अस्मिन् संसारे संस्कृतेः सभ्यतायाश्च कथमिव विकासोऽभूदित्यर्थं वेदानुशीलनम् अनिवार्यम् आपद्यते । तत एव क्रमिकविकासस्य प्रक्रिया प्राप्यते । अतएव यजुर्वेदे प्राप्यते— 'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा' (यजु० ७.१४), वैदिकी संस्कृतिः प्रथमा संस्कृतिरासीत् ।

शास्त्रीयं महत्त्वम्—वेदानां शास्त्रीयं महत्त्वं सर्वतोमुख्यं वर्तते । 'सर्वज्ञानमयो हि सः' इति वदता मनुना वेदानां सर्वविधज्ञाननिधानत्वम् उरीकृतम् । यति विचारदृशा समीक्ष्यते तर्हि वेदेषु बीजरूपेण दार्शनिकाः सिद्धान्ताः, राजनीतिः, समाजशास्त्रम्, अध्यात्मम्, मनोविज्ञानम्, आयुर्वेदः, गणितम्, अर्थशास्त्रम्, नाट्यशास्त्रम्, काव्यशास्त्रम्, कामशास्त्रम्, अन्याश्च विविधाः कलास्तत्र तत्र वर्ण्यन्ते । वैदिकं दर्शनम् अध्यात्मतत्त्वं चोपादाय उपनिषदो विविधानि दर्शनानि च प्रवृत्तानि । तथ्यमेतद् निदर्शनरूपेण नाट्यशास्त्रकृतो भरतमुनेर्विवेचनेन विशदीभवति ।

जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ नाट्यशास्त्र १.१७

नैतिकं महत्त्वम्—वेदानाम् आचारशिक्षा-दृष्ट्या, नैतिक-दर्शनरूपेण चातीव महत्त्वं वर्तते । कर्तव्योद्बोधनरूपेण तेषां परमं प्रामाण्यं वर्तते । किं कर्म, किम् अकर्मति चिन्तायां वेदा एवादृशरूपेण प्रस्तूयन्ते । अतएव मनुनोच्यते—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ॥ मनु० २.१२

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मम् अनुतिष्ठन् हि मानवः ।

इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ मनु० २.९

धर्मचिन्तायां कर्तव्यविचारणे च वेदाः परमप्रमाणभूताः सन्ति ।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।

मनु० २.१३

सामाजिकं महत्त्वम्—समाजशास्त्रीयदृष्ट्याऽपि वेदा अत्यन्तं महत्त्वपूर्णाः सन्ति । समाजस्य विकासस्य, सभ्यतायाः समुत्पत्तेः, वर्णानां विविधवृत्तिपराणां नराणां च कर्मकलापस्य सामाजिकव्या व्यवस्थायाश्च महत्त्वपूर्णम् इतिवृत्तं वेदेषूपलभ्यते । प्राक्तनस्य समाजस्य किं स्वरूपमासीदित्यपि तत एवाप्तुं पार्यते ।

आर्थिकं महत्त्वम्—अर्थशास्त्रदृष्ट्याऽपि वेदानां महत्त्वम् अस्ति । वेदेषु प्रत्याया अर्थव्यवस्थायाः स्वरूपं स्फुटं समवाप्यते । आदान-प्रदानस्य, क्रय-विक्रयस्य, व्यापारस्य वाणिज्यस्य च, गवादिपशूनाम्, कृषि-धान्यादीनां च का व्यवस्थाऽवस्था चासीदित्यपि तत्र प्राप्तुं शक्यते । आदान-प्रदानस्य महत्त्वं यजुर्वेदे वर्ण्यते :—

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।

निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते ॥ यजु० ३.५०

राजनीतिकं महत्त्वम्—राजनीतिशास्त्रदृष्ट्यापि वेदानां महत्त्वं नावमूल्ययितुं शक्यते । वेदेषु राज्ञः प्रजायाश्च कर्माणि, राजतन्त्रस्य विविधं स्वरूपम्, राज्ञो वरणम्, सभायाः समितेश्च संस्थापना, मन्त्रिपरिषदो मनोनयनम्, राजतन्त्रीया प्रजातन्त्रीया च शासनव्यवस्था, शत्रु-संहारः, सामदण्डादिविधीनां प्रयोगः समुपलभ्यन्ते । वेदेषु राज्ञो निर्वाचनस्य प्रजातन्त्रीयाया राज्य-व्यवस्थायाश्चापि समुल्लेखो विविधेषु स्थलेषु उपलभ्यते । तद्यथा—

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु० (अथर्व० ६.८७.१)

त्वां विशो वृणतां राज्याय ॥ (अथर्व० ३.४.२)

महते जानराज्याय०। (यजु० ९.४०)

भाषावैज्ञानिकं महत्त्वम्—तुलनात्मकभाषाविज्ञानस्याध्ययनाय वेदानाम् अतीव महत्त्वं विद्यते। वेदा विश्वस्य प्राचीनतमाः समुपलब्धाः ग्रन्थाः। तत्रापि ऋग्वेदस्य प्राचीनतमत्वेन भाषायाः प्राचीनतमं रूपं प्राप्यते। पारसीकधर्मग्रन्थ-जेन्दावेस्ता- (छन्दोऽवस्था)-ग्रन्थेन सह तुलनायाम् अवेस्ता-भाषया सह वैदिकभाषाया घनिष्ठः संबन्धो दृश्यते। ऋग्वेदीया मन्त्रा अवेस्ताभाषायां अवेस्ता-मन्त्राश्च वैदिकमन्त्रेषु च परिवर्तयितुं शक्यन्ते। तुलनात्मक-भाषाविज्ञानस्य दृष्ट्या विशेषतो वेदानाम् अध्ययनं पाश्चात्यदेशेषु प्रवृत्तम्। वैदिक-संस्कृतभाषाया लौकिक-संस्कृतस्य, ततश्च भाषाणाम् अन्यासां जनिक्रमस्यावबोधाय वेदानाम् अध्ययनम् अनिवार्यम्।

ऐतिहासिकं महत्त्वम्—वेदेषु कतिपये ऐतिह्यावबोधकाः सन्दर्भा अपि तत्र तत्रोपलभ्यन्ते। तानाश्रित्य संदर्भान् विद्वद्भिः प्राचीनतमम् ऐतिह्यं प्रस्तूयते। तत्र गङ्गादीनां नदीनाम् (ऋग्० १०.७५.५), दशराज्ययुद्धस्य (ऋग्० ६.८३.७), पञ्च जनानाम् (ऋग्० ३.३७.९), विविधानां वर्णानां वृत्तीनां च (यजु० ३०.५-२२) उल्लेखः प्राप्यते।

काव्यशास्त्रीयं साहित्यिकं च महत्त्वम्—काव्यशास्त्रीयदृष्ट्याऽपि वेदानां महत्त्वं प्रशस्यम्। तत्र अनुप्रास-यमक-रूपकादीनाम् अलंकाराणां प्रयोगोऽनेकत्र प्राप्यते। उषःसूक्ते उषसो वर्णने कवित्वस्य स्फुटं दर्शनं जायते। सुन्दरी युवतिः स्ववस्त्राणीव उषाः स्वीयं सौन्दर्यं विस्तारयति। सकलेऽपि भुवने तस्याः सौन्दर्यम् आह्लादकारि व्याप्नोति।

अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।

स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद् दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः।

(ऋग्० ३.६१.४)

एवं वेदाध्ययनं जीवनं पावयति, चिन्ताकुलं जगत् चिन्तायास्त्रायते, लोकानां विविधाः समस्या निवारयति, जीवनम् उन्नमयति, सद्भावांश्च प्रेरयति, इति सर्वथा वेदानां महत्त्वं सिध्यति।

वेदानां महत्त्वम् अङ्गीकृत्यैव भारतीयैः पाश्चात्यैश्च विपश्चिद्भिः वेदाध्ययने स्वजीवनं यापितम्। तद् यथा—सायणाचार्य-वेंकटमाधव-महर्षिदयानन्द-मधुसूदन ओझा-मोतीलाल शर्मा-वासुदेवशरण अग्रवाल-मैक्समूलर-रुडोल्फ रोठ-विल्सन-ग्रिफिथ-मैकडानल-प्रभृतयो विद्वत्तल्लजाः।

२. वेदाङ्गानि, तेषां वेदार्थबोधोपयोगिताः

वेदार्थबोधाय तत्स्वराद्यवगमाय तद्विनियोगज्ञानाय चासीद् महत्यावश्यकता केषाञ्चित् सहायकग्रन्थानाम् । एतद्भावपूर्त्ये एव जनिरभवद् वेदाङ्गानाम् । षडिमानि वेदाङ्गानि । १. शिक्षा, २. व्याकरणम्, ३. छन्दः, ४. निरुक्तम्, ५. ज्योतिषम्, ६. कल्पः । तथा चोच्यते—‘शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः । ज्योतिषामयनं चैव वेदाङ्गानि षडेव तु’ । षडिमान्यङ्गानि वेदार्थबोधादिविधौ उपकुर्वन्तीति निरूप्यतेऽत्र । षण्णामेतेषां महत्त्वं निरीक्ष्यैव प्रतिपाद्यते पाणिनीयशिक्षायाम् :— ‘‘छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते । ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् । तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते’’ ॥ (श्लो० ४१-४२)

वेदाङ्गानामेतेषां विवरणं तेषां वेदार्थबोधोपयोगिता च समासतोऽत्र प्रस्तूयते ।

(१) शिक्षा—शिक्षाग्रन्था वर्णोच्चारणविधिं विशेषतो वर्णयन्ति । कथं वर्णा उच्चारणीयाः, किं तेषां स्थानम्, कश्च तत्र यत्नः, कण्ठताल्वादीनामुच्चारणे किं महत्त्वम्, कति वर्णाः, कथं कायमारुतो वर्णत्वेन विपरिणमते, कति स्थानानि, कति स्वराः, कथं च ते प्रयोज्या इत्यादयो विषयाः शिक्षाग्रन्थेषु विविच्यन्ते । वर्णोच्चारणादिविधिज्ञानमन्तरेण न शक्यो वेदानां विशुद्धः पाठोऽर्थावगमश्चेति शिक्षाग्रन्थानां विशिष्टं महत्त्वम् । साम्प्रतं केचन शिक्षाग्रन्था उपलभ्यन्ते । तेषां सम्बन्धश्च केनचिद् विशिष्टेन वेदेन वर्तते । तद्यथा—ऋग्वेदादेः पाणिनीयशिक्षा, शुक्लयजुर्वेदस्य याज्ञवल्क्यशिक्षा, कृष्णयजुर्वेदस्य व्यासशिक्षा, सामवेदस्य नारदीयशिक्षा, अथर्ववेदस्य माण्डूकीशिक्षा । अन्येऽपि केचन शिक्षाग्रन्थाः सन्ति । यथा—भरद्वाजशिक्षा, वसिष्ठशिक्षादयः । (२) व्याकरणम्—व्याकरणे प्रकृतिप्रत्ययस्य विचारः, उदात्तादिस्वरविचारः, उदात्तादिस्वरसंचारनियमाः, सन्धि-नियमाः, शब्दरूपधातु-रूपादिनिर्माणनियमाः, प्रकृतेः प्रत्ययस्य च स्वरूपावधारणं तदर्थनिर्धारणं चेति विविधा विषया विविच्यन्ते । वेदेषु प्रकृति-प्रत्ययविचारस्य स्वरस्य च महत्त्वमिति तत्र व्याकरणमेव साहाय्यमनुतिष्ठतीति षडङ्गेषु व्याकरणमेव प्रधानम् । संस्कृतव्याकरणं प्रातिशाख्यमूलकमेव । वेदानां प्रतिशाखामाश्रित्य व्याकरणग्रन्था आसन्, ते च प्रातिशाख्यग्रन्था इति पप्रथिरे । केचन एव प्रातिशाख्यग्रन्थाः साम्प्रतमुपलभ्यन्ते । ते कमप्येकं वेदमाश्रित्य वर्तन्ते । तद्यथा—ऋग्वेदस्य शाकलशाखायाः शौनकप्रणीतम् ऋक्प्रातिशाख्यम् । एतदेव पार्षदसूत्रमित्यप्यभिधीयते । शुक्लयजुर्वेदस्य माध्यन्दिनशाखायाः कात्यायनविरचितं शुक्लयजुःप्रातिशाख्यम् । कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तिरीयशाखायाः तैत्तिरीयप्रातिशाख्यम् । सामवेदस्य सामप्रातिशाख्यं (पुष्पसूत्रं वा), पञ्चविधसूत्रं च । अथर्ववेदस्य अथर्वप्रातिशाख्यं (चातुरध्यायिकं वा) । संस्कृतव्याकरणावबोधाय च पाणिनेरष्टाध्यायी सर्वप्रमुखा । अन्ये

प्राचीना व्याकरणग्रन्था लुप्तप्राया एव। (३) छन्दः—वेदेषु मन्त्राः प्रायशश्छन्दोबद्धा एव। अतो वृत्तज्ञानाय छन्दःशास्त्रमनिवार्यम्। छन्दःशास्त्रविषयको मुख्यो ग्रन्थः पिंगलप्रणीतं छन्दःसूत्रमेवोपलभ्यते। प्रतिशाख्यग्रन्थेष्वपि वृत्तविचारः प्राप्यते। (४) निरुक्तम्—निरुक्ते क्लिष्टवैदिकशब्दानां निर्वचनं प्राप्यते। विषयेऽस्मिन् यास्कप्रणीतं निरुक्तमेव प्रमुखो ग्रन्थः। अत्र मन्त्राणां निर्वचनमूलाया व्याख्यायाः प्रथमः प्रयासः समासाद्यते। वैदिकशब्दानां संग्रहात्मको ग्रन्थो निघण्टुरिति कथ्यते। तस्यैव व्याख्यानभूतं निरुक्तमेतत्। यास्को निरुक्ते स्वपूर्ववर्तिनः सप्तदश निरुक्तकारान् परिगणयति। निरुक्ते काण्डत्रयं नैघण्टुककाण्डं नैगमकाण्डं दैवतकाण्डं चेति। (५) ज्योतिषम्—शुभं मुहूर्तमाश्रित्यैव विशिष्टोऽध्वरः प्रावर्ततेति शुभमुहूर्ताकलनाय ज्योतिषस्योदयोऽभूत्। अत्र सूर्यचन्द्रमसोर्ग्रहाणां नक्षत्राणां च गतिर्निरीक्ष्यते परीक्ष्यते विविच्यते च। सौरमासश्चान्द्रमासश्चोभयं परिगण्यतेऽत्र। मखमुहूर्त-निर्धारणे चान्द्रमासस्य प्रधानत्वं परिलक्ष्यते। विषयेऽस्मिन् आचार्यलगधप्रणीतं 'वेदाङ्गज्योतिषम्' इति ग्रन्थ एव साम्प्रतमुपलभ्यते। (६) कल्पः—कल्पसूत्रेषु विविधाध्वराणां संस्कारादीनां च वर्णनं प्राप्यते। मन्त्राणां विविधकर्मसु विनियोगश्च तत्र प्रतिपाद्यते। कल्पसूत्राणि चतुर्धा विभज्यन्ते— (क) श्रौतसूत्रम्, (ख) गृह्यसूत्रम्, (ग) धर्मसूत्रम्, (घ) शुल्बसूत्रं च। (क) श्रौतसूत्रम्—श्रौतसूत्रेषु श्रुतिप्रतिपादितानां सप्त हविर्यज्ञानां सप्त सोमयज्ञानामेवं चतुर्दशयज्ञानां विधानं विधिर्विनियोगादिकं च प्रतिपाद्यते। तत्र प्रमुखाणि श्रौतसूत्राणि सन्ति—आश्वलायनश्रौतसूत्रम्, शांखायनश्रौतसूत्रम्, बौधायन०, आपस्तम्ब०, कात्यायन०, मानव०, हिरण्यकेशी०, लाट्यायन०, द्राह्यायन०, वैतानश्रौतसूत्रं च। श्रौतसूत्राणीमानि कमप्येकं वेदमाश्रित्य वर्तन्ते। (ख) गृह्यसूत्रम्—गृह्यसूत्रेषु षोडशसंस्काराणां पञ्चमहायज्ञानां सप्तपाकयज्ञानामन्येषां च गृह्यकर्मणां सविशेषं वर्णनमाप्यते। गृह्यसूत्राण्यपि कमप्येकं वेदमाश्रित्य वर्तन्ते। तत्र प्रमुखाणि सन्ति—आश्वलायनगृह्यसूत्रम्, पारस्कर०, शांखायन०, बौधायन० आपस्तम्ब०, मानव०, हिरण्यकेशी, भारद्वाज०, वाराह०, काठक०, लौगाक्षि०, गोभिल०, द्राह्यायन०, जैमिनीय०, खदिरगृह्यसूत्रं च। (ग) धर्मसूत्रम्—धर्मसूत्रेषु मानवानां कर्तव्यं नीतिर्धर्मो रीतयश्चतुर्वर्णांश्रमाणां कर्तव्यादिकमन्यच्च सामाजिक-नियमादिकं वर्ण्यते। तत्र प्रमुखा ग्रन्थाः सन्ति—बौधायनधर्मसूत्रम्, आपस्तम्ब०, हिरण्यकेशी०, वसिष्ठ०, मानव०, गौतमधर्मसूत्रं च। (घ) शुल्बसूत्रम्—शुल्बसूत्रेषु यज्ञवेद्या मानादिकं वेदीनिर्माणविध्यादिकं च वर्ण्यते। तत्र मुख्या ग्रन्थाः सन्ति—बौधायनशुल्बसूत्रम्, आपस्तम्ब०, कात्यायन०, मानवशुल्बसूत्रं च। एवं षडिमानि वेदाङ्गानि वेदार्थबोधे तत्क्रियाकलापवर्णने चोपयुक्तानि सन्ति।

३. सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः ।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

कस्य न विदितं विपश्चितो भगवद्गीताया गुणगौरवम् । गीतेयं न केवलं प्रस्तवीति सर्वासामप्युपनिषदां सारभागम्, अपि तु श्रुतिसारमपि प्रस्तौतितराम् । सांख्ययोगदर्शनयोः सिद्धान्तानां वैशद्येन विवेचनात् प्रतिपादनाच्च दर्शनसारसंग्रहोऽप्यत्रोपलभ्यते । वेदान्तदर्शन-प्रतिपादितस्य तत्त्वमसीति महावाक्यस्याप्यत्रोपलम्भाद् वेदान्तावगाहित्वमप्यस्य लक्ष्यते । सेयं सरलया भावाभिव्यक्तिप्रक्रियया, भूयिष्ठयाऽर्थगभीरतया, प्रेष्ठया पद्धत्या, श्रेष्ठया विवृतिसरण्या, साधिष्ठया योगसाधनादीक्षया, वरिष्ठयाऽऽत्मविशुद्धिशिक्षया सर्वस्यापि लोकस्यादृतिमनुभवति । एतदेवात्र समासत उपस्थाप्यते विव्रियते च ।

गीतायां ये भावाः सिद्धान्ताश्च प्रतिपाद्यन्ते, ते क्वचित् समासतः क्वचिच्च विस्तरश उपनिषत्षु वेदेषु च समुपलभ्यन्ते । गीतायां विषय-क्रमेण, हृद्येन भावाभिव्यञ्जनप्रकारेण, साधिष्ठया विवृत्या च ते भावाः समासाद्यन्त इति प्रमुखं गीताया महत्त्वम् । गीतेयं प्रसादगुणसंयोगात्, अल्पीयोभिः शब्दैर्भूयिष्ठस्यार्थावबोधस्य संकलनात् तथा प्रीणयति चेतः सचेतसां यथा न ग्रन्थान्तरम् । (१) निष्कामकर्मयोगस्य वर्णनं महत्या विवृत्या समुपलभ्यते गीतायाम् । तद्यथा—कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ (गीता, २.४७) । विहायासक्तिं फलप्रेप्सामनास्थाय कर्मणि प्रवर्तितव्यम् । निष्कामकर्मकरणेन चेतः प्रसीदति, धीर्विकसति, मानसमानन्दमनुभवति, न कर्माणि बध्नन्ति मानवम्, न विषया विमोहयन्ति मानसम्, न पतति जीवः स्वलक्ष्यात्, न च मोहो मनो मोहयति । निष्कामकर्मयोगप्रतिपादकाः केचन श्लोका अत्र दिङ्मात्रं निर्दिश्यन्ते । योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय (२.४८), कर्मयोगेन योगिनाम् (३.३), न कर्मणामनारम्भात् नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते (३.४), कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वैः प्रकृतिजैर्गुणैः (३.५), यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन । कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ (३.७), नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः । (३.८), तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर । (३.१९), कर्मणैव हि संसिद्धिम् आस्थिता जनकादयः । (३.२०), सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत । कुर्याद् विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुलोकसंग्रहम् ॥ (३.२५), कुरु कर्मैव तस्मात् त्वं० (४.१५), कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं० (४.१७), कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः । (४.१८), त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् करोति सः । (४-२०), कर्मयोगो विशिष्यते (५.२) । निष्कामकर्मयोगस्य वर्णनं मूलरूपेण यजुर्वेदे चत्वारिंशत्तमेऽध्याये ईशोपनिषदि च समासाद्यते । तद्यथा—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे (यजु० ४०.२, ईश० २) । जगत्यस्मिन् जीवः कर्म कुर्वन्नेव जीवितुमभिलष्येत् । एवं मानवस्य लक्ष्यनाशो न भवति, न च स कर्मभिर्बध्यते । (२) गीतायां यज्ञस्य महत्त्वं तस्यावश्यककर्तव्यता च निरूप्यते । तद्यथा—सहयज्ञाः प्रजाः० (३.१०), देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः । (३.११), इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।

(३.१२), यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। (३.१३), अन्नाद् भवन्ति भूतानि यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः। (३.१४, १५), एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः। मोघं पार्थ स जीवति। (३.१६), दैवमेवापरे यज्ञं (४.२५-२७), द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे। स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च (४.२८), यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्। (४.३१-३३)। यतिनाऽपि नोज्झितव्यो यागः। यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् (१८.५)। यज्ञस्य महत्त्वं तदुपयोगिता तत्फलादिकं च शतशो मन्त्रेषु यजुर्वेदे वर्ण्यते। तद् दिङ्मात्रमिह निर्दिश्यते—श्रेष्ठतमाय कर्मणे (यजुं १.१), यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म (शत० ब्रा० १.७.१.५), पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् (यजुं २.६), समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। (यजुं ३.१-५), देवान् दिवमगमन् यज्ञः (यजुं ८.६०), आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पताम्। (यजुं ९.२१), भद्रो नो अग्रिराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः०। (यजुं १५.३८-३९), उदबुध्यस्वाग्रे प्रतिजागृहि (यजुं १५.५४-५५), अशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः। सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति। (यजुं २३.५८), अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः (यजुं २३.६२), तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्०। (३१.६-९), वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः। (३१.१४), यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवांस्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। (३१.१६)। यज्ञमहत्त्वप्रतिपादका अन्ये मन्त्राः सन्ति। तद्यथा—ऊर्ध्वमिममध्वरं (यजुं ६.२५), य इमं यज्ञं स्वधया ददन्ते (यजुं ८.६१), प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय (यजुं ९.१), सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः (यजुं १२.४४)। (३) कर्मकाण्डस्य ब्रह्मज्ञानापेक्षया गौणत्वं प्रतिपाद्यते गीतायाम्। यामिमां पुष्वितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः। कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्। (२.४२-४३)। विषयोऽयं विस्तरशो वर्ण्यते मुण्डकोपनिषदि। तद्यथा—प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः..... एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति। इष्ट्यापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः। (मुण्डक० १.२.७-१०)। (४) आत्मनोऽजरत्वममरत्वमनादित्वादिकं च महता विस्तरेण गीतायां सम्प्राप्यते। तद्यथा—अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ता शरीरिणः। (२.१८), य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्। (२.१९), न जायते म्रियते वा कदाचित्..... अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो (२.२०), वासांसि जीर्णानि यथा विहाय..... तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही। (२.२२), नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः (२.२३), अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च० (२.२४), देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत० (२.३०)। आत्मनो नित्यत्वमीशोपनिषदि कठोपनिषदि च विस्तरतो वर्णितमस्ति। तद्यथा—स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणं (ईश० ८), अनेजदेकं मनसो जवीयो (ईश० ४), तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः (ईश० ५), अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्०। (कठ० १.२.१८-२१)। (५) गीतायां द्वितीये चतुर्थे चाध्याये ज्ञानयोगस्य विस्तरशो वर्णनमाप्यते। मूलमेतस्येशोपनिषदि लभ्यते—विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा

विद्ययाऽमृतमश्नुते। (ईश० १.११)। मन्त्रत्रयेऽस्मिन् विद्यामार्गेण ज्ञानमार्गोऽविद्यामार्गेण च कर्ममार्गो गृह्यते। सांख्याभिमतोऽयं पन्थाः सांख्यदर्शने विशेषतो विव्रियते। (६) पञ्चमाध्याये षष्ठाध्याये च गीतायां योगो वर्ण्यते। तस्य स्वरूपं साधनाविध्यादिकं च तत्र प्राप्यते। वर्णनमेतद् वेदान्तदर्शनं योगदर्शनं चाश्रित्य वर्तते। मुण्डकोपनिषदि माण्डूक्योपनिषदि चायं विषय उपलभ्यते। तद्यथा—धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत०। (मु० २.२-३), प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमतेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्। (मु० २.२-४), यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि। (मु० २.२-७), सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्० (मु० २.३-५), यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। (मा० ५)। (७) अक्षरब्रह्मणो वर्णनं तदनुध्यानेन मोक्षाधिगमश्चाष्टमाध्याये गीतायां वर्ण्यते। मुण्डकोपनिषदि, छान्दोग्ये बृहदारण्यके च ब्रह्मणो वर्णनं प्रणवानुध्यानेन मोक्षावाप्तेश्च वर्णनं विस्तरश उपलभ्यते। (८) नवमेऽध्याये गीतायामीश्वरार्पणमीश्वरप्राप्तिसाधनत्वेनोपदिश्यते। भावोऽयं मुण्डकोपनिषदि मुख्यत्वेनोपलभ्यते। नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्। नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो० (मु० ३.२.३-४)। (९) गीतायां दशमेऽध्याये विभोर्विभूतीनां वर्णनमासाद्यते। कठोपनिषदि विस्तरशो विभोर्विभूतिवर्णनं निरीक्ष्यते। तद्यथा—रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च। (कठ० २.५.८-११), तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति (कठ० २.५.१५), भयादस्याग्रिस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः (कठ० २.६.३)। (१०) गीतायामेकादशेऽध्याये विराड् रूपदर्शनमुपलभ्यते। विभोर्विराड् रूपस्य वर्णनं यजुर्वेदे पुरुषसूक्ते ३१तमे अध्याये प्राप्यते। तद्यथा—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्०। (यजु० ३१.१-१३)। (११) द्वादशेऽध्याये भक्तियोगवर्णनं गीतायाम्। कैवल्योपनिषदि भक्तियोगो ध्यानयोगश्च वर्ण्यते। तद्यथा—श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि। न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः। (कैव० १.२-३)। (१२) त्रयोदशेऽध्याये क्षेत्रक्षेत्रज्ञवर्णनं सांख्यदर्शनानुसारि ज्ञातव्यम्। सांख्याभिमतं प्रकृतिपुरुषवर्णनमिहोपलभ्यते। (१३) चतुर्दशेऽध्याये गुणत्रयवर्णनमपि सांख्यदर्शनानुसार्येव बोद्धव्यम्। श्वेताश्वतरोपनिषद्यपि गुणत्रयवर्णनमुपलभ्यते। तद्यथा—अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः० (श्वेता० ४.५), स विश्वरूपस्त्रिगुणः० (श्वेता० ५.७)। सप्तदशेऽष्टादशे चाध्याये श्रद्धाया ज्ञानादिकस्य च सात्त्विकादिभेदो वर्ण्यते। तदपि सांख्यानसार्येवावगन्तव्यम्। (१४) पञ्चदशेऽध्यायेऽश्वत्थवर्णनं कठोपनिषदमाश्रित्य वर्तते। तद्यथा—ऊर्ध्वमूलोऽवाकृशाख एषोऽश्वत्थः सनातनः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते। (कठ० २.६.१)। तत्र वर्णिता क्षराक्षरद्वयी श्वेताश्वतरोपनिषदि प्राप्यते। तद्यथा—क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः। (श्वेता० १.१०)। विशदीभवत्येतस्माद्यद् गीतेयं सर्वासामुपनिषदां समेषां दर्शनानां श्रुतीनां च सारं सरलया सरण्या प्रस्तवीतीति।

४. भासनाटकचक्रम्

महाकवेर्भासस्य कृतित्वेन त्रयोदश नाटकरत्नानि समुपलभ्यन्ते । 'भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्' इति राजशेखरभणितिमाश्रित्य भासनाटकचक्रमिति तत्कृतनाटकानां नाम व्यवहियते । नाटकत्रयोदशस्य परिचयः समासतोऽत्र प्रस्तूयते । (१) **प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्**—अङ्कचतुष्टयमत्र । उदयनस्य वासवदत्तया सह प्रणयः परिणयश्चेह वर्ण्यते । यौगन्धरायणप्रयत्नतः प्रद्योतप्रासादादुदयनस्य मोक्षः । (२) **स्वप्नवासवदत्तम्**—अङ्कषट्कमत्र । वासवदत्ताऽग्निदाहेन दग्धेति प्रवादं प्रचार्य यौगन्धरायणप्रयत्नात् पद्मावत्या सहोदयनस्योपयमोऽपहतराज्यावाप्तिश्च वर्ण्यते । (३) **ऊरुभङ्गम्**—नाटकमेतदेकाङ्कि । पाञ्चालीपरिभवप्रतिक्रियार्थं भीमेन गदायुद्धे दुर्योधनोरुभञ्जनं वस्तु प्रतिपाद्यते । निखिलेऽपि संस्कृतवाङ्मये दुःखान्तमेतदेव नाटकम् । (४) **दूतवाक्यम्**—एकाङ्कि नाटकम् । महाभारताहवात् प्राक् पाण्डवार्थं दुर्योधनसंसदि श्रीकृष्णस्य दूतत्वेन गमनं प्रयत्नवैफल्यं चात्र वर्ण्यते । (५) **पञ्चरात्रम्**—अङ्कत्रयमत्र । यज्ञान्ते द्रोणो दक्षिणास्वरूपं पाण्डवेभ्यो राज्यार्थं ययाचे दुर्योधनम् । पञ्चरात्राभ्यन्तरे पाण्डवानामुदन्त उपलभ्यते चेद्राज्यार्थं दास्यते मयेति दुर्योधनोक्तिः । पञ्चरात्राभ्यन्तरे पाण्डवानां प्राप्तिदुर्योधनकृतराज्यार्धप्रदानं च । (६) **बालचरितम्**—अङ्कपञ्चकमत्र । बालस्य श्रीकृष्णस्य जन्मारभ्य कंसवधान्तं चरितमिह वर्ण्यते । (७) **दूतघटोत्कचम्**—एकाङ्कि नाटकमदः । अभिमन्युनिधनानन्तरं श्रीकृष्णप्रेरणया घटोत्कचस्य दौत्यमाश्रित्य धृतराष्ट्रान्तिकं गमनम् । दुर्योधनकृतस्तस्यावमानः । दुर्योधनोक्तिश्च—'प्रतिवचो दास्यमि ते सायकैरिति' । (८) **कर्णभारम्**—नाटकमिदमेकाङ्कि । ब्राह्मणवेषधारिणे शक्राय कर्णस्य कवचकुण्डलार्पणम् । (९) **मध्यमव्यायोगः**—नाटकमिदमेकाङ्कि । मध्यमः पाण्डवो भीमो मध्यमनामानं ब्राह्मणसूनुमेकं घटोत्कचात् त्रायते । अपत्यदर्शनेन भीमस्यानन्दावाप्तिः पत्न्या हिडम्बया च समागमः । (१०) **प्रतिमानाटकम्**—अङ्कसप्तकमिह । रामवनवासादारभ्य रावणवधान्ता कथाऽत्र वर्णिता । दशरथप्रतिमां प्रेक्ष्य भरतः पितुर्निधनमवगच्छति । (११) **अभिषेकनाटकम्**—अङ्कषट्कमत्र । किष्किन्धाकाण्डादारभ्य युद्धकाण्डान्ता रामकथाऽत्र वर्णिता । रावणवधानन्तरं रामस्य राज्येऽभिषेकः । (१२) **अविमारकम्**—अङ्कषट्कमत्र । राजकुमारस्याविमारकस्य राज्ञः कुन्तिभोजस्य दुहित्रा कुरङ्गया सह प्रणयपरिणयोऽत्र वर्णितः । (१३) **चारुदत्तम्**—वितीर्णविपुलवित्तेनोदारचितेन चारुदत्तेन सह वसन्तसेनानामवाराङ्गनायाः प्रणयोपयमोऽत्र वर्णितः ।

नाटकानामेतेषां प्रणेता भास एवान्यो वेति विविधा विप्रतिपत्तिर्विषयेऽस्मिन् । भास एवैतेषां नाटकानां प्रणेतेति विद्वद्भिरधिकैरुररीक्रियते । एक एवैतेषां प्रणेतेत्यवगम्यतेऽन्तःसाक्ष्यादिना । (१) नाटकानि सर्वाण्यपि सूत्रधारप्रवेशादारभन्ते । 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इति वाक्येन ग्रन्थारम्भः सर्वत्र । (२) नाटकभूमिकार्थं प्रस्तावनाशब्दस्थाने 'स्थापना'-शब्दप्रयोगः । (३) प्ररोचनाभावोऽर्थात् नाटककृत्परिचयाभावः स्थापनायाम् । (४) नाटकपञ्चके (स्वप्न०, प्रतिज्ञा०, प्रतिमा०, पञ्च०, ऊरु०) मुद्रालंकारप्रयोगोऽर्थात् प्रथमश्लोके प्रमुखनाटकीयपात्राणां नामोल्लेखः । (५) भरतवाक्यं प्रायशः सममेव सर्वत्र । 'इमामपि महीं कृत्वा राजसिंहः प्रशास्तु नः ।' (६) भूमिका संक्षिप्ततमा । संवादारम्भेऽपि प्रायः साम्यमेव । यथा—एवमार्यमिश्रान्

विज्ञापयामि। (७) पात्रनामसाम्यमपि। यथा—काञ्चुकीयो बादरायणः, प्रतीहारी विजया च कतिपयेषु नाटकेषु। (८) अप्रचलितवृत्तानां प्रयोगो यथा—सुवदना, दण्डकादयः। (९) बहुषु नाटकेषु पताकास्थानकप्रयोगः। (१०) नाटकेषु सर्वेषु भाषासाम्यं रीतिसाम्यं च। (११) अपाणिनीयप्रयोगाश्च सर्वेष्वेव नाटकेषु। (१२) अन्योन्यसंबद्धानि नाटकानि यथा—स्वप्न० प्रतिज्ञायौगन्धरायणस्योत्तरभाग एव। प्रतिमाऽभिषेकनाटके च तथा।

बाणो हर्षचरिते 'सूत्रधारकृतास्मैः०' इति भासनाटकवैशिष्ट्यमाचष्टे। तच्च सर्वत्रेहावाप्यते। राजशेखरोऽभिधत्ते—'भासनानाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्। स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभूत् पावकः।' एतस्मात् भासकृतनाटकबहुत्वस्य स्वप्नवासवदत्तस्य च तत्कृतित्वेनावगतिर्भवति। भोजदेवो रामचन्द्रगुणचन्द्रौ च स्वप्नवासवदत्तं भासकृतिमामनन्ति। अतो भास एव सर्वेषां प्रणेतेत्यवगम्यते।

भासस्य जनिकालश्च ४५० ई० पूर्वादिनन्तरं ३७० ई० पूर्वात्प्राक् च स्वीक्रियते।

साम्प्रतकालं यावदुपलब्धं संस्कृतवाङ्मयं परीक्ष्यते चेद् भास एव नाटककुदग्रणीरिति शक्यं वक्तुम्। त्रयोदशनाटकानां प्रणेता स इति प्रतिपादितमेव। नाटकानां बाहुल्येन विषयवैविध्येनाभिनयोपयोगित्वेन च तस्य नाट्यनैपुण्यं नाटकनिर्मितौ वैशारद्यं चावधार्यते। नाटकेषु तस्य मुख्या विशेषताः सन्त्येताः — भाषायां सरलता, अकृत्रिमा शैली, वर्णनेषु यथार्थता, चरित्रचित्रणे वैयक्तिकत्वं, घटनासंयोजने सौष्ठवं, कथाप्रसङ्गस्याविच्छिन्नश्च प्रवाहः। सर्वान्येव नाटकान्यभिनयोपयोगिनीति तस्य महनीयतामभिवर्धयन्ति। नाटकेषु मौलिकता कल्पनावैचित्र्यं च विशेषतः उपलभ्यते। स एव सर्वाग्रणीरेकाङ्किनाटकप्रणयने। नाटकपञ्चकमस्यैकाङ्किः। पताकास्थानकमपि मधुरं प्रयुङ्क्ते। शैली चेद् विविच्यते तस्य तर्हि प्रसादमाधुर्यौजसां त्रयाणामपि गुणानां समन्वयस्तत्रावेक्ष्यते। भाषा तस्य सरला, सुबोध, सरसा, नैसर्गिकी, सप्रवाहा च। उपमारूपकोत्प्रेक्षार्थान्तरन्यासालंकाराणां प्रयोगो विशेषतोऽवाप्यते तस्य कृतिषु। अनुप्रासादिकं विशेषतः प्रियं तस्य। यथा—हा वत्स राम जगतां नयनाभिराम (प्रतिमा० २.४)। मनोवैज्ञानिकविवेचने नितरां निपुणः सः। यथा—दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः० (स्वप्न० ४.६), प्रद्वेषो बहुमानो वा० (स्वप्न० १.७), शरीरेऽरिः प्रहरति० (प्रतिमा० १.१२)। भारतीया भावाः सविशेषं रोचन्ते तस्मै। यथा—पितृभक्तिः पातित्रत्यं भ्रातृप्रेमादिकम्। 'भर्तृनाथा हि नार्यः' (प्रतिमा० १.२५), कुतः क्रोधो विनीतानाम्० (प्रतिमा० ६.९), अयुक्तं परपुरुषसकीर्तनं श्रोतुम् (स्वप्न० अंक ३)। भाषायां सरलता रम्यता च लोकप्रियत्वस्य कारणं तस्य। रसभावानुकूलं शैल्यां परिवर्तनमपि प्राप्यते। यथा—मद्भुजाकृष्ट० (प्रतिमा० ५.२२), पक्षाभ्यां परिभूय० (प्रतिमा० ६.३)। विस्तारमनादृत्य समासं साधीयान्मनुते। कमप्यर्थंअनुक्तवैव वनं गताः। (प्रतिमा० २.१७)। चित्रयति तथा भावान् यथा मूर्तवत्ते उपतिष्ठन्ति। व्यङ्ग्यप्रयोगस्तस्यासाधारणो मार्मिकश्च। यथा—अनपत्या० (प्रतिमा० २.८)। उपमाप्रयोगेऽपि दक्षः। यथा—सूर्य इव गतो रामः० (प्रतिमा० २.७), विचेष्टमानेव० (प्रतिमा० ६.२)। व्याकरणादिवैदग्ध्यमपि प्रदर्शयति यथावसरम्। यथा—स्वरपद० (प्रतिमा० ५.७), घनः स्पष्टो धीरः० (प्रतिमा० ४.७)। विविधरसवर्णने, छन्दःप्रयोगे, अर्थान्तरन्यासप्रयोगे च प्रभूतं दाक्षिण्यमुपलभ्यते तस्य।

५. कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्

महाकवेः कालिदासस्य जनिकालमनुरुध्य कतिपयानि मतान्युपस्थाप्यन्ते मतिमतां वरिष्ठैः। मद्वयं च मुख्यतः प्रचरिष्णु। (१) विक्रमसंवत्सरसंस्थापकस्य विक्रमादित्यस्य राज्यकाले ख्रिस्ताब्दात्पूर्वं प्रथमशताब्द्याम्, (२) ईसवीयचतुर्थशताब्द्यां गुप्तकाले। प्रथमं मतं भारतीयैरधिकं स्वीक्रियते, द्वितीयं च पाश्चात्त्यैः। कृतयस्तस्य प्राधान्यतः सप्तैव स्वीक्रियन्ते। (क) नाट्यग्रन्थाः—(१) अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (२) विक्रमोर्वशीयम्, (३) मालविकाग्निमित्रम्। (ख) काव्यद्वयम्—(४) रघुवंशम्, (५) कुमारसम्भवम्। (ग) गीतिकाव्यद्वयम्—(६) मेघदूतम्, (७) ऋतुसंहारम्। कृतिष्वेतासु शाकुन्तलमेव कवेः प्रतिभायाः परिपाकेन, रचनाकौशलेन, प्रकृतिचित्रणे पाटवेन, रसपरिपाकेन, नीरसाख्याने सरसताऽऽधानेन, मूलकथापरिवर्तने वैशारद्येन, करुणादिरससंचारेण च सर्वातिशयीति तदेव कालिदासस्य सर्वस्वमभिन्यते। अतो निगदितं केनापि—‘काव्येषु नाटकं रम्यं नाटकेषु शकुन्तला। तथापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्’। एतदेवात्र विविच्यते विव्रियते च। विषयोऽयं महता विस्तरेण वर्णितो विशदीकृतश्च मत्कृतशाकुन्तलभूमिकायाम्। विस्तरस्तत एवावगन्तव्यः। श्लोकाङ्कादिकं मत्संपादित-शाकुन्तलसंस्करणानुसारि।

कालिदासस्य नाट्यकलाकौशले सन्त्येते विशेषाः। घटनासंयोजने सौष्ठवं, वर्णनानां सार्थकता स्वाभाविकता ध्वन्यात्मकता च, चरित्रचित्रणे वैयक्तिकत्वं, कवित्वं रसपरिपाकश्चेति। अभिनयार्हतया चैतेषां नाटकानां महत्त्वं नितरामभिवर्धते। घटनासंयोजने सौष्ठवं यथा—द्वितीयेऽङ्के आश्रमं प्रवेष्टुकामे सति दुष्यन्ते ऋषिकुमारद्वयस्य नृपाह्वानार्थं प्रवेशः। पञ्चमे हंसपदिकागीतम्, षष्ठेऽङ्गुलीयकोपलब्धिः, सप्तमे पुत्रदर्शनं शकुन्तलावासिश्च। वर्णनेषु स्वाभाविकता यथा—प्रथमेऽङ्के मृगप्लुतिवर्णनम्, द्वितीयेऽवनपविदूषकसंलापः, चतुर्थे शकुन्तलाविप्रयोगवर्णनम्, पञ्चमे शकुन्तलाप्रत्याख्यानम्, सप्तमेऽपत्यक्रीडावर्णनं च। वर्णनानां ध्वन्यात्मकता यथा—‘दिवसाः परिणामरमणीयाः’ (१.३) नाटकस्य सुखावसायित्वं सूचयति। सूत्रधारकथनम्—‘अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया’ (पृष्ठ १४) नाटके विस्मरणस्य महिमानं द्योतयति। ‘यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्, आविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः’, (४.२) सुखदुःखक्रमस्यानिवार्यत्वम्। हंसपदिकागीतम्—‘अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य०’ (५.१) राज्ञो विस्मरणम्। चरित्रचित्रणे वैयक्तिकता यथा—ऋषित्रये कण्वः साधुप्रकृतिर्नियतः शकुन्तलायां पितृवन्मृदुहृदयः, मरीचो वीतरागः, दुर्वासाश्च रोषप्रकृतिः।

रसनिरूपणेऽपि महती विदग्धताऽवाप्यते। बीभत्सरसं विहाय प्रायः समेऽप्यन्ये रसाः समुपलभ्यन्तेऽत्र। शृङ्गाररसश्च सर्वानतिशेते। (क) संभोगशृङ्गारो यथा—शकुन्तलां समीक्ष्य नृपोक्तिः—अहो मधुरमासं दर्शनम् (पृष्ठ ४२), शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य। (१.१७)। शकुन्तलालावण्यवर्णनम्—इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति। (१.१८), सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। (१.२०), अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू (१.२१), चलापाङ्गां दृष्टिं स्मृशसि बहुशो वेषथुमती० (१.२४)। शकुन्तलामुपेत्य नृपोक्तिः—इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिते हृदयं मम० (३.१६), किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्० (३.१८), अपरिक्षतकोमलस्य यावत् सद्यं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य (३.२१), उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्

(७.२२), (ख) विप्रलम्भभृङ्गरो यथा—द्वितीयेऽङ्के शकुन्तलास्मरणं तच्चेष्टावर्णनं च—कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तदभावदर्शनाश्वासि० (२.१), स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने मत् प्रेरयन्त्या तया० (२.२), चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा० (२.९), अनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्० (२.१०) अभिमुखे मयि संहतमीक्षितं न विवृतो मदनो न च संवृतः (२.११), दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे तन्वी स्थिता० (२.१२) । चन्द्रादीनां तापहेतुत्वम्— तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्द्रोः० (३.३) । विरहक्षामगात्रायाः शकुन्तलाया वर्णनम्— स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं० (३.६), क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं० (३.७) । राज्ञो विरहावस्थावर्णनम्— इदमशिशिरैरन्तस्तापाद् विवर्णमणीकृतं० (३.१०) । (ग) करुणरसो यथा—शकुन्तलाप्रस्थानसमये आश्रमावस्था—यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया० (४.६), पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या० (४.९), उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः० (४.१२), यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां० (४.१४), अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे० (४.१९), शममेध्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम् (४.२१), (घ) वीररसो यथा—अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वभोग्ये० (२.१४), नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्रीं० (२.१५), का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः० (३.१), कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव० (५.२८) । (ङ) अद्भुतरसो यथा—दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः० (४.४), क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं० (४.५), शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी० (७.८), वल्मीकार्धनिमग्रमूर्तिरुरसा सन्दष्टसर्पत्वचा० (७.११), प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने० (७.१२) । (च) हास्यरसो यथा—अत्र पयोधरविस्तारयितु आत्मनो यौवनमुपालभस्व (पृ० ४९), किं मोदकखादिकायाम् (पृ० १०९), यथा कस्यापि पिण्डखजूरैरुद्वेजितस्य तित्तिण्यामभिलाषो भवेत् (पृ० १३२), त्रिशङ्कुरिवान्तरा तिष्ठ० (पृ० १४२), एष मां कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधरमिक्षुमिव त्रिभङ्गं करोति० (पृ० ४१०), बिडालगृहीतो मूषक इव निराशोऽस्मि जीविते संवृतः (पृ० ४१३) । (छ) शान्तरसो यथा—स्वर्गादधिकतरं निर्वृतिस्थानम् (पृ० ४३८), प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता० (७.१२) ।

काव्यसौन्दर्यविवेचनदृशा दृश्यते चेत्समग्रमेव शाकुन्तलं सौन्दर्यपरीतम् । (क) करुणरसव्याप्लुतत्वाच्चतुर्थोऽङ्कोऽतिशायी । तत्र चोत्कृष्टं श्लोकचतुष्टयं मन्मत्या वर्तते—यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया० (४.६), शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने० (४.१८), पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या० (४.९), अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मनः० (४.१७) । (ख) अन्तःप्रकृतेर्बाह्यप्रकृत्या समन्वयो दृश्यते । खिन्ना शकुन्तला कुमुदिनी च भर्तृवियोगेन । अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे० (४.३) । शकुन्तलावियोगेन सर्वोऽप्याश्रमो विषीदति । आश्रमस्थैः पशुपक्षिभिरपि भोजनादिकं परित्यक्तम् । पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं० (४.९), उद्गलितदर्भकवला मृग्यः० (४.१२) । (ग) बाह्यप्रकृत्याऽऽत्मीयत्वम्—अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येषु (पृ० ४५), लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः

प्रतिभाति (पृ० ५३), न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु० (२.३), क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं० (४.५), उद्गलितदर्भकवला मृग्यः० (४.१२)। (घ) प्रेमचित्रणं लावण्यवर्णनं च। मतमेतन्महाकवेर्यत् सौन्दर्यं नाहार्यं गुणमपेक्षते। अतस्तेनोच्यते— इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति० (१.१८), सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं— किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (१.२०), अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् (पृ० ३५७)। नैसर्गिकत्वादेव निर्दोषत्वं शकुन्तलालावण्यस्य। इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति० (५.१९)। पुष्पिता लतेव लावण्यमयी शकुन्तला। अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू। कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम् (१.२१)। तस्य मतमेदत् 'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति'। सुन्दरीसौन्दर्यं त्रपयैव, नान्यथा। अतो व्यादिश्यते तेन—वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्रचोभिः० (१.३१), अभिमुखे मयि संहतमीक्षितं० (२.११)। स्त्री-सौन्दर्यं सच्चारित्र्येण तपसा च। यथा—शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने० (४.१८), इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरत्मनः (कुमार० ५.२)। तपःपूतमेव प्रेम प्रसीदति प्रशस्यते च। तपःपूतैव शकुन्तला प्रियमनुविन्दति।

कालिदासस्य शैली—कालिदासो वैदर्भीरित्याः सर्वाग्रणीः कविरित्यत्र न कस्यापि विप्रतिपत्तिः। (क) तस्य शैल्यां प्रसादमाधुर्यौजसां त्रयाणामपि गुणानां समन्वयोऽवलोक्यते। प्रसादगुणो यथा—भव हृदय साभिलाषं संप्रति सन्देहनिर्णयो जातः० (१.८८), क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः० (२.१८), अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्० (३.११), अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः० (४.२२)। माधुर्यगुणो यथा—सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्० (१.२०), अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू० (१.२१), स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु० (६.१०)। ओजोगुणो यथा—तीव्राघातप्रतिहततरस्कन्धलग्नैकदन्तः० (१.३३), अनवरतधनुर्ज्या० (२.४)। (ख) तस्य भाषायामसाधारणोऽधिकारः। मनोज्ञान् भावान् मधुरैः शब्दैरभिव्यनक्ति। तद्यथा—अनाघातं पुष्पं किसलयमलूनं करुरहैः० (२.१०) अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः० (४.८), त्रिस्रोतसं वहति० (७.६)। (ग) वर्णने संक्षेपो ध्वन्यात्मकता च दृश्यते। तद्यथा—अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम् (पृ० १५३), इत्यनेन दर्शनानन्दावासेः। किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातात्० (३.१८) इत्यनेन दयिताराधनस्य वर्णनम्। (घ) वर्णनेऽनुपमं कौशलं समीक्ष्यते। स प्रत्येकं वस्तु सजीववत् प्रस्तवीति। यथा—विरहविषण्णयोर्दुष्यन्तशकुन्तलयोर्वर्णनम्। चतुर्थेऽङ्के शकुन्तलावियोगखिन्नस्याश्रमपदस्य वर्णनम्। (ङ) तस्य संलापेषु सर्वत्र संक्षेपो रम्यता चावाप्यते। (च) सोऽलंकाराणां प्रयोगेऽनुपमः पटुः। प्रायश्चत्वारिंशदलंकारास्तेन प्रयुक्ताः। (छ) उपमा कालिदासस्य। वर्णितमेतदन्यत्र। अर्थान्तरन्यासप्रयोगेऽप्यसमः पटुः। तद्यथा—सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः (१.२२), स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् (५.१२), अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (१.१६)। (ज) चतुर्विंशतिशब्दांसि प्रयुक्तानि तेन शाकुन्तले।

६. उपमा कालिदासस्य

कविताकामिनीकान्तः कालिदासः कस्य नावर्जयति चेतः सचेतसः। तस्य काव्यसौन्दर्यं प्रेक्षं-प्रेक्षं प्रशंसन्ति सहृदयाः सुधियस्तस्य कलाकौशलम्! तस्य सूक्तयः सुधासिक्ता मञ्जुर्य इव चेतोहराः सन्ति। अत उच्यते बाणभट्टेन हर्षचरिते 'निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु। प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते'। कालिदासोऽतिशेते सर्वानपि महाकवीनौपम्ये। अतः साधूच्यते—'उपमा कालिदासस्य'। एतदेवात्र विविच्यते।

का नामोपमा? कयं चैषोपकर्त्री काव्यस्य? विश्वनाथानुसारं 'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः' (सा० दर्पण १०.१४)। वस्तुद्वयस्य वैधर्म्यं विहाय साम्यमात्रं चेदुच्यते वाक्यैक्ये तर्हि सोपमा। उपमैषा सौदामिनीव विद्योतते विपुले बाङ्मये। काव्यशरीरे समादधाति महतीं मञ्जुलताम्। कालिदासस्योपमाप्रयोगेऽपूर्वं वैशारद्यम्। उपमासु न केवलं रम्यता, यथार्थता, पूर्णता, विविधता च, अपि तु सर्वत्रैव लिङ्गसाम्यमौचित्यं च। लिङ्गसाम्यस्यौचित्यस्य च समाश्रयणेन कचिदपूर्वा सम्पद्यते चारुतोपमासु। शतशः सन्त्युपमाप्रयोगस्थलानि तस्य काव्यादिषु। रघुवंशे तूपमाप्रयोगः सर्वातिशायी।

उपमाप्रयोगे चातुर्येणैव स 'दीपशिखा-कालिदासः' इति प्रसिद्धिमाप। पतिंवरा इन्दुमती दीपशिखेव व्यराजत। तद् यथा—'संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ, यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा। नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे, विवर्णभावं स स भूमिपालः'। (रघु० ६.६७)। कामदेवो दीप इवास्ते, रतिश्च कामविहीना दीपदशेव भृशं दुःखमाप। 'गत एव न ते निवर्तते, स सखा दीप इवानिलाहतः। अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम्'। (कुमार० ४.३०)।

शास्त्रीया उपमास्तावत् प्राङ् निर्दिश्यन्ते। (१) शास्त्रीया उपमाः—(क) वेदविषयकाः—मनुस्तथैव नृपाणामग्रिमोऽभवद्यथा मन्त्राणामोंकारः। 'आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव' (रघु० १.११)। सुदक्षिणा नन्दिन्या मार्गं तथैवान्वगच्छद्यथा स्मृतिः श्रुतेरर्थम्। 'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्' (रघु० २.२)। (ख) दर्शनविषयकाः—यथा बुद्धेः कारणमव्यक्तं मूलप्रकृतिर्वा तथा सरय्या नद्याः कारणं मानसं सरः। 'ब्राह्मं सरः कारणमासवाचो बुद्धेरिवव्यक्तमुदाहरन्ति' (रघु० १३.६०)। दिलीपस्य कृतिविशेषाः प्राक्तनाः संस्कारा इव फलानुमेया आसन्। 'फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव' (रघु० १.२०)। गम्भीराया नद्याः पयो निर्मलं मानसमिव वर्तते, मेघश्च छायात्मेव। 'चेतसीव प्रसन्ने, छायात्मापि' (मेघ० १.४३)। यतिर्यथेन्द्रियारातीन् बाधते तथा रघुः पारसीकान् जेतुं प्रतस्थे। 'इन्द्रियाख्यानिव रिपूस्तत्त्वज्ञानेन संयमी' (रघु० ४.६०)। (ग) यज्ञविषयकाः—नृपो दुष्यन्तः शकुन्तला भरतोऽपत्यं च त्रयमेतत् क्रमशो विधिः श्रद्धा वित्तं चेति त्रयाणां समन्वयो वर्तते। 'श्रद्धां वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम्' (शा० ७.२९)। शकुन्तलाऽनुरूपं भर्तारं गता यथा

धूमावृतलोचनस्य यजमानस्य वह्नावाहुतिः । 'दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता' (शा० अंक ४) । यज्ञस्य दक्षिणेव सुदक्षिणा दिलीपभार्याऽभूत् । 'अध्वरस्येव दक्षिणा' (रघु० १.३०) । स्वाहया युक्तोऽग्निरिव वसिष्ठोऽरुन्धत्या समेतोऽभूत् । 'स्वाहयेव हविर्भुजम्' (रघु० १.५६) । दिलीपानुगता नन्दिनी विधियुक्ता श्रद्धेव बभौ । 'श्रद्धेव साक्षाद् विधिनोपपन्ना' (रघु० २.१६) । रामादिभ्रातृचतुष्टयस्य विनीतत्वं तथैवावर्धत यथा हविषाऽग्निः । 'हविषेव हविर्भुजाम्' (रघु० १०.७९) । (घ) विद्याविषयकाः—विद्याऽभ्यासेन यथा चकास्ति तथा नन्दिनी सेवया प्रसादनीया । 'विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि' । (रघु० १.८८) । दुष्यन्तपरिणीता शकुन्तला सुशिष्यप्रदत्ता विद्येवाशोचनीयाऽभूत् । 'सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयाऽस्ति संवृता' (शा० अंक ४) । (ङ) व्याकरणविषयकाः—अपवादनियमो यथोत्सर्ग बाधते तथा शत्रुघ्नो लवणासुरं बबाधे । 'अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः' (रघु० १५.७) । अध्ययनार्थकादिङ्धातोः प्राग् अधिरुपसर्गो यथा शोभाकृद् व्यर्थश्च तथा शत्रुघ्नेन समं सेना । 'पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत्' (रघु० १५.९) । (च) राजनीतिविषयकाः—प्रभावशक्तिर्मन्त्रशक्तिरुत्साहशक्तिश्चेति त्रयं यथाऽर्थमक्षयं सूते तथा सुदक्षिणा पुत्रं रघुमसूत । 'त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम्' (रघु० ३.१३) । (छ) ज्योतिषविषयकाः—चन्द्रग्रहणानन्तरं यथा रोहिणी शशिनमुपैति तथा शकुन्तला दुष्यन्तमुपगता । 'उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्' (शा० ७.२२) ।

(२) मूर्तस्यामूर्तरूपेण—दिलीपः क्षात्रधर्म इवासीत् । 'क्षात्रो धर्म इवाश्रितः' (रघु० १.१३) । स धवलं क्षीरं यशसोपमिमीते—'शुभ्रं यशो मूर्तमिवतितृष्णः' (रघु० २.६९) । रथं मनोरथेनोपमिमीते—'स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन' (रघु० २.७२) । रामादयश्चत्वारश्चतुर्वर्ग इवाशोभन्त । 'धर्मार्थकाममोक्षाणामवतार इवाङ्गभाक्' (रघु० १०.८४) । क्वचित् निर्जीवस्य सजीवेन सहोपम्यम्—सिप्रावातः चाटुकारो जन इवास्ते । 'सिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः' (मेघ० १.३१) ।

(३) प्रकृतिसंबद्धाः—अत्र संकेतमात्रं निर्दिश्यन्त उपमाः, ता यथायथं विवेच्याः । (क) सूर्यसंबद्धाः—सूर्यमिव तेजोमयं सुतं जनय । 'तनयमचिरात् प्राचीवार्षं प्रसूय च पावनम्' (शा० ४.१९) । रामपरशुरामौ शशिदिवाकराविवाशोभेताम् । 'पार्वणौ शशिदिवाकराविव' (रघु० ११.८२) । (ख) चन्द्रसंबद्धाः—शोकविकला यक्षपत्नी विधुकलेवालक्ष्यत । 'प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः' (मेघ० २.२९) । पार्वती दिवा विधुलेखेवाम्लायत् । 'शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवां' (कुमार० ५.४८) । सन्ध्या शशिनमिव नन्दिनी श्वेतरोमाङ्कं दधे । 'सन्ध्येव शशिनं नवम्' (रघु० १.८३) । अन्याश्चन्द्रसंबद्धा उपमाः, यथा—मनुवंशे दिलीपः, सिन्धौ चन्द्र इव जज्ञे । 'इन्दुः क्षीरनिधाविव' (रघु० १.१२), सुदक्षिणादिलीपौ चित्राचन्द्रमसाविवास्ताम् । 'हिमनिर्मुक्तयोयोगे चित्राचन्द्रमसोरिव' (रघु० १.४६) । मगधाधिपः परन्तपो राजा साक्षात् चन्द्र

इवासीत् । 'कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः' । (रघु० ६.२२) । सीतावियुक्तो रामस्तुषारवर्षी चन्द्र इवारोदीत् । 'बभूवः रामः सहसा सबाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्य-चन्द्रः' । (रघु० १४.८४) । चन्द्रसंबद्धाश्चान्या उपमाः—दिलीपं चन्द्रमिवावालोकायन् जनाः । 'नेत्रैः पपुस्तृप्तिमानुप्रवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम्' । (रघु० २.७३) । रघुश्चन्द्र इव वृद्धिमाप । 'पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः' । (रघु० ३.२२) । वाल्मीकिना जानकी तापसीभ्योऽर्पिता, यथा चन्द्रकला ओषधीभ्यो दत्ता । 'निर्विष्टसारां पितृभिर्हिमांशोरन्त्यां कलां दर्श इवौषधीषु' । (रघु० १४.८०) । (ग) वृक्षादिसंबद्धाः—शकुन्तलायाः कमनीयं कलेवरं लतामिवानुचकार । 'अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू । कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्' (शा० १.२१) । वल्कलावृता शकुन्तला शैवलावृतं कमलमिव, लक्ष्म्यान्वितः सुधांशुरिवाशोभत । 'सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्' (शा० १.२०) । वृक्षादिसंबद्धाश्चान्या उपमाः—पार्वती लतेवासीत्, 'पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव' । (कुमार० ३.५४) । शकुन्तला माधवीलतेवाशुष्यत्, 'पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी' (शा० ३.७) । गर्भवती शकुन्तला शमीवाभवत् । 'अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निराग्नी शमीमिव' (शा० ४.४) । सीता लतेव भूमौ पपात । 'स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम' (रघु० १४.५४) । (घ) पुष्पसंबद्धाः—खिन्ना यक्षपत्नी साध्रे दिवसे स्थलकमलिनीव म्लानाऽभूत् । 'साध्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम्' (मेघ० २.३०), मृगः पुष्पराशिरिवास्ते, न च वध्यः । 'न खलु मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः' (शा० १.१०) । पुष्पसंबद्धाश्चान्या उपमाः—'पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं, शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः' (कुमार० ५.४) । 'न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते' (कुमार० ५.९) । रघुरतीव जनप्रियोऽभूत् । 'फलेन सहकारस्य पुष्पोदगम इव प्रजाः' (रघु० ४.९) । शकुन्तलायाः शरीरं कुसुममिवासीत् । 'वपुर्भिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां, कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण' (शा० १.१९) । शकुन्तला नवमालिकाकुसुममिवाभूत् । 'अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्' । (शा० २.८) । शकुन्तलाऽनाघ्रातं पुष्पमिवासीत् । 'अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहैः' । (शा० २.१०) । 'स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया' (शा० ७.२४) । 'अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः' (शा० ४.१२) । 'जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्' । (मेघ० २.२०) । स्थानाभावादस्या उपमाः संकेतमात्रमुपस्थाप्यन्ते । (ङ) पशु-संबद्धाः—रेवा गजशरीरे भूतिरिवास्ति । 'रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णा, भक्तिच्छेदैरिव विरचितान् भूतिमङ्गे गजस्य' (मेघ० १.११) । 'पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः, शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात्' (मेघ० २.१३) । दुष्यन्तो गज इवासीत् । 'यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः, शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः' (शा० ५.५) ।

‘अरुनुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः’ (रघु० १.७१), ‘जुगोप गां रूपधरामिवोर्वीम्’ (रघु० २.३), ‘अन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः’ (रघु० २.७)। दशरथ ऐरावत इवासीत्। ‘सुरगज इव दन्तैर्भद्रदैत्यासिधारैः’। (रघु० १०.८६)। (च) नद्यादिसंबद्धाः—प्रयागे संगमवर्णनम्। ‘क्वचित् प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तमयी यष्टिरिवानुविद्धा। अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दी-वैरेरुखचितान्तरेव ॥ क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव। अन्यत्र शुभा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा’ ॥ (रघु० १३.५४, ५६)। दिलीपः सागर इवासीत्। ‘अधृष्यश्चाभिम्यश्च यादोरलैरिवार्णवः’। (रघु० १.१६)। ‘क्षणमात्रमृषिस्तस्यौ सुसमीन इव हृदः’। (रघु० १.७३)। ‘लिपेर्यथावदग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत्’। (रघु० ३.२८)। ‘बभौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः’। (रघु० ४.३२)। ‘तमेव चतुरन्तेशं रलैरिव महार्णवाः’। (रघु० १०.८५)। (छ) पर्वतादिसंबद्धाः—‘पाण्ड्योऽयमं सार्पित-लम्बहारः..... सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः’। (रघु० ६.६०)। ‘स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना’। (रघु० १.१४)। ‘प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः’। (रघु० १.६८)। ‘अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोभद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम्’। (रघु० २.२९)। ‘शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गैः’ (मेघ० २.८)। ‘त्वत्संपर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः’। (मेघ० १.२५)। (ज) पृथ्वीसंबद्धाः—‘ऊधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः’। (रघु० २.६६)। ‘कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोत्तबीजा’। (शा० ६.२४)। (झ) द्युसंबद्धाः—‘अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रैरिव द्यौः, सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठयूतमैशम्’। (रघु० २.७५)। (ञ) वायुसंबद्धाः—रघु० ४.८, १०.८२। (ट) अग्निसंबद्धाः—रघु० ११.८१; शा० ५.१०। (ठ) मासदिनादिसंबद्धाः—रघु० ११.७, १०.८३, २.२०। (ड) वर्षादिसंबद्धाः—कु० ४.३९, ५.६१; रघु० १.३६, ४.६१; शा० ३.९, ३.२४। (ढ) खगादिसंबद्धाः—रघु० ४.६३, १४.६८।

(४) विविधविषयसंबद्धाः—(क) देवसंबद्धाः—अथैनमद्रेस्तनया शुशोच, सेनान्यमालीढमिवासुरास्रैः। (रघु० २.३७)। जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन, वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः। (रघु० २.४२)। (ख) पुरुषसंबद्धाः—तेन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्यते ते, बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः। (मेघ० १.१५)। शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः। (मेघ० १.३२)। धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन् मुखानि। (मेघ० १.५१)। अंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव। (मेघ० १.६२)। प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः। (रघु० १.३)। (ग) स्त्रीसंबद्धाः—मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्। (मेघ० १.६६)। अवाकिरन् बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः। (रघु० २.१०)। प्राप्ता शरत्रवधूरिव रूपरम्या। (ऋतु० ३.१)।

७. भारवेरर्थगौरवम्

महाकविभारविः षष्ठ्यां शताब्द्यामीसवीयाब्दस्य जनिमापेति ६३४ ईसवीये लिखितेन 'ऐहोल'-शिलालेखेन निर्विवादं निर्णयते। तथा चोदीर्यते रविकीर्तिना, 'येनायो जि नवेऽश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेशम्। स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदास-भारविकीर्तिः'। अवन्तिसुन्दरीकथामनुसृत्य निर्णयते यत् कविवरोऽयं दाक्षिणात्यः, पुलकेशिद्वितीयस्यानुजस्य विष्णुवर्धनस्य सदसः कविवर इति। भारविनाम् कविवरोऽयं गीर्वाणगिरो गगने भा रवेरिव चकास्ति। समधिगतमनेनानुपमं यशः स्वकीयेनार्थगौरवसमन्वितेन किरातार्जुनीयनामधेयेन महाकाव्येन। महाकाव्यमेतस्य गुणत्रयेण माधुर्येण प्रसादेनौजसा च परिपूर्णम्। कविवरोऽयं न केवलमासीद् व्याकरणपारङ्गतोऽपि तु नीतिशास्त्रेऽलंकारशास्त्रेऽपि महद् वैचक्षण्यं समासादयत्। कृतिरियं तस्यार्थभारभरितेति दर्श-दर्श विपश्चिद्भिः 'भारवेरर्थगौरवम्' इति सादरमुदीर्यते। महाकाव्यस्यैतस्य टीकाकृत् श्रीमल्लिनाथः काव्यमेतद् नारिकेलफलेनोपमिमीते। अभिधत्ते च—'नारिकेलफलसंमितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते। स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्'।

भारवेः कीर्तिर्महाकाव्यं किरातार्जुनीयमवलम्ब्यैव वरीवर्ति। ग्रन्थरत्नमेतदेकमेव तस्योपलभ्यते। प्रशस्तैः स्वीयैर्गुणैर्महाकाव्यमेतत् संस्कृतसाहित्ये प्रमुखं स्थानमाश्रयते। संस्कृतमहाकाव्येषु बृहत्त्रय्यामन्यतमं गण्यते। बृहत्त्रय्यामितरे स्तः—माधविरचितं शिशुपालवधं, श्रीहर्षप्रणौतं नैषधीयचरितं च। समग्रेऽपि संस्कृतसाहित्ये नैतादृशमोजोगुणसमन्वितं काव्यान्तरम्। अष्टादशात्र सर्गाः। किरातवेषधारिणा शिवेन सहाजुनस्य संगरोऽत्र वर्ण्यते। वीररसोऽत्र प्रधानः, रसाश्चाप्ये गौणाः। श्रीसमन्वितं काव्यमेतदिति संसूचनाय 'श्री' शब्देन महाकाव्यमारभते, प्रतिसर्गान्ते च 'लक्ष्मी'-शब्दं प्रयुङ्क्ते। तद्यथा—'श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीम्० (१.१), 'दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः' (१.४६)। न केवलमर्थगौरवान्वितपदप्रयोग एव निष्णातोऽयम्, अपि तु प्रकृतिवर्णने विविधालंकारप्रयोगे चित्रालंकारप्रयोगे व्याकरण-काव्यशास्त्र-नीतिशास्त्रादिपाणिडत्यप्रदर्शनेऽप्यनुपम एवायम्। शतशः सन्ति सूक्तिमुक्ताः प्रकृतिवर्णनादिवैद्यप्रतिपादिकाः। शरद्वर्णनं यथा—तुतोष पश्यन् कलमस्य सोऽधिकं, सवारिजे वारिणि रामणीयकम्। सुदुर्लभे नार्हति कोऽभिनन्दितुं, प्रकर्षलक्ष्मीमनुरूपसंगमे। (४.४)। चित्रालंकारप्रदर्शनं यथा—एकाक्षरात्मकः श्लोकः—'न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु। नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्' (१५.१४)। सर्वतोभद्रप्रयोगो यथा—'देवाकानिनि कावादे, वाहिकास्वस्वकाहि वा। काकारेभभरे काका निस्वभव्यव्यभस्वनि'। (१५.२५)। विभिन्नचतुर्थकबोधकपदप्रयोगो यथा—'विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा, विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः। विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा, विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः' (१५.५२)। जलक्रीडावर्णनं यथा—'करौ धुनाना नवपल्लवाकृती, पयस्यगाधे किल जातसंभ्रसा। सखीषु निर्वाच्यमधाष्ट्यदूषितं, प्रियाङ्गुसंश्लेषमवाप मानिनी। (८.४८)। 'विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भसि, प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः। सखीव काञ्ची पयसा घनीकृता, बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम् (८.५१)।

किं नामार्थगौरवम्? कथं चैतेदुपकरोति महाकाव्यस्य? कथं च गुणेनैतेनानुत्तमं यशो भारवेः? इत्येतदत्र विवच्यते। अर्थगौरवं नाम भात्रगाम्भीर्यं सद्भावभूषाभूषितत्वं च। भावमूलक-त्वाद् महाकाव्यस्य, भावभूषया च काव्यगौरवस्य सम्भिवृद्धेरर्थगौरवं महदुपकारि महाकाव्यस्य।

पदे-पदे समुपलभ्यन्ते महाकाव्येऽस्मिन् अर्थभारभरिता विविधविषयकाः सूक्तयः । अनुमीयते चैतेन भारवेवैदुष्यम् । शतशोऽत्र सूक्तिमुक्ताः समुपलभ्यन्ते । तासां दिङ्मात्रमिह प्रस्तूयते ।

अर्थगौरवस्य महत्त्वमुदीरयता भारविनैव सम्यक् प्रतिपाद्यते यत्तस्य काव्ये सर्वत्र स्फुटताऽर्थगौरवं भावसांकर्याभावः सामर्थ्यं च प्राप्स्यते । यथोच्यते—स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् । रचिता पृथगर्थता गिरां, न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् । (किराता० २.२७) । सा चैतादृशी भावगाम्भीर्यभरिता भारती सततकृतपुण्यकर्मभिरेव प्रवर्तते, नान्यथा । 'प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती' (कि० १४.३) । किं नाम वाग्मित्वम्, कथं च सभ्येषु तद् विशेषत आद्रियते, इति विवेचयता तेन साधु प्रतिपाद्यते यन्मनोगतस्य गभीरस्यार्थस्य परिष्कृतया प्राञ्जलया च वाचा प्रकाशनेन वाग्मित्वं समासाद्यते । 'भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां, मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये । नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा गभीरमर्थं कतिचित्प्रकाशताम्' । (कि० १४.४) । भाषणेऽपि च केचनार्थगौरवमाद्रियन्ते, केचन भाषासौष्टवमपरे माधुर्यमन्ये भावप्रकाशनशैलीम्, इति महति विरोधे वर्तमाने सर्वमनःप्रसादिनी गीः सुदुर्लभा । अतस्ते-नोक्तम्—'सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः' (१४.५) । विदुषां कीदृशः स्वभाव इति विवेचयन्नाह विद्वांसो गुणग्रहणे धृतधियो भवन्ति । 'गुणगृह्या वचने विपश्चितः' (२.५) । विद्वांसो हि परेङ्गितज्ञा भवन्ति । इङ्गितज्ञश्च न विषीदति काले । 'न हीङ्गित-ज्ञोऽवसरेऽवसीदति' (४.२०) ।

प्रेम्णो गौरवं प्रतिपादयता तेनोच्यते—'वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि' (८.३७) । स्नेहप्राचुर्यमेव गुणानां निधानं, न वस्तुसौन्दर्यमात्रम् । प्रेमी सदैव प्रियस्यानिष्टवारणाय यतते चिन्तयति च । तदाह—'प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि' (९.७०) । मित्रलाभश्च लाभोऽपूर्वः तदाद्ये—'मित्रलाभमनु लाभसम्पदः' (१३.५२) । विनयः सुशीलता च किमित्युरीकरणीयेति प्रतिपादयन्नाह विनयेनैव योगिनो मुक्तिं समधिगच्छन्ति । 'योगिनां परिणमन् विमुक्तये, केन नास्तु विनयः सतां प्रियः' (१३.४४), शीलयन्ति यतयः सुशीलताम् (१३.४३) । मनोविज्ञानसम्बन्धि सूक्ष्मनिरीक्षणं कुर्वता तेनोच्यते चेतोभावा एव हितैषिणं रिपुं वा प्रकटयन्ति । 'विमलं कलुषीभवच्च चेतः, कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा' (१३.६) । अविज्ञातमपि प्रियमिष्टं वा प्रेक्ष्य जनस्य हृदयं प्रसीदति । 'अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः' (११.८) ।

भौतिकविषयाणां स्वरूपविचारे साधु तेन प्रतिपाद्यते यद् विषयाः परिणामे दुःखदाः । 'आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः' (११.१२) । अतएव कामानां हेयत्वं प्रतिपादयति । तेषां स्वरूपं च विवृणोति । 'श्रद्धेया विप्रलब्धारः, प्रिया विप्रियकारिणः । सदुस्त्यजास्त्यजन्तोऽपि कामाः कष्ट हि शत्रवः' (११.३५) । भोगा भुजङ्गफणसदृशाः, भोगप्रवृत्तस्य च विपदवाप्तिः सुनिश्चिता । 'भोगान् भोगानिवाहेयान्, अध्यास्यापन्न दुर्लभा' (११.२३) । अतो विषयान् विहाय गुणार्जने मनो निधेयम् । 'सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्' (११.११) । गुणैरेव गौरवं प्राप्यते । 'गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः' (१२.१०) । गुणैरेव प्रियत्वं प्राप्यते, न तु परिचयमात्रेण । 'गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः' (४.२५) । गुणैरेव सर्वं जगद् वशीकर्तुं पार्यते । 'कमिवेशते रमयितुं न गुणाः' (६.२४) ।

स्वाभिमानस्य महत्त्वं प्रतिपादयता साध्वभिधीयते तेन यत्स्वाभिमानरहितस्तृणवदगण्यः । 'जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः' (११.५९) । नहि तेजस्विनं कृशानुवद् भान्तं कश्चिदवज्ञातुमर्हति । 'ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मानां जनः' (२.२०) । पुरुषः स एव यो मानेन जीवति । 'पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानात्र हीयते' (११.६१) । मनस्विना यदेवेऽप्यते तदेवाधिगम्यते । 'किमिवास्ति यन्न सुकरं मनस्विभिः' (१२.६) । नीतिविषयकान्यनेकानि

सुभाषितान्युपलभ्यन्ते । तान्यतिसूक्ष्मतयोल्लिख्यन्ते । तानि च यथायथं विवेक्तव्यानि । 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' (१.४) । सद्भिरेव मैत्रीं विरोधं च कुर्वीत, नासद्भिः । 'समुन्नयन् भूतिमनार्य-संगमाद्, वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः' (१.८) । न बलीयसा युध्येत । 'अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता' (१.२३) । अवन्ध्यकोपस्योदारसत्त्वस्यैव च सर्वत्रादारो भवति । 'अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां, भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः । अमर्षसूत्रेण जनस्य जन्तुना, न जातहादेन न विद्विषादरः ।' (१.३३) । सदा विचार्यैव कर्मणि प्रवर्तिव्यम्, न सहसा कृतिमनुतिष्ठेत् । 'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् । वृणुते हि विमृश्यकारिणं, गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः' (२.३०) ।

एवं राजनीतिकविषयका बहवोऽत्र सूक्तयः समुपलभ्यन्ते । शठे शाठ्यमेवाचरेत् । 'व्रजन्ति ते मूढाधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः' (१.३०) । युद्धे जयश्रीरुत्कर्षशालिनमेव श्रयते । 'प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः' (३.१७) । शत्रोरुत्सादनं परमं कर्तव्यम् । 'परमं लाभमरातिभङ्गमाहुः' (१.३.१२) । नोत्कृष्टेन सह विग्रहो नयसंमतः । 'प्रार्थनाऽधिकबले विपत्फला' (१.३.६१) । विक्रमाजितसत्त्वस्य न कोऽपि दोषः । 'न दूषितः शक्तिमतां स्वयंग्रहः' (१.४.२०) । नीतिमुत्सृजतो नृपस्य न प्रजा प्रसीदति । 'नयहीनादपरज्यते जनः' (२.४९) । नृपस्यामात्यानां च सांमनस्यमेव श्रेयसे भवति । 'सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः' (१.५) । राज्ञां कृते शममार्गो न शोभनः । 'व्रजन्ति शत्रून्वधूय निःस्पृहाः, शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः' (१-४२) ।

कानिचिदन्यानि हृद्यानि सूक्तानि प्रस्तूयन्तेऽत्र तानि यथायथं विवेच्यानि । स्वपौरुषं परममालम्बनम् । 'विनिपातनिवर्तनक्षमं, मतमालम्बनमात्मपौरुषम्' (२.१३) । महीयांसो न परकृपाजीविनः । 'लघयन् खलु तेजसा जगत्र महानिच्छति भूतिमन्यतः' (२.१८) । मानिनं श्रीः स्वयमनुगच्छति । 'अभिमानधनस्य गत्वैरसुभिः स्थास्तु यशश्चिचोषतः । अचिरांशुविलासचञ्चला, ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम्' (२.१९) । महान् नान्यसमुन्नतिं सहते । 'प्रकृतिः खलु सा महीयसः, सहते नान्यसमुन्नतिं यया' (२.२१) । सद्भावाविर्भावाय क्रोधोऽपनेयः । 'अविभिद्य निशाकृतं तमः, प्रभया नांशुमताऽप्युदीयते' (२.३६) । अजितेन्द्रियैः श्रियो न रक्षितुं शक्यन्ते । 'शरदभ्रचला-श्चलेन्द्रियैरसुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रियः' (२.३९) । दुर्जनसंगति सदैव दोषाय । 'असाधुयोगा हि जयान्तरायाः, प्रमाथिनीनां विपदां पदानि' (३.१४) । खलाः साधुष्वपि दोषदर्शिनः । 'मात्सर्यरागोपहतात्मनां हि, स्वखलन्ति साधुष्वपि मानसानि' (३.५३) । सत्यवसरे भाषणं शोभते । 'मुखरताऽवसरे हि विराजते' (५.१६) । स्वभावसुन्दरं वस्तु न कृत्रिमतामपेक्षते । 'न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्' (४.२३) । सविधौव सुखावाप्तिः । 'श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायैः' (५.४९) । मित्रवियोगो दुःसहः । 'संधत्ते भृशमरतिं हि सद्वियोगः' (५.५१) । मनस्विनो न खिद्यन्ते । 'किमिवावसादकरमात्मवताम्' (६.१९) सुन्दरं वस्तु विकृतमपि शोभते । 'रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति' (७.५) । लक्ष्मीः परोपकारार्थमेव भवति । 'सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्' (७.२८) । सर्वोऽपि निर्बाधं वस्तुकामः । 'वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः' (९.१६) । कामः सदा वामः । 'वाम एव सुरतेष्वपि कामः' (९.४९) । भवति योग्येषु पक्षपातः । 'भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः' (३.१२) । न मानिनो धनवन्तः । 'न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः' (१४.१३) । न गजा गोमायुसखाः । 'भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः' (१४.२२) । लोके गुणार्जनं दुष्करम् । 'सुलभा रम्यता लोके, दुर्लभं हि गुणार्जनम्' (११.११)

एवं प्रतिपदमर्थगौरवमुद्गीक्ष्यैव 'भारवेरर्थगौरवम्' इति सहर्षमुद्घोष्यते ।

८. दण्डिनः पदलालित्यम्

महाकवेर्दण्डिनो जनिकालविषये सन्ति बहवो विप्रतिपत्तयः। समासतः पक्षद्वयं मुख्यत्वेनाङ्गीक्रियते। केचनेसवीयाब्दस्य षष्ठशताब्द्या अन्तिमे चरणेऽस्य जनिमुरीकुर्वन्त्यन्ये च सप्तमशताब्द्या उत्तरार्धे। राजशेखरेण कविरसौ प्रबन्धत्रयस्य प्रणेतेति प्रतिपाद्यते। विषयेऽस्मिन्नपि प्रचुरो विवादः। काव्यादर्शो दशकुमारचरितं चेति ग्रन्थद्वयं तु सर्वैरेव स्वीक्रियते दण्डिनः कृतित्वेन। अवन्तिसुन्दरीकथेति खण्डश उपलब्धा कृतिस्तृतीयेति मन्यते मनीषिभिः कैश्चित्।

दशकुमारचरितमाश्रित्यैवास्य महती महनीयतेति नात्र विप्रतिपत्तिर्विदुषाम्। गद्यकाव्यस्यैतस्य गौरवं पदलालित्यं च प्रेक्षं प्रेक्षं प्रेक्षावतां प्राप्यन्ते प्रभूतानि प्रचुरप्रशस्तिपूर्णानि पद्यानि। 'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः'। केचन वाल्मीकेर्व्यासस्य चानन्तरं दण्डिनमेव महाकवित्वेनाकलयन्ति। 'जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्। कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि'। मथुराविजयमहाकाव्यस्य रचयित्री गङ्गादेवी (१३८० ई०) तु दण्डिनो वाचं सरस्वत्या मणिदर्पणमेव मनुते। 'आचार्य-दण्डिनो वाचामाचान्तामृतसम्पदाम्। विकासो वेधसः पत्न्या विलासमणिदर्पणम्'।

किं नाम पदलालित्यम्? कथं चैतेन काव्यस्य महत्त्वमभिवर्धते? सुप्तिङन्तं पदमिति सुबन्तं तिङन्तं च पदमित्यभिधीयते। ललितस्य भावो लालित्यं माधुर्यमिति। यत्र पदेषु वाक्येषु शब्दसंघटनायां वा माधुर्यं श्रुतिसुखदत्तं वा समुपलभ्यते, तत्र पदलालित्यमिति मन्यते। पदलालित्यं शब्दसौष्टवं चावर्जयति सचेतसां चेतांसीति गुणोऽयं गरिमाणं तनुते काव्यस्य। दशकुमारचरिते दृश्यते गुणस्यैतस्य गौरवम्। तच्चेह समासतो व्याचिख्यासितम्।

मूढीकारसभारभरितेव भारती दण्डिन आचार्यस्य सुधीभिरास्वादनीयं समीक्षणीयं चैतस्या माधुर्यम्। राजहंसस्येव राज्ञो राजहंसस्य सुषमां समवलोकयन्तु सन्तः। 'अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासंभारभासुरभूसुरनिकरः, राजहंसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव' (पूर्वपीठिका, उच्छ्वास १)। राजहंसस्य महिषी वसुमती ललनाकुलललामभूताऽभूत्। 'तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावती कुलशेखरमणी रमणी बभूव' (पू० उ० १)। मालवेश्वरस्य प्रस्थानवर्णनं कुर्वताऽभिधीयते तेन— 'मालवनाथोऽप्यनेकानेकपयूथसनाथो विग्रहः सविग्रह इव साग्रहोऽभिमुखीभूय भूयो निर्जगाम' (पू० उ० १)। राजहंसश्च मालवराजचमूं स्वसैन्यसहितोऽवारुणत्। 'राजहंसस्तु प्रशस्तवीतदैत्यसैन्यसमेतस्तीव्रगत्या निर्गत्याधिकरुषं द्विषं रुरोध' (पू० उ० १)

विजयार्थं प्रस्थातुकामानां कुमारानां यमकालंकारालंकृतं वर्णनमदो दण्डिनो वाग्वैभवमेवाविर्भावयति। 'कुमारा माराभिरामा रामाद्यपौरुषा रुषा भस्मीकृतारयो रयोपहसितसमीरणा रणाभियानेन यानेनाभ्युदयाशंसं राजानमकार्षुः।' (पू० उ० २)। ऐन्द्रजालिककृतेन्द्रजालप्रदर्शनरूपेण

फणिनां वर्णनमेतत्—‘तदनु विषमं विषमुल्बणं वमन्तः फणालंकरणा रत्नराजिनीराजितराज-
मन्दिराभोगा भोगिनो भयं जनयन्तो निश्चेरुः’ (पू० उ० १)

आस्तरणमधिशयानाया राजकन्याया वर्णनमेतद् दण्डिनः सूक्ष्मेक्षकयेक्षणं वर्णनवैदग्ध्यं
चाविष्करोति। ‘अवगाह्य कन्यान्तःपुरं प्रज्वलत्सु मणिप्रदीपेषु.....कुसुमलवच्छुरितपर्यन्ते
पर्यंकतले.....ईषद्विवृतमधुरगुल्मसंधि, आभुग्नश्रीणिमण्डलम्, अतिश्लिष्टचीनांशुकान्तरीयम्,
अनतिवलिततनुतरोदरम्, अर्धलक्ष्याधरकर्णपाशनिभृतकुण्डलम्, आमीलितलोचनेन्दीवरम्,
अविभ्रान्तभ्रूपताकम्.....चिरविलसनखेदनिश्चलां शरदम्भोधरोत्सङ्गशायिनीमिव सौदामिनीं
राजकन्यामपश्यत्।’ (उत्तर० उ० २)

राज्ञो धर्मवर्धनस्य दुहितरमुपवर्णयति। ‘तस्य दुहिता प्रत्यादेश इव श्रियः, प्राणा इव
कुसुमधन्वनः, सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका, नवमालिका नाम कन्यका।’ (उ० उ० ५)।
गिरिवरं च वर्णयन्नाह—‘अहो रमणीयोऽयं पर्वतनितम्बभागः, कान्ततरेयं गन्धपाषाणवत्युपत्यका,
शिशिरमिदमिन्दीवरारविन्दमकरन्दबिन्दु चन्द्रकोत्तरं गोत्रवारि, रम्योऽयमनेकवर्ण-
कुसुममञ्जरीभरस्तरुवनाभोगः।’

उत्तरपीठिकायां समग्रः सप्तमोच्छ्वास ओष्ठ्यवर्णरहितः। एतादृशं निबन्धनमपूर्वमदृष्टचरं
च विशालेऽपि विश्वावाङ्मये। ओष्ठ्यवर्णपरिहारेऽपि न परिहीयतेऽत्र शब्दसौष्टवं पदलालित्यं
च। यथा—‘आर्य, कदर्यस्यास्य कदर्थनान्न कदाचिन्निद्रायाति नेत्रे।’ ‘सखे, सैषा सज्जनाचरिता
सरणिः, यदणीयसि कारणेऽनणीयानादरः संदृश्यते।’ ‘असत्येन नास्यास्यं संसृज्यते।’ ‘चिरं
चरितार्था दीक्षा।’ ‘न तस्य शक्यं शक्तेरियत्ताज्ञानम्।’ ‘दिष्ट्या दृष्टेष्टसिद्धिः। इह जगति हि
न निरीहदेहिनं श्रियः संश्रयन्ते। श्रेयांसि च सकलान्यनलसानां हस्ते संनिहितानि।’ ‘असिद्धिरेषा
सिद्धिः, यदसन्निधिरिहार्याणाम्। कष्टा चेयं निःसङ्गता, या निरागसं दासजनं त्याजयति। न च
निषेधनीया गरीयसां गिरः।’ ‘तच्छरीरं छिद्रे निधाय नीरान्निरयासिषम्।’ ‘दृश्यतां शक्तिरार्षी,
यत्तस्य यतेरजेयस्येन्द्रियाणां संस्कारेण नीरजसा नीरजसांनिध्यशालिनि सहर्षालिनि सरसि
सरसिजदलसंनिकाशच्छायस्याधिकतरदर्शनीयस्याकारान्तरस्य सिद्धिरासीत्।’ ‘बहुश्रुते विश्रुते
विकचराजीवसदृशं दृशं चिक्षेप देवो राजवाहनः।’ (उत्तर० उ० ७)

‘न मां स्निग्धं पश्यति, न स्मितपूर्वं भाषते, न रहस्यानि विवृणोति, न हस्ते स्पृशति,
न व्यसनेष्वनुकम्पते, नोत्सवेष्वनुगृह्णाति.....’। मृगयालाभांश्च निर्दिशति। शाकुन्तले द्वितीयाङ्के
वर्णितेन मृगयालाभेन साम्यमेतदभजते। ‘यथा मृगया ह्यौपकारिकी, न तथान्यत्। मेदोऽपकर्षादङ्गानां
स्थैर्यकार्कश्यातिलाघवादीनि, शीतोष्णवातवर्षक्षुत्पिपासासहत्वम्, सत्त्वानामवस्थान्तरेषु
चित्तचेष्टितज्ञानम्।’ (उ० उ० ८)।

एवं संलक्ष्यते दण्डिनः कृतौ शब्दयोजनसौष्ठवमनुप्रासमाधुर्यं यमकयोजनं वर्णनवैशद्यमोष्ठ-
वर्णपरिहाराश्चित्तं रम्यं वर्णनं युक्तिप्रत्युक्तिप्रशस्तं पदे पदे पदलालित्यम्। सर्वमदस्तस्य कृतौ
कमनीयतामादधाति।

९. माघे सन्ति त्रयो गुणाः

माघस्य कवित्वम्—महाकविर्माघः सुरगवी-काव्याकाशे विद्योतमानं स्वप्रभानिरस्तान्यतेजःप्रसरम् अनुपमं नक्षत्रम्। तस्यापूर्वा कान्तिः समग्रमपि वाङ्मयं रोचयतितमाम्। तस्य विविधशास्त्रावगाहिनी सूक्ष्मेक्षिका प्रतिभा सुसूक्ष्मपि तथ्यम् आत्मसात्कृत्वा पुरः स्फुरदिव प्रस्तौति। कविरयं न केवलं काव्यशास्त्रस्यैव पारदृष्टा, अपि तु व्याकरणशास्त्रस्य, राजनीतेः, अर्थशास्त्रस्य, धर्मशास्त्रस्य, कामशास्त्रस्य, दर्शनानाम्, ज्योतिषस्य, संगीतस्य, पाकशास्त्रस्य, हस्तिविद्यायाः, अश्वशास्त्रस्य, पुराणीदीनां च सारविदनुपमो मनीषी। अस्य चमत्कृतिकरं पाण्डित्यं प्रेक्षं प्रेक्षं प्रेक्षावन्तोऽस्य कवित्वं प्रशंसन्ति।

माघस्य गौरवम्—केचन माघस्य कवित्वं तथाऽऽह्लादकरं मन्यन्ते यत्ते तदर्थं स्वजीवनसमर्पणमपि सुन्दरं मन्यन्ते। अतएव साधूच्यते—‘मेघे माघे गतं वयः’ अर्थात् मेघदूतस्य शिशुपालवधस्य चानुशीलने आयुर्व्यतीतम्। काव्येऽस्मिन् तस्य विशालं शब्दकोशमुदवीक्ष्य केनापि निगद्यते—‘नवसर्गागते माघे नवशब्दो न विद्यते’ अर्थात् शिशुपालवधस्य नवसर्गाणां समाप्तौ न नवीनः शब्दोऽवशिष्यते। तेन नवसर्गेषु तथा नवनवाः शब्दाः प्रयुक्ताः, यथा तत्र शब्दकोश-राशिरुपलभ्यते। तस्य काव्ये प्रतिपदं पदलालित्यं माधुर्यं च प्रेक्ष्य विपश्चिद्भिरुदाह्रियते यत्—‘काव्येषु माघः’ इति। अनर्घराघवनाटककृतो मुरारेः पाण्डित्यपरिपूर्णं नाटकं प्रेक्ष्य केनाप्यभिधीयते यद् मुरारिर्जिज्ञासितश्चेद् माघे मन आधेयम्। ‘मुरादिपदचिन्ता चेत् तदा माघे रतिं कुरु’। भारविं सर्वतोभावेन भावावल्याऽतिशयानं माघं प्रेक्ष्य केनापि निगद्यते—‘तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः’।

माघस्य कृतित्वम्—कवेरेतस्य गौरवाधायकं ग्रन्थरत्नम् एकमेव ‘शिशुपालवध’-नामकम् उपलभ्यते। अस्मिन् महाकाव्ये विंशतिः सर्गाः, १६४५ श्लोकाश्च विद्यन्ते। १५ सर्गे क्षेपंकाः श्लोकाः ३४, ग्रन्थान्ते च कविवंशवर्णनश्लोकाः ५, तेषामपि समाहारे श्लोकसंख्या १६८४ भवति।

माघस्य वैशिष्ट्यम्—विपश्चिद्भिः महाकवेः कालिदासस्य कृतिषु उपमानां प्राधान्यम्, भारवेः कृतौ किरातार्जुनीये अर्थगौरवस्य वैशिष्ट्यम्, दण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते पदलालित्यम्, माघस्य च कृतौ शिशुपालवधे त्रयाणामपि पूर्वोक्तानां गुणानां समन्वयं समीक्ष्य साह्लादम् उद्घोष्यते यद्—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।

दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

एतदत्रावधेयं यद् माघो यद्यपि त्रयाणामपि गुणानां स्वकाव्ये समाहारं विधत्ते, तत्र तत्र च वैशिष्ट्यं सौन्दर्यं माधुर्यं चापि धत्ते, तथापि नोपमाप्रयोगे स कालिदासम् अतिशेते, अर्थगौरवे च भारविम्। पदलालित्ये नूनं स दण्डिनम् अतिशेते। तस्य पदमाधुर्यं सर्वातिशायि। माघः त्रयाणामपि गुणानां संकलने नितरां साफल्यम् अवापेत्येव तस्य महत्त्वम्। तस्य च तादृशं प्रावीण्यं यथा नानाविधवर्णने तस्याप्रतिहता प्रतिभा।

माघस्य शैली—महाकवेर्माघस्य भावपक्षापेक्षया कलापक्षः प्रशस्यतरः। यद्यपि भावपक्षस्यापि मनोज्ञत्वं माधुर्यं हृद्यत्वं च पदे पदेऽवलोक्यते, तथापि नात्र कस्यापि सुधियो

विप्रतिपत्तिः यन्माघः कलापक्षाश्रयणे कवीन् अन्यान् अतिशेते। क्वचित् अलंकारप्रयोगाः, विशेषतश्चित्रालंकारप्रयोगाः, क्वचिद् व्याकरण-नैपुण्य-प्रदर्शनम्, क्वचिद् छन्दोरचना-दक्षतोपयोगः, क्वचित् यमकाद्यलंकाराणां प्रयोगबाहुल्यम्, क्वचित् कोमल-कान्त-पदावल्याः संधानम्, क्वचित् शास्त्रीय-पाठव-प्रदर्शनम्, तस्य कलात्मिक्या रुचेः परिचायिकानि सन्ति। महाकविभारविस्तस्य आदर्शरूपोऽभूत्। तस्य सरणिमनुसृत्य सोऽपि कलात्मक-पाण्डित्य-प्रदर्शने कृतमतिरभूत्। भारवेः स्वोत्कर्षं साधयितुं स तदीयां सरणिम् अनुसृत्य तत्रोत्कर्षम् अवाप। कलापक्षाश्रयणे स न केवलं भारविमेव, अपि तु महाकवि भट्टिमपि अतिक्रामति।

माघस्योपमा-वैशिष्ट्यम्—माघे सुरुचिपूर्णाः शतश उपमाः समुपलभ्यन्ते। तत्र क्वचित् शास्त्रीयं ज्ञानम्, क्वचित् काव्यगौरवम्, क्वचिद् नीतिशास्त्रतत्त्वम्, क्वचिच्च विविधविद्याविशारदत्वं तस्य गरिमाणं प्रथयति। संगीतशास्त्रस्य काव्यशास्त्रस्य च महत्त्वं वैचित्र्यं चोपमया प्रकटयति यद् वाङ्मये कतिपये एव वर्णाः सन्ति, संगीतशास्त्रे च सप्त स्वराः, परं तेषामुपादानेन कथमिव वैचित्र्यजनकं शास्त्रम् उदेति।

वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव।

अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता॥

शिशु० २.७२

भाग्यपुरुषकारयोर्द्वयोरपि परस्परापेक्षित्वम् अनिवार्यत्वेनाङ्गीकरणं च तथैवावश्यकं यथा सत्कवये शब्दार्थयोर्द्वयोरपि संग्रहः। उपमया साध्विदं विशदयति सः।

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।

शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥

शि० २.८६

उपमाप्रयोगे काव्यशास्त्रीयं ज्ञानं संपुष्णता तेनोच्यते यद् यथा संचारिभावाः स्थायिभावं पोषयन्ति, तथैव विजिगीषुं नृपमन्ये सहायकाः।

स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः संचारिणो यथा।

रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः॥

शि० २.८७

नीतिशास्त्रविदग्धतां विशदयता तेनोच्यते यद् यथा स्वक्षेमकामेन वृद्धिं प्राप्नुवन् रोगो नोपेक्ष्यः, तथैव एधमानोऽरातिरपि नोपेक्षामर्हति।

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।

समौ हि शिष्टैराम्नातौ वत्स्यन्तावामयः स च॥

शि० २.१०

स्वकवित्वस्य कल्पनामनोज्ञत्वस्य च संकलनं विदग्धता तेनोच्यते यद् यथा स्वल्पवयस्का बाला मातरम् अन्वेति, तथैव प्रातःकालिकी सन्ध्या जनिम् अनुगच्छति।

अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती

रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव॥

शि० ११.४०

उपमा-प्रयोगे शास्त्रीयस्य पाण्डित्यस्यापि अपूर्वः समन्वयो दृश्यते। सांख्यदर्शनानुसारं पुरुष उदासीनोऽकर्ता च, परं बुद्धिकृतकर्मणां फलभाग् भवति, तथैव साक्षिमात्रोऽपि कृष्णः सेनाकृतविजयस्य फलभोक्ता भविष्यति।

विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।

फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि॥

शि० २.५९

उपमाप्रयोगे मनोज्ञायाः कल्पनाया अपि सदुपयोगः प्रशस्यः। कृष्णं दिदृक्षमाणायाः कस्याश्चिद् रमण्या गवाक्षगतं वदनकमलम् उदयाद्रिकन्दरास्थितसुधांशुमण्डलमिव व्यराजत।

अधिरुक्ममन्दिरगवाक्षमुल्लसत् सुदृशो रराज मुरजिददिदृक्षया।

वदनारविन्दमुदयाद्रिकन्दराविवरोदरस्थितमिवेन्दुमण्डलम्॥

शि० १३.३५

नारदश्रीकृष्णयोः सितासिते कान्ती तथैवारोचतां यथा रात्रौ पत्रान्तरगोचराः सुधांशोर्मरीचयः।

रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषाम् ऋषित्विषः संवलित विरेजिरे।

चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः॥

शि० १.२१

माघस्यार्थगौरवम्—माघेऽर्थगौरवान्वितानां श्लोकानां महती परम्परा। यद्यप्यर्थगौरवं पदे पदे प्रेक्ष्यते, तथापि द्वितीयः सर्गः सर्वातिशायी। तत्र प्रतिपदम् अर्थगौरवं दृग्गोचरताम् उपयाति। कतिपये एव श्लोका उदाहरणार्थम् अत्र प्रस्तूयन्ते। अत्रापि तस्य विविधशास्त्रज्ञता, कल्पनाकाम्यत्वम्, भावोत्कर्षः, सूक्ष्मेक्षणदक्षता, नीतिज्ञता, व्यवहारपाटवम्, लोकाराधनक्षमत्वं च समीक्ष्यते। तस्य कतिपयानि हृद्यानि पद्यानि सुभाषितरूपेण प्रयुज्यन्ते। कृष्ण एव रक्षोनिकरं विनाशयितुं क्षमो यथा भास्करस्तमोनिचयम्।

ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः, क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः। शि० १.३८

मनस्विता जीवनोन्नयिका। मानहीनस्य जीवनं तृणमिव तुच्छम्। अनेकशो मनस्वितायाः स्वाभिमानस्य च गुणगौरवं वर्ण्यते कविना।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानम् अधिरोहति।

स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वरं रजः॥

शि० २.४६

सदाभिमानैकधना हि मानिनः।

शि० १.६७

स्वीयं दर्शनशास्त्रवैदग्ध्यं प्रकटयता तेन दर्शनिकभावानुबद्धा बहवः श्लोका उपन्यस्ताः।
तद्यथा—

सतीव योषित् प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।

शि० १.७२

श्रीकृष्णवर्णने सांख्योक्तपुरुषवर्णनं तेन प्रस्तूयते यद्—

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथंचन ।

बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग् विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ॥

शि० १.३३

रामणीयकस्य लक्षणं तस्य बुद्धिवैशारद्यं सूचयति—

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः । शि० ४.१७

अर्थगौरववन्तोऽन्ये केचन श्लोका दिङ्मात्रम् उदाह्रियन्ते । तद्यथा—सर्वेषां स्वार्थसिद्धिरेवाभीष्टा । ‘सर्वः स्वार्थं समीहते’ (२.६५) । सुकविः स्वीये काव्ये गुणत्रयमेवाश्रयते । ‘नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः’ (२.८३) । सामसहितैव दण्डनीतिः साधीयसी । ‘मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते’ (२.८५) । सत्काव्येऽर्थगौरवाधानम् अनिवार्यम् । ‘अनुज्झितार्थसंबन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः’ (२.७३) । महान्तो महद्भिरेव विवदन्ते नाधमैः । ‘अनुहुंकुस्ते घनध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केसरी’ (१६.२५) । अरातिकृता तिरस्क्रिया दुःसहा । ‘परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः’ (६.४५) । कट्वपि भेषजं गदहारि । ‘अरुच्यमपि रोगघ्नं निसर्गादेव भेषजम्’ (१९.८९) । सन्तः सतामेव गृहाणि अनुगृह्णन्ति । ‘गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः’ (१.१४) । कवयो महीपाश्चार्थमेव चिन्तयन्ति । ‘कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम्’ (११.६) । स्त्रीणां रोदनं बलम् । ‘रुदितमुदितमस्त्रं योषितां विग्रहेषु’ (११.३५) । दैवदुर्विपाको दुर्निवारः । ‘हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः’ (११.६४) ।

माघस्य पदलालित्यम्—माघे पदलालित्यं पदे पदे प्राप्यते । पदसौकुमार्यम्, वर्ण-माधुर्यम्, भाषायाः संगीतात्मकत्वम्, भावानुसारि भाषाश्रयणम्, भाषायाम् आरोहावरोहक्रमश्च पदलालित्यं समेधयति । भाषायाः संगीतात्मकत्वं यथा—

मधुरया मधुबोधितमाधवी-मधुसमृद्धितसमेधितमेधया ।

मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद-ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥ (६.२०)

यमकालंकारलंकृतभाषाश्रयणेन माधुर्यम् । यथा—

नवपलाशपलाशवनं पुरः, स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।

मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्, स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥ (६.२)

भावानुसारि भाषाश्रयणेन सौकुमार्यम् । यथा—

वदनसौरभलोभपरिभ्रमद् - भ्रमरसंभ्रमसंभृतशोभया ।

चलितया विदधे कलमेखला-कलकलोऽलकलोलदृशाऽन्यया ॥ (६.१४)

अन्ये च पदलालित्यवन्तः श्लोका दिङ्मात्रम् उदाह्रियन्ते । यथा—

‘अचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम्’ (१.१६), ‘न रौहिणेयो न च रोहिणीशः’ (३.६०), ‘प्रभावनीके तनवै जयन्तीः.....प्रभावनी केतनवैजयन्तीः’ (६.६९) ‘विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृङ्गमालाः, सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वातः’ (११.१९) ।

एवं गुणत्रयेऽपि माघस्य वैशारद्यम् ।

१०. बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्

निखिलेऽपि संस्कृतवाङ्मये कविकुलगुरुः कालिदासो यथा रचनाचातुर्येण कल्पनावैचित्र्येण च पद्यबन्धे गरिष्ठो वरिष्ठश्च, तथैव गद्यकाव्यनिबन्धने कविवरो बाणोऽतिशेतेऽन्यान् सर्वानप्यभिरूपान्। पद्यरचनायां केषुचिदेव पद्येषूक्तिवैचित्र्येण भावगाम्भीर्येण कृतिकौशलेन वाऽपूर्वा छटा संजायतेऽखिलेऽपि काव्ये। परं नैतावतैव संभाव्यते गद्यकाव्येऽपि तादृश्यनुपमा कान्तिः। गद्यकाव्ये तु भूयान् श्रमोऽपेक्ष्यते। पदे पदे वाग्वैचित्र्यमर्थगाम्भीर्यं भाववैभवं कल्पनाकाम्यत्वं च दुर्निवारम्। अतः साधूच्यते—‘गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति’। गद्यकाव्यबन्धे दण्डी सुबन्धुश्चेति द्वावेवौ बाणेन समं सनामग्राहमुल्लेख्यौ। परं बाणो गरिष्ठो वरिष्ठश्चेतेषां भूयिष्ठया भावाभिव्यक्त्या, साधिष्ठया शैल्या, म्रदिष्ठया मनोहरतया, श्रेष्ठया साधुतया, प्रेष्ठया पदपरिष्कृत्या च। अतः सोऽङ्गुलेन ‘बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती’ इत्युक्तम्। धर्मदासेन तरुणीलावण्यमस्य कृतौ दृश्यते। ‘रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति। सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य’। गङ्गादेव्या सरस्वतीवीणाध्वनिरेव कृतिष्वस्य निशम्यते। ‘वीणापाणिपरामृष्टवीणानिक्राणहारिणीम्। भावयन्ति कथं वाऽन्ये भट्टबाणस्य भारतीम्।’ जयदेवो बाणं पञ्चबाणेन कामेनोपमिमीते। ‘हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः।’ श्रीचन्द्रदेवोऽमुं कविकुञ्जरगण्डभेदकं सिंहं गणयति। ‘आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविश्व्याटवीचातुरी-संचारी कविकुम्भिभुकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः।’

महाकवेर्बाणस्य जनिकालविषये वंशादिविषये च न काचन विप्रतिपत्तिः। हर्षचरितस्यादौ तेन वंशादिविवरणं महता विस्तरेणोपस्थाप्यते। जनकोऽस्य चित्रभानुर्जननी राजदेवी च। सम्राजो हर्षस्य समकालीनत्वात् जनिकालोऽस्येसवीयसप्तमशताब्द्याः पूर्वार्धोऽङ्गीक्रियते। हर्षचरितं कादम्बरी चेति ग्रन्थद्वयमस्य प्रधानतः कृतित्वेनाङ्गीक्रियते। कृतयोऽन्या विवादविषया एव विदुषाम्।

बाणस्य वस्तुविवृतौ वर्णने चापूर्वं वैशारद्यं वीक्ष्य मन्त्रमुग्धत्वमनुभवन्ति मनीषिणः। वर्ण्यस्य वस्तुनोऽणुतमामपि विवृतिं न विजहाति, न किञ्चिदुज्झति परस्मै यत्नेन शक्यं वर्णयितुम्। वर्णनानां व्यापित्वात् सर्वाङ्गीणत्वात् सूक्ष्मतमविवरणसमन्वितत्वाच्च ‘बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्’ इति भूयोभूयो व्यादिश्यते। एतदेवात्र समासतः समुपस्थाप्यते।

हर्षचरिते कवेर्वर्णनचातुरी बहुशोऽवलोक्यते। तेषु मुख्यत उल्लेख्यः प्रसङ्गाः सन्ति—मुमुर्षोर्नृपस्य प्रभाकरस्य वर्णनम्, वैधव्यदुःखपरिहाराय सतीत्वमाश्रयन्त्या यशोवत्या वर्णनम्, सिंहनादस्योपदेशः, दिवाकरमित्रस्य राज्यश्रीसान्त्वनम्। कवेर्गरिमा कमनीयां कादम्बरीमेवाश्रित्याऽवतिष्ठते इत्यत्र नास्ति विप्रतिपत्तिर्विदुषाम्। यत्र तत्र साङ्गोपाङ्गं वर्णनं महता श्रेमेण बाणेनोपस्थाप्यते, तेऽत्र प्रसङ्गा नामग्राहं दिङ्मात्रं प्रस्तूयन्ते। तद्यथा—शूद्रकवर्णनम्, चाण्डालकन्यावर्णनम्, विश्व्याटवीवर्णनम्, पम्पासरोवर्णनम्, प्रभातवर्णनम्, शबरसेनापतिवर्णनम्, हारीतवर्णनम्, जाबाल्याश्रमवर्णनम्, जाबालिवर्णनम्, सन्ध्यावर्णनम्, उज्जयिनीवर्णनम्, तारापीडवर्णनम्, इन्द्रायुधवर्णनम्, राजभवनवर्णनम्, अच्छोदसरोवर्णनम्, सिद्धायतनवर्णनम्, महाश्वेतावर्णनम्, कादम्बरीवर्णनं च।

समासतः कानिचिदुदाहरणान्यत्र प्रस्तूयन्ते। सन्ध्यावर्णनं यथा—‘अनेन य समयेन परिणतो दिवसः। स्नानोत्थितेन मुनिजनेनार्धविधिमुपपादयता यः क्षितितले दत्तस्तमम्बरतलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गरागं रविरुदवहत्।.....उद्यत्सप्तर्षिसार्धस्पर्शपरिजिहीर्षयेवं संहतपादः

पारावतचरणपाटलरागो रविरम्बरतलादलम्बत । विहाय धरणितलमुन्मुच्य कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तपोवनशिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत । प्रभातवर्णनं यथा—‘एकदा तु प्रभातसन्ध्यारागलोहिते गगनतलकमलिनीमधुरक्तपक्षसंपुटे वृद्धहंस इव मन्दाकिनीपुलिनादपरजलनिधितटमवतरति चन्द्रमसि, सन्ध्यामुपासितुमुत्तराशावलम्बिनि मानससरस्तीरमिवावतरति सप्तर्षिमण्डले, इतस्ततः संचरत्सु वनचरेषु विजृम्भमाणे श्रोत्रहारिणि पम्पासरः कलहंसकोलाहले, क्रमेण च गगनतलमार्गमवतरतो दिवसकरवारणस्यावचूल-चामरकलाप इवोपलक्ष्यमाणे मञ्जिष्ठारागलोहिते किरणजाले, शनैः शनैरुदिते भगवति सवितरि० । कादम्बरीवर्णनं यथा—‘पृथिवीमिव समुत्सारितमहाकुलभूभृद्व्यतिकरां शेषभोगेषु निषण्णाम्, गौरीमिव श्वेतांशुकरचितोत्तमाङ्गाभरणाम्, इन्दुमूर्तिमिवोद्दाममन्मथविलास-गृहीतगुरुकलत्राम्, आकाशकमलिनीमिव स्वच्छाम्बरदृश्यमानमृणालकोमलोरुमूलाम्, कल्पतरुलतामिव कामफलप्रदाम्, कादम्बरीं ददर्श । अच्छोदसरोवर्णनं यथा—‘प्रविश्य च तस्य तरुखण्डस्य मध्यभागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः, स्फटिकभूमिगृहमिव वसुन्धारादेव्याः, निर्गमनमार्गमिव सागराणाम्, निस्यन्दमिव दिशाम्, अंशावतारमिव गगनतलस्य, कैलासमिव द्रवतामापन्नम्, तुषारगिरिमिव विलीनम्, चन्द्रातपमिव रसतामुपेतम्, हराट्टहासमिव जलीभूतम्, मदनध्वजमिव मकराधिष्ठितम्, मलयमिव चन्दनशिशिरवनम्, असत्साधन-मिवादृष्टान्तम्, अतिमनोहरम्, आहादनं दृष्टेः, अच्छोदं नाम सरो दृष्टवान् । जाबालिवर्णनं यथा—‘स्थैर्येणाचलानां गाम्भीर्येण सागराणां तेजसा सवितुः प्रशमेन तुषाररश्मेर्निर्मलतयाऽम्बरतलस्य संविभागमिव कुर्वाणम्, शरत्कालमिव क्षीणवर्षम्, शन्तनुमिव प्रियसत्यव्रतम्, वाडवानलमिव सततपयोभक्षम्, शून्यनगरमिव दीनानाथविपन्नशरणम्, पशुपतिमिव भस्मपाण्डुरोमारिलष्टशरीरं भगवन्तं जाबालिमपश्यम् ।

पाञ्चाली रीतिर्बाणस्य । ‘शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते’ इति बाणोक्तौ शब्दार्थयोर्मञ्जुलः समन्वयः समीक्ष्यते । विषयानुरूपमेव तस्य शब्दावत्यपि विलोक्यते । यथा—विन्ध्याटवीवर्णने ओजःसमासभूयस्त्वम् । ‘उन्मदमातङ्गकपोलस्थलगलितसलिलसिके-नेवानवरतमेलवानेन मदगन्धिनान्धकारिता, प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालंकृता च । वसन्तवर्णने च माधुर्यमिश्रितत्वम् । ‘कोमलमलयमारुतावतरतरङ्गितानङ्गध्वजांशुकेषु, मधुकरकुलकलङ्ककालीकृतकालेयक-कुसुमकुड्मलेषु, मधुमासदिवसेषु ।

तस्य वर्णनानि वनितामिव विभूषणानि विभूषयन्त्यलंकरणैरलंकाराः । उपमारूपकोत्प्रेक्षा-श्लेषविरोधाभासपरिसंख्यैकावल्यादयोऽलंकाराः पदे पदे प्राप्यन्ते तत्तत्प्रसङ्गेषु । परिसंख्या यथा शूद्रकवर्णने—‘यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता । विरोधाभासो यथा शूद्रकवर्णने—‘आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अत्यन्तशुद्धस्वभावमपि कृष्णचरितम् । श्लेषमूलोपमा यथा चाण्डालकन्यावर्णने—‘नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्, मूर्खामिव मनोहारिणीम्, दिव्ययोषितमिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचनग्राहिणीम्, अमूर्तामिव स्पर्शवजिताम् । विन्ध्याटवीवर्णने उपमा यथा—‘चन्द्रमूर्तिरिव सततमृक्षसार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च । विरोधाभासो यथा विन्ध्याटवीवर्णने—

‘अपरिमितबहुलपत्रसंचयापि सप्तपर्णोपशोभिता, कूरसत्त्वापि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा’ । विरोधाभासो यथा शबरसेनापतिवर्णने—‘अभिनवयौवनमपि क्षपितबहुवयसम्, कृष्णमप्यसुदर्शनम्, स्वच्छन्दचारमपि दुर्गैकशरणम्’ । उत्प्रेक्षा यथा सन्ध्यावर्णने—‘अपरसागराम्भसि पतिते दिनकरे पतनवेगोत्थितमम्भःसीकरनिकरमिव तारागणमम्बरमधारयत्’ । श्लेषो यथा राजभवनवर्णने—‘उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसंचयम्, नाटकमिव पताकाङ्कशोभितम्, पुराणमिव विभागावस्थापितसकलभुवनकोशम्, व्याकरणमिव प्रथममध्यमोत्तमपुरुषविभक्तिस्थितानेकादेशकारकाख्यातसंप्रदानक्रियाव्ययप्रपंचसुस्थितम्’ । श्लेषः सन्ध्यावर्णने यथा—‘क्रमेण च रविरस्तमुपागत इत्युदन्तमुपलभ्य जातवैराग्यो धौतदुकूलवल्लकलधवलाम्बरः सतारान्तःपुरः पर्यन्तस्थितनुतिमिरतमालवनलेखं सप्तर्षिमण्डलाध्युषितम् अरुन्धतीसंचरणपवित्रम् उपहिताषाढम् आलक्ष्यमाणमूलम् एकान्तस्थितचारुतारकमृगम् अमरलोकाश्रममिव गगनतलम्.....अमृतदोधिदितिरध्यतिष्ठत्’ । एकावली यथा महाश्वेताजन्मवर्णने—‘क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्’ । परिसंख्या यथा जाबाल्याश्रमवर्णने—‘यत्र च मलिनता हविर्धर्मेषु न चरितेषु, मुखरागः शुक्रेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु,.....मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु,.....रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन’ । ‘यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितं,.....शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातो, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः’ ।

बाणः श्लिष्टसमस्तदीर्घवाक्यप्रयोगमनु प्रयुङ्क्ते लघुपदव्यासां वाक्यावलीम् । स यथैव दक्षो दीर्घवाक्यरचनायां तथैव पुटल्लघुवाक्यप्रयोगेऽपि । यत्र भावगाम्भीर्यमर्थगौरवं च तत्र सरला लघुपदा वाक्यावली, इतरत्र च श्लिष्टा समस्ता दीर्घा च । यथा शुकनासोपदेशेऽर्थगौरवत्वात् लघुपदप्रयोगः—‘मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्’ । महाश्वेताविलापे, कपिञ्जलकृताक्रन्दे च सन्ति लघूनि वाक्यानि । तद्यथा—कपिञ्जलकृतं रोदनम्—‘हा हतोऽस्मि, हा दग्धोऽस्मि, हा वञ्चितोऽस्मि, हा किमिदमापतितम्, किं वृत्तम्, उत्सन्नोऽस्मि,.....हा धर्मनिष्परिग्रहोऽसि, हा तपो निराश्रयोऽसि, हा सरस्वति विधवासि, हा सत्यम् अनाथमसि, हा सुरलोक शून्योऽसि.....इत्येतानि चान्यानि च विलपन्तं कपिञ्जलमश्रौषम्’ । जाबालिवर्णने लघुपदविन्यासो यथा—‘प्रवाहः करुणरसस्य, संतरणसेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्,.....सागरः सन्तोषामृतस्य, उपदेशा सिद्धिमार्गस्य,.....सखा सत्यस्य, क्षेत्रम् आर्जवस्य, प्रभवः पुण्यसंचयस्य० ॥ शुकनासोपदेशे लक्ष्मीस्वरूपवर्णने लघुपदविन्यासो यथा—‘न परिचयं रक्षसि । नाभिजनम् ईक्षते । न रूपमालोकयते । न कुलक्रममनुवर्तते । न शीलं पश्यति । न वैदग्ध्यं गणयति । न श्रुतमाकर्णयति । न धर्ममनुरुध्यते । न त्यागमाद्रियते । न विशेषज्ञतां विचारयति’ । उज्जयिनीवर्णने, राजभवनवर्णने, शुकनासोपदेशे, पुण्डरीकाय कपिञ्जलोपदेशे च संलक्ष्यते बाणस्यापूर्वा वर्णनचातुरी । स तथा प्रस्तवीति प्रत्येकं वस्तु यथा चित्रपटे स्वतः सन्दृश्यमाना काचित् कथा घटना वोपतिष्ठति । एवं ज्ञायते यत् तस्य वर्णनचातुरी सर्वातिशायिनी । कवीनामन्येषां वर्णनं च बाणोच्छिष्टमेव ।

११. कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते

श्रीभवभूतिः कान्यकुब्जेश्वरस्य श्रीमतो यशोवर्मण आश्रितो महाकविरित्यत्र सर्वेषां सुधियामैकमत्यम् । महाकविना बाणेन हर्षचरिते महाकविगणनाप्रसङ्गे नास्याभिधानमभ्यधायीति महाकवेर्बाणात् पूर्वं जनिकालमस्य नेति निर्णायते । एवं भवभूतेर्जनिकालः ७०० ईसवीस्य सत्रिधौ स्वीक्रियते । विदर्भ (बरार)—प्रदेशस्थपद्मपुरनगरवास्तव्योऽयं श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिनामाऽभवत् । पितामहोऽस्य भट्टगोपालो, जनको नीलकण्ठो, जननी जातुकर्णी, गुरुश्च ज्ञाननिधिर्नाम । नाटकत्रयमस्य समुपलभ्यते—महावीरचरितम्, मालतीमाधवम्, उत्तररामचरितं च । व्याकरणन्यायमीमांसाशास्त्रेषु निष्णातत्वादेव 'पदवाक्यप्रमाणज्ञः' इत्युपाधिसमलंकृतोऽभूत् । वेदेष्वन्येषु च शास्त्रेष्वस्याव्याहता गतिः । वाग्देवी वश्येव समन्ववर्ततेति तथ्यं स्वयमेवोद्घोष्यते तेन । 'यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते' (उत्तर० १.२) ।

करुणरसनिस्यन्दो नातिशेतेऽन्यो महाकविर्महाकविममुम् । अतः साधूच्यते—'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते' । करुणरसोद्रेकमालोक्यैव कवेरेतस्य कृतिषु कृतिभिः कृतानि कतिपयानि प्रशंसापद्यानि । आर्यासप्तशत्यां (१.३६) श्रीगोवर्धनाचार्यां भवभूतेर्भारतीं भूधरसुतया गौर्योपमिमीते । तत्कृतकारुण्ये प्रावाणोऽपि रुदन्त्यन्येषां तु का कथा । 'भवभूतेः संबन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति । एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति प्रावा' । कारुण्ये कालिदासादप्यतिरिच्यते । अत उच्यते—'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' ।

करुणरसप्रवाहपरीक्षया परीक्ष्यते चेन्नाटकत्रयमस्य तर्हि उत्तररामचरितमेव सर्वातिशायि । यथाऽत्र कारुण्यरसनिस्यन्दो, न तथाऽन्यत्र । किं कारुण्यम् ? करुणरसस्य प्रवाह एव कारुण्यमिति । इदमत्रावधेयम् । भवभूतिः करुणरसं रसत्वेनैव नातिष्ठतेऽपि तु रसानां समेषां मूलभूतत्वेन करुणमेवैकं रसं मनुते । रसा अन्येऽस्यैव विवर्तरूपेण परिणामरूपेण वा परिणमन्ते इति करुणरसस्य महत्त्वमातिष्ठते । आह च—'एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्, भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् । आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्, अम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समग्रम्' । (उत्तर० ३.४७) । उत्तररामचरिते चोदाह्रियतेऽनेन यत्कथमन्ये रसाः करुणरसमूलका इति एतदेवात्र विविच्यते उदाह्रियते च ।

उत्तररामचरितस्य प्रथमेऽङ्के आदावेव पितृवियोगविषण्णां जानकीमाश्रासयति दाशरथिः । गृहस्थधर्मस्य विघ्नव्याप्तत्वं व्याचष्टे । 'संकटा द्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता' (उ० १.८) । बन्धुजनवियोगस्य सन्तापकारित्वं सीतैवाभिधत्ते । 'सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति' (अंक १) । रामश्च संसारस्यारुनुदत्वं विशदयति । 'एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः' (अंक १) । चित्रवीथ्यां चित्रितानि वृत्तानि वीक्ष्य समुज्जृम्भते तेषां कारुण्यवृत्तिः । जानक्या अग्रिपरीक्षायाश्चित्रणं निरीक्ष्य विषण्णां वैदेहीमाश्रासयति रामः—'क्लिष्टो जनः किल जनैरनुज्जनीयस्तत्रो यदुक्तमशिवं नहि तत्क्षमं ते' । (१.१४) । जानकीपरिणयचित्रणं प्रेक्ष्य दिवंगतं तातं दशरथं चिन्तयतो विषीदति चेतो रघूद्वहस्य । 'जीवत्सु तातपादेषु.....ते हि नो दिवसा गताः' (१.१९) । संभोगशृङ्गारमपि करुणरसमूलकं व्याचष्टे । यथा—कष्टसहस्रसंकुलं काननं विचरतां तेषां जनस्थानमध्यगे प्रस्त्रवणे गिरौ यामिनीयापनं वर्णयति—'किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगात्.....अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्' (१.२७) । चित्रे रावण-कृतजानकीहरणवृत्तं वीक्ष्य खिद्यते चेतश्चारुचरितस्य राघवस्य । जनस्थाने सति सीताहरणे कथमतप्यत राम इति लक्ष्मणो वर्णयति तस्य कारुण्यपूर्णां स्थितिम् ।

तस्य विकलवत्त्वं विलोक्य ग्रावाणोऽप्यरुदन्, वज्रस्यापि हृदयं व्यदलत् । 'अथेदं रक्षोमिः कनकहरिणच्छाविधिना, तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि । जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितैरपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' (१.२८) । सीताहरणचित्रदर्शनेन विषण्णस्य विलपतश्च दाशरथेरवस्थां वर्णयति बाष्पप्रसरं च मुक्ताहारेणोपमिमीते । 'अयं तावद् बाष्पखुटित इव मुक्तामणिसरो विसर्पन् धाराभिलुठति धरणीं जर्जरकणः । निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधनासापुटतया, परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदयः' (१.२९) । प्रियवियोगजन्मा दुःखाग्निः कथं पीडयति मानसमिति व्याहरति—दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो हन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति' (१.३०) । माल्यवन्नामके गिरौ स्वीयां मोहावस्थां स्मारं स्मारं सीदति स्वान्तं भूयोऽपि राघवस्य । 'विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि, प्रत्यावृत्तः पुनरिव स मे जानकीविप्रयोगः' (१.३३) । रामबाहुमुपधानत्वेनाश्रित्य यदैव निःशङ्कं स्वपिति सीता, तावदेव समुपतिष्ठते जनप्रवादजन्यो विषमो विषादहेतुर्विप्रयोगः । 'हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्, वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः । एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसुप्तम्' (१.४०) । वैदेह्या वने प्रवासनं व्याधाय शकुन्तसमर्पणं प्रतीयते । 'शैशावत् प्रभृति पोषितां प्रियां, सौहृदाद- पृथगाश्रयामिमाम् । छद्मना परिददामि मृत्यवे, सौनिके गृहशकुन्तिकामिव' (१.४५) । पिशाचेभ्यो बलिवितरणमिव चैतत्कर्म । 'विस्मम्भादुरसि निपत्य जातनिद्राम्, उन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य लक्ष्मीम् । क्रव्याद्भ्यो बलिमवि दारुणः क्षिपामि' (१.४९) । सीताप्रवासनेनासह्यं व्यथामनुभवति रामभद्रः । 'दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम् । मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलयितं हृदि' (१.४७) ।

शम्बूकप्रसङ्गेन दण्डकारण्यं पञ्चवटीं च प्राप्य जानकीसहवासं स्मारं स्मारं खिद्यतेतमां मनो मनस्विनो रामस्य । रामोऽभिधत्ते—'चिराद् वेगारम्भी प्रसूत इव तीव्रो विषरसः, कुतश्चित् संवेगात् प्रचल इव शल्यस्य शकलः । व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हन्मर्मणि पुनः, पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव' (२.२६) । सीताप्रवासनेन पापिनमात्मानं गणयन् पञ्चवटीदर्शनापात्रं मन्यते । 'यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे, एकः संप्रति नाशितप्रियतमस्तामेव रामः कथं, पापः पञ्चवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसंभाव्य वा' (२.२८) । मुरला चित्रयति रामावस्थाम्, कथं पुटपाकवद् व्यथयति रामं सीताविवासनशोकः । 'अनिर्धिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः । पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः' (३.१) । तमसा दुःखक्षामां जानकीं करुणस्य मूर्तिमेव गणयति । 'करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी, विरहव्यथेव वनमेति जानकी' (३.४) । दीर्घशोकः शोषयति शरीरं सीतायाः । 'किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद् विप्रलूनं, हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोकः । ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं, शरदिज इव घर्मः केतकीगर्भपत्रम्' (३.५) । रामः पञ्चवटीदर्शनेन भूयोऽपि मोहमापद्यते । दुःखाग्निरुपीडयति तम् । 'अन्तर्लीनस्य दुःखानेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः । उत्पीड इव धूमस्य, मोहः प्रागावृणोति माम्' (३.९) । शोकाग्निपीडितो नाभिज्ञायते रामः स्वकाश्यात् । 'नवकुवलयस्निग्धैः विकलकरणः पाण्डुच्छायः शुचा परिदुर्बलः, कथमपि स इत्युन्नेतव्यस्तथापि दृशोः प्रियः' (३.२२) । वासन्ती सोत्प्रासं सीताया उदन्तं पृच्छति रामम् । 'अयि कठोर यशः किल ते प्रियं, किमयशो ननु घोरमतः परम् । किमभवद् विपिने हरिणीदृशः, कथय नाथ कथं बत मन्यसे' (३.२७) । सशोकमुत्तरति रामः क्रव्याद्विस्तस्या भक्षणम् । 'त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टेस्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः । ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणाल-

कल्पा, क्रव्याद्विरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता (३.३८)। शोकक्षोभे विलपनमेव चित्तनिग्रहोपायः प्रस्तूयते कविना। 'पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते' (३.२९)। रामः स्वावस्थां वर्णयति—कथमन्तस्तापस्तापयति तनूं, न तु हरति जीवितम्। 'दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते, वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्। ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्, प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्'। (३.३१)।

अन्ये च करुणरसाप्लुताः प्रमुखाः श्लोका दिङ्मात्रमत्र निर्दिश्यन्ते। ते यथायथं विवेच्याः। सीतापरित्यागविषण्णो रामोऽशरणो रोदितितराम्। 'न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं तत-स्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता। चिरपरिचितास्ते भावास्तथा द्रवयन्ति माम्, इदमशरणैरघास्माभिः प्रसीदत रुद्यते' (३.३२)।

जानकीवियोगजः शोकस्तिरश्चीनं शल्यमिव विषमयो दन्त इव च पीडयति। 'यथा तिरश्चीनमलातशल्यं, प्रत्युसमन्तः सविषश्च दन्तः। तथैव तीव्रो हृदि शोकशङ्कुर्ममाणि कृन्तत्रपि किं न सोढः' (३.३५)। शोकप्रसारो निवारितोऽपि न विरमति। 'वेलोल्लोल—भित्त्वा भित्त्वा प्रसरति बलात् कोऽपि चेतोविकार-स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोषः' (३.३६)। दुःखपीडितं रामं जगत्रिर्जनमिवाभाति। 'हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः, शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि' (३.३८)। पूर्वं वियोगो रावणविनाशावधिरभूत्, अयं च निरवधिः। 'उपायानां भावाद—वियोगो मुग्धाक्ष्याः स खलु रिपुघातावधिरभूत्, कदुस्तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं तु प्रविलयः' (३.४४)। पुत्रीनाशविषण्णो जनको न धृतिमावहति। 'अपत्ये यत्तादृग्—पटुधारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे, निकृन्तन्ममाणि क्रकच इव मन्युर्विरमति' (४.३)। संबन्धिवियोगजानि दुःखानि प्रियजनदर्शने नितरां वर्धन्ते। 'सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां, दुःखानि संबन्धिवियोगजानि। दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि, स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते' (४.८)। शोके सर्वमपि दुःखायैव। 'अलं वा तत् स्मृत्वा दहति यदवस्कन्द्य हृदयम्' (४.१४)। लवदर्शनेन सीतां संस्मृत्य जनको नितरां विषीदति। 'वत्सायाश्च—हा हा देवि किमुत्पथैर्मम मनः पारिप्लवं धावति' (४.२२)। वनवासे संत्रस्तया त्वया नूनं जनकोऽसकृत् स्मृतः 'नूनं त्वया.....क्रव्यादगणेषु परितः परिवारयत्सु, संत्रस्तया शरणमित्यसकृत् स्मृतोऽहम्' (४.२३)। प्रियनाशे जगदरण्यमिव प्रतीयते। 'विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः, प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति' (६.३०)। प्रियावियोगे जगदतितरां दुःखायैव भवति। 'जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते, कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव' (६.३८)। नृपं जनकमुद्दीक्ष्य रामस्य हृदयं त्रपया विदीर्यत इव। 'पश्यन्नीदृशमीदृशः पितृसखं वृत्ते महावैशसे, दीर्यं किं न सहस्रधाऽहमथवा रामेण किं दुष्करम्' (६.४०)। शुचा निष्प्रभं रामं वीक्ष्य मातरः प्रमोहमुपयान्ति। 'अनुभावमात्रसमवस्थितश्रियं, सहसैव वीक्ष्य रघुनाथमीदृशम्।—विधुराः प्रमोहमुपयान्ति मातरः' (६.४१)। सीतापरित्यागाद् राम आत्मानं दयापात्रं न मनुते। 'जनकानां रघूणां च, यत् कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्। तत्राप्यकरुणे पापे, वृथा वः करुणा मयि' (६.४२)। प्राकृतकर्मजं दुःखं सुतरां दुर्निवारम्। 'सोढश्चिरं राक्षसमध्यवासस्त्यागो द्वितीयस्तु सुदुःसहोऽस्याः। को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे' (७.४)।

पूर्वकृतालोचनया सिध्यत्यदो यद् भवभूतिः करुणरसवर्णने सर्वानतिशेते महाकवीन्।

१२. नैषधं विद्वदौषधम्

श्रीश्रीहर्षमहाकवेः कृतिनैषधचरितं कस्य न कृतिनो मानसमावर्जयति । बृहत्त्रय्यामन्यतमैषा कृतिः । भारवेः किराताजुनीयं माघस्य शिशुपालवधं श्रीहर्षस्य नैषधचरितं चेति त्रयमेतद् बृहत्त्रय्यां गण्यते । उत्तरोत्तरमेषामुत्कर्षचरोरीक्रियते । एतद्भावात्मकमेवैतदुद्गरीर्यते—‘तावद् भा भारवेर्भाति, यावन्माघस्य नोदयः । उदिते नैषधे काव्ये, क्व माघः क्व च भारविः ॥’

महाकवेरेतस्य जनकः श्रीहीरो जननी मामल्लदेवी च । तथा हि—‘श्रीहर्षं कविराजराजि-मुकुटालंकारहीरः सुतं, श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्’ । (नैषध० १.१४५) । कान्यकुब्जेश्वरस्य जयचन्द्रस्याश्रयमशिश्रियत् कविरयम्, तदादृतिमविन्दत च । ‘ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्’ (नै० २२.१५३) । अतोऽस्य जनिकालो द्वादशशताब्द्या उत्तरार्धोऽङ्गीक्रियते । श्रीहर्षो महाकविर्महायोगी च । उभयत्रापि चरमोत्कर्षं लेभे । ‘यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदार्णवम् । यत्काव्यं मधुवर्षि०’ (नै० २२.१५२) । सर्गान्तश्लोकेषु ग्रन्थाष्टकस्यान्यस्य नामग्राहं गृह्यते तेन । तत्र चाद्वैतवेदान्तप्रतिपादकः खण्डनखण्डखाद्यमेवैको ग्रन्थः साम्प्रतमुपलभ्यतेऽन्ये च लुप्तप्राया एव । सायासमेतत् तस्य महाकाव्यं, ग्रन्थयश्चात्र विन्यस्तास्तेन महता श्रेमेण । अतः श्रमसाध्य एव महाकाव्यस्यैतस्यार्थावगमोऽपि । ‘ग्रन्थे ग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया । प्राज्ञमन्यमना हटेन पठिती माऽस्मिन् खलः खेलतु । श्रद्धाराद्वगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थः समासादयत्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः’ । (नै० २२.१५२) । रमणीलावण्यं हरति चेतः सचेतसो यून् एव, न तु किशोराणाम् । तथैव श्रीहर्षकृतिः सुधीभिरेवास्वादनीया, न तु प्राज्ञमन्यैः । ‘यथा यून्स्तद्वत् परमरमणीयापि रमणी, कुमारणा-मन्तःकरणहरणं नैव कुरुते । मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः, किमस्या नाम स्यादरस-पुरुषानादरभैरः’ । (नै० २२.१५०) ।

श्रीहर्षो महाकविर्महादार्शनिको महावैयाकरणश्चेत्यादिविविधविरुद्धगुणगणसमन्वयादतिशेते सर्वानन्यान् महाकवीन् पाण्डित्यप्रदर्शने वाग्वैभवे रुचिररचनायां भावाभिष्वक्तौ साधुशब्दसंकलने विद्यावैशारद्ये वक्रोक्तिव्यवहारे च । अनुपमवैदुष्यवैभवाविर्भावात् पाण्डित्यपुटपरिपाकप्रतीकाशः प्रतीयते प्रबन्धोऽस्य । नैकशास्त्रनिष्णातस्यानुपहता गतिरत्रेति ‘नैषधं विद्वदौषधम्’ इति साह्यादमुदघोष्यते यशोऽस्य सुधीभिः । प्रतिपदं पदलालित्यावेक्षणात् ‘नैषधै पदलालित्यम्’ इत्यप्यभिधीयते । एतदेव समासतोऽत्र प्रस्तूयते । विवृतिश्च विद्वद्भिः स्वयेवाभ्यूह्या ।

पदलालित्यवन्तः केचन श्लोका अत्र दिङ्मात्रमुदाह्रियन्ते । आधारि पदमेषु तदङ्घ्रिणा घृणा क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे । तदास्यदास्येऽपि गतोऽधिकारितां न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः । (नैषध० १.२०), मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं निशि क्व सा न स्वपती स्म पश्यति । अदृष्टमप्यर्थम-दृष्टवैभवात्० (नै० १.३९), अहो अहोभिर्महिमा हिमागमेऽप्यभिप्रपेदे प्रति तां स्मरा दिताम् । विभावरीभिर्विभ्रांभूविरै । (नै० १.४१), अलं नलं रोद्धुममी किलाभवन् स्मरः-स्म रत्यामिनिरुद्धमेव यत्, सृजत्ययं सर्गिनिसर्ग ईदृशः । (नै० १.५४), चलन्नलंकृत्य महारयं हयं स्ववाहवाहोचितवेषपेशलः । (नै० १.६६), दिने दिने त्वं तनुरेधिरिऽधिकं पुनः पुनर्मूर्च्छं च तापमूर्च्छं च । (नै० १.९०), मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी । (नै० १.१३५), मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दयासखाः सखायः स्रवदश्रवो मम । (नै० १.१३६), नलिनं मलिनं विवृण्वती

पृथतीमस्पृशती तदीक्षणे । अपि खञ्जनमञ्जनाञ्जिते० (२.२३), धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि । (३.११६), सकलया कलया किल दंष्ट्रया समवधाय यमाय विनिर्मितः । (४.७२), लोकेशकेशवशिवानपि यश्चकार शृङ्गारसान्तरभृशान्तरशान्तभावान् । (११.२५), कुमुदमुदमुदेष्यतीमसोढा रविरविलम्बितुकामतामतानीत् । (२१.१४६), शृङ्गारभृङ्गारसुधाकरेण वर्णस्त्रजानुपय कर्णकूपौ । (२२.५७) ।

विविधविद्यापारदृष्ट्वा श्रीहर्षः । विविधदर्शनसिद्धान्तानां व्याकरणादिशास्त्राद्धान्तानां चोल्लेखात् संजायते नैषधचरिते महत् काठिन्यम् । अतो विद्वदौषधमेतत् काव्यमुच्यते । एतदेवात्रातिसमासतो निरूप्यते विव्रियते च । (१) श्लेषप्रयोगः—चेतो नलं कामयते मदीयम्० (३.६७), श्लेषमूलकमर्थत्रयमेतस्य । तद्यथा—मदीयं चेतः नलं कामयते, ० न लंकाम् अयते, ० चेतः अनलं कामयते । त्रयोदशसर्गे पञ्चनलीवर्णने (१३.२.३४) सर्वेऽपि श्लोका द्वयर्थकास्त्रयर्थका वा । देवः पतिर्विदुषि नैषधराजगत्या निर्णीयते न किमु न त्रियते भवत्या । (१३.३४), पञ्चाथकमेतत्पद्यम् । अन्ये च केचन श्लेषमूलाः श्लोकाः—विदर्भजाया मदनस्तथा मनो नलावरुद्धं वयसैव वेशितः (१.३२), वयोतिपातोद्गातवातवैपिते० (१.७७), वियोगिनीमैक्षत दाडिनीमसौ (१.८३), रथाङ्गभाजा कमलानुषङ्गिणा० (१.१११), स्यादस्या नलदं विना न दलने तापस्य कोऽपि क्षमः (४.११६) । (२) व्याकरणसिद्धान्तवर्णनम्—‘क्रियेत चेत्साधुविभक्तिचिन्ता व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेया । या स्वौजसां साधयितुं विलासैः०’ (३.२३) इत्यत्र ‘अपदं न प्रयुज्जीत’ इत्यस्य वर्णनम् । ‘किं स्थानिवद्भावमधत्त दुष्टं तादृक्कृतव्याकरणः पुनः सः ।’ (१०.१३६) इत्यत्र स्थानिवदादेशो० (१.१.५६) इति सूत्रस्य वर्णनम् । ‘अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि’ (१७.७०) इत्यत्र ‘अपवर्गे तृतीया’ (२.३.६) इति सूत्रस्य वर्णनम् । ‘भण फणिभवशास्त्रे तातडः स्थानिनौ काविति विहिततुहीवागुत्तरः कोकिलोऽभूत्’ (१९.६०), इत्यत्र तुह्योस्तातड्० (७.१.३५) इति सूत्रस्य वर्णनम् । ‘अधीतिबोधा-चरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्रः प्रणयन्नुपाधिभिः’ (१.४) इत्यनेन ‘चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति०’ (महाभाष्य, प्रथमाह्निक) इत्यस्य वर्णनम् । एकशेष-वर्णनम्—हस्ते तवास्ते द्वयमेकशेषः । (३.८२), मुखेन्दुमस्थापयदेकशेषम् (७.५९) । आदेशः—भुवः स्वरादेशमथाचरामो० (८.९६), स्वं नैषधादेशमहो विधाय (१०.१३६) । अपादानम्—आगच्छतामपादानं० (१७.११८) । घु-संज्ञा—घोषयन् यो घुसंज्ञा० (१९.६१) । तमप्—मधुराधारस्तमपप्रत्ययः (२१.१५२) । आप्रेडितम्—भवदुपविपिनाप्रे ताभिराप्रेडितेन (२१.१५६) । (३) सांख्यसिद्धान्तवर्णनम्—सत्कार्यवादः—नास्ति जन्यजनकव्यतिभेदः० (५.९४) । (४) योगसिद्धान्तवर्णनम्—सम्प्रज्ञातसमाधिः—सम्प्रज्ञातवासिततमः समपादि (२१.११८) । (५) न्याय-वैशेषिकसिद्धान्तवर्णनम्—परमाणुवादः—आदाविव द्वयणुकृत्परमाणुयुग्मम् (३.१२५), मनसोऽणुत्वम्—मनोभिरासीदनणुप्रमाणैः (३.३७), न्यायस्य षोडशपदार्थत्वम्—द्विधोदितैः षोडशभिः पदार्थैः (१०.८२) । कारणगुणपूर्वकं हि कार्यम्, ‘अनानुरूपां तनुरूपत्र्यङ्गि कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते’ (३.१७) । न्यायाभिमतमोक्षस्य परिहासः—मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम् । गोतमं तमवैश्वैव यथा वित्थ तथैव सः । (१७.७५) । वैशेषिकाभिमततमः—स्वरूपपरिहासः—ध्वान्तस्य वामोरु विचारणायां, वैशेषिकं चारु मतं मतं मे । औलूकमाहुः खलु

दर्शनं तत्, क्षमं तमस्तत्त्वनिरूपणाय ॥ (२२.३५) । (६) मीमांसासिद्धान्तवर्णनम्—
 देवानामरूपित्वं मन्त्ररूपित्वं य—विश्वरूपकलनादुपपन्नं, तस्य जैमिनि-मुनिवत्मुदीये । विग्रहं
 मखभुजामसहिष्णु० (५.३९), प्रत्यक्षलक्ष्यामवलम्ब्य मूर्तिं हुतानि यज्ञेषु तवोपभोक्ष्ये !—मखं
 हि मन्त्राधिकदेवभावे ॥ (१४.७३) । स्वतः प्रामाण्यम्—स्वत एव सतां परार्थता ग्रहणानां हि
 यथा यथार्थता । (२.६१) । मानवस्य कर्माधीनत्वमीश्वराधीनत्वं वा—अनादिधाविस्वपरम्पराया
 हेतुस्त्रजः स्रोतसि वेश्वरे वा । आयत्तधीरेष जनस्तदार्याः किमीदृशः पर्यनुयोगयोग्यः । (६.१०२) ।
 श्रुतीनां प्रामाण्यम्—श्रुतिं श्रद्धां विक्षिताः प्रक्षितां ब्रूथ च स्वयम् । मीमांसामांसलप्रज्ञास्तां
 यूपद्विपदापिनीम् । (१७.६१) । (७) वेदान्तसिद्धान्तवर्णनम्—ब्रह्मसाक्षात्कारः—प्रापुस्तमेकं
 निरुपाख्यरूपं ब्रह्मेव चेतांसि यतव्रतानाम् (३.३) । मुक्तदशा—सा मुक्तसंसारिदशारसाभ्यां
 द्विस्वादमुल्लासमभुङ्क्त मिष्टम् (८.१५) । लिङ्गशरीरम्—न तं मनस्तच्च न कायवायवः
 (९.९४) । अद्वैतवादस्य तात्त्विकत्वम्—श्रद्धां दधे निषधराद् विमतौ मतानाम् । अद्वैततत्त्व इव
 सत्यतरेऽपि लोकः (१३.३६) । (८) बौद्धसिद्धान्तवर्णनम्—बौद्धाभमतः शून्यवादो
 विज्ञानवादः साकारतावादश्च—‘या सोमसिद्धान्तमयाननेव, शून्यात्मतावादमयोदरेव ।
 विज्ञानसामस्त्यमयान्तरेव, साकारतासिद्धिमयाखिलेव’ । (१०.८८) । (९) जैनसिद्धान्तवर्णनम्—
 जैनाभिमतरत्नत्रयम्—‘न्यवेशि रत्नत्रितये जिनेन यः, स धर्मचिन्तामणिरुज्झितो यया ।
 कपालिकोपानलभस्मनः कृते, तदेव भस्म स्वकुले स्तुतं तया’ । (९.७१) । (१०)
 चार्वाकसिद्धान्तवर्णनम्—वर्णनमेतस्य सप्तदशे सर्गे (१७.३६-८३) विस्तरशः प्राप्यते ।
 तद्यथा—न कश्चनेश्वरः । ‘देवश्चेदस्ति सर्वज्ञः, करुणाभागवन्ध्यवाक् । तत् किं वाग्व्ययमात्रात्रः
 कृतार्थयति नार्थिनः’ (१७.७७) । अग्निहोत्रादिकं निष्फलम् । ‘अग्निहोत्रं त्रयीतन्त्रं त्रिदण्डं
 भस्मपुण्ड्रकम् । प्रज्ञापौरुषनिःस्वानां जीविकेति बृहस्पतिः’ (१७.३९) । भोगोपभोगार्थं शरीरमिदम् ।
 ‘सुकृते वः कथं श्रद्धा, सुरते च कथं न सा । तत्कर्म पुरुषः कुर्याद् येनान्ते सुखमेधते’ ।
 (१७.४८) । न मृतस्य पुनर्जन्म । ‘कः शमः क्रियतां प्राज्ञाः, प्रियाप्रीतौ परिश्रमः । भस्मीभूतस्य
 भूतस्य पुनरागमनं कुतः’ (१७.६९) । एवमेव वेदानां वेदाङ्गानामन्येषां च विषयाणामत्र प्रतिपदं
 वर्णनं प्राप्यते ।

उपर्युक्तेन वर्णनेन विशदीभवत्येतद् यद् श्रीहर्षः कविताकामिनीकान्तो भाषाप्रयोगविदग्धो
 विविधशास्त्रपारदृश्वा रससिद्धः कवीश्वरो वर्तते । तस्य काव्यं प्रतिपदं तस्य व्याकरणज्ञतां
 भावगाम्भीर्यं पदमाधुर्यं भाषासौष्ठवं रसपरिपाकं च प्रकटयति । अनुपमस्तस्य समग्रेऽपि
 संस्कृतवाङ्मयेऽधिकारः । गीर्वाणवाणी वाणीश्वरमिव तं सेवते । स भाषां पुत्तालिकां प्रनर्तयितुं
 प्रभवति । तदीहासमकालमेव समुपतिष्ठन्ति रसा भावाः कान्ता पदावली विविधाश्चालंकाराः ।
 गूढातिगूढभावान्वितानि श्लिष्टानि च पद्यानि स तेनैव सारल्येन रचयितुमलं यथा सरलानि सरसानि
 प्रसादगुणोपेतानि हृद्यानि पद्यानि । तस्य पद्यानि नारिकेलफलोपमानानि सन्ति बहिः कठोराणि अन्तः
 माधुर्योपेतानि च । रसिकैः सहृदयैर्विविधशास्त्रनिष्णातैरेव तत्काव्यगौरवम् अवधारयितुं पार्यते ।
 विविधशास्त्रादिसिद्धान्तवर्णनादेवास्य महाकाव्यस्य प्रतिपदं क्लिष्टत्वमालक्ष्यते । अतः साधूच्यते—
 नैषधं विद्वदौषधम् ।

१३. भारतीया संस्कृतिः

भारतीयसंस्कृतेर्विवृतिविचारे बहवोऽनुयोगाः समापतन्ति चेतसि। तेषां समासतोऽत्र विवरणमुपस्थाप्यते। का नाम संस्कृतिः? कथमिवैषोपकरोत्यात्मनो मनसो जनस्य देशस्य संसृतेर्वा? हेयोपादेयोपेक्षया वैषा? उपादेया चेदियं किं स्यात् स्वरूपमस्याः साम्प्रतिक्यां लोकसंस्थितौ? कास्तावत् प्रातिस्विक्यो भारतीयसंस्कृतेः? किमिव हि साध्यं क्षेममिह लोकस्य संस्कृत्याऽनया? कानि च सन्ति कारणानि विश्वसंस्कृतावादृतेरस्याः? इत्यादयः। संस्करणं परिष्करणं चेतस आत्मनो वा संस्कृतिरिति समभिधीयते। सा नाम संस्कृतिर्या व्यपनयति मलं मनसश्चाञ्चल्यं चेतसोऽज्ञानावरणमात्मनश्च। पापापनयपूर्वकमेषा प्रसादयति स्वान्तं, दुर्भावदमनपूर्वकं संस्थापयति स्थैर्यं चेतसि, मनःशुद्धिपुरःसरं पावयत्यात्मानम्, अपहरति च चित्तभ्रमम्। संस्कृतिरेवैषा चेतः प्रसादयति, मनोऽमलीकुरुते, दुर्भावान् दमयते, दुर्गुणान् दारयति, पापान्यपाकुरुते, दुःखद्वन्द्वानि दहति, ज्ञानज्योतिर्ज्वलयति, अविद्यातमोऽपहन्ति, भूतिं भावयति, सुखं साधयति, धृतिं धारयति, गुणानागमयति, सत्यं स्थापयति, शान्तिं समादधाति च। न केवलमेषोकपत्री व्यष्टेरेवापि तु समष्टेरपि जीवनभूता। उपकरोति चैषाऽऽत्मानो मनसो लोकस्य राष्ट्रस्य संसृतेश्च। अजस्रमेषोपादेया सर्वैरेव स्वसुखमभीप्सुभिः। स्वोन्नतिमभीप्सता न शक्या केनाप्येषा हातुमुपेक्षितुं वा। उज्झितोपेक्षिता वैषा परिणस्यते स्वात्मविनाशाय लोकाहिताय च। अङ्गीकृतेऽस्या उपादेयत्वं तदेव स्यादस्याः स्वरूपं यत् साम्प्रतिक्या लोकसंस्थित्या नातितरां संभिद्येत। विविधाचारविचारवादव्याकुले विश्वेऽस्मिन् सैव संस्कृतिरुपादेयतामाप्स्यति या समेषां स्वान्तेषु सद्भावविर्भावपुरःसरं विश्वहितं विश्वबन्धुत्वं विश्वोपकरणं चादर्शत्वेनोरीकुर्यात्। अतः सिध्यत्यदो यद् विश्वजनीना संस्कृतिरेव साम्प्रतमुपादानमर्हति, सैव च तापत्रयसन्तप्तं जगत् तापापनयनेन सुखनिधानं सम्पादयितुं प्रभवति।

भारतीयसंस्कृतेः काश्चन प्रातिस्विक्यो मुख्या विशेषा वाऽत्र प्रस्तूयन्ते। (१) **धर्मप्राधान्यम्**—मानवेषु धर्मप्राधान्यमेव तान् व्यवच्छेदयति पशुभ्यः। अत उक्तम्—‘धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः’। नहि धर्मपदेन कश्चन सम्प्रदायविशेषोऽत्र विवक्षितः। जगद्धारकाणि मूलतत्त्वानि यमाख्यया व्याख्यातानि शास्त्रेषु धर्मपदवाच्यानि। तदेवोच्यते—‘धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः’। यमास्तु व्याख्याता योगदर्शने—‘अहिंसा-सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः’ (योग० २.३०)। अहिंसायाः समाश्रयणम्, सत्यस्य परिपालनम्, अस्तेयवृत्त्या आश्रयः, ब्रह्मचर्यव्रतस्यानुष्ठानम्, अपरिग्रहव्रतस्य पालनं च यम इत्युच्यते। एतेषां व्रतानामाश्रयेण मानवः समाजो देशो जगदिदं च सततमुन्नतिं लप्स्यत इति तानि विश्वजनीनधर्मपदेन वाच्यनि। एत एव यमाः शाश्वतिकाः सार्वभौमा महाव्रतमित्युच्यन्ते—‘जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः

सार्वभौमा महाव्रतम्' (योग० २.३१)। यश्चैहिकमामुष्मिकं चोभयं क्षेममावहति च धर्म इति व्यवस्थापितं वैशेषिकदर्शनकृता कणादेन। 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'। यतोऽभ्युदयोऽर्थात् ऐहिकी लौकिकी भौतिकी वा समुन्नतिः समुपलभ्यते, निःश्रेयसावाप्तिर्मोक्षाधिगमश्च भवति पारलौकिकं च सुखमाप्न्यते, स एव धर्मपदेन वाच्यः। एतदेव मनसिकृत्य मनुना धृत्यादयो दश गुणा धर्मनाम्ना व्याख्याताः। तद्यथा—'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्' (मनु० ६.९२)।

(२) आध्यात्मिकी भावना—जीवनमेतन्न केवलं भोगार्थमेव, अपि त्वात्मोन्नतेः प्रमुखं साधनम्। आध्यात्मिकी भावना मानवं देवत्वं प्रापयति। स सर्वेष्वपि जीवेष्वेकत्वं समीक्षते। समग्रमपि प्राणिजातं परेशेनैवोत्पादितमिति विचारं विचारं तत्रैकत्वमनुभवति। जगदिदं परमात्मना व्याप्तम् 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत्' (ईशोपनिषद् १)। 'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते' (ईशोप० ६)। 'यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ईशोप० ७)। अध्यत्मप्रवृत्त्या जीवनमुन्नतं भवति। सर्वत्रैकत्वदर्शनेन न मानवः शोकाद्यभिभूतो भवति। स प्रतिपदमानन्दमनुभवति। निखिलमपि संस्कृतवाङ्मयं व्याप्तं भावनयाऽनया। भावनैषा चेतः प्रसादयति, आत्मानं मोक्षाधिगमं प्रति प्रेरयति। उपनिषत्सु गीतायां चास्या भावनाया वर्णितं विविधं महत्त्वम्। अध्यात्मप्रवृत्त्या प्रवर्तते मनसि सहृदयता सहानुभूतिरौदार्यादिकं च। (३) पारलौकिकी भावना—जगदिदं विनश्वरं, कीर्तिरिवैकाऽविनाशिनी। भौतिका विषया इमे आपातरम्याः पर्यन्तपरितापिनश्च। 'आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः' (किराता० ११-१२)। एषामाश्रयणेन पतनं सुलभं, दुःखावाप्तिः सुलभा, सुखं तु नितरां दुर्लभम्। एतस्मादेव हेतोर्धैरा वीराः सुकृतिनश्च कर्तव्यं प्रमुखं मन्वाना विषयसुखानि विहाय प्राणान् तृणवद् गणयन्तः समरादिषु वीरगतिं लेभिरे। (४) सदाचारपालनम्—'आचारः परमो धर्मः' इति सिद्धान्तमाश्रित्य सदाचारः सर्वोत्तमं तप इति स पालनीयः। अत उक्तं महाभारते—'वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च। अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः'। ब्रह्मचर्यादिपालनेनेन्द्रियनिग्रहो मनसो दमश्च साधनीयौ। सदाचारपालने ब्रह्मचर्यस्य विशिष्टं महत्त्वम्। ब्रह्मचर्यव्रतस्याश्रयणेन न केवलं शारीरिकी समुन्नतिरवाप्न्यते, अपितु मानसिकी बौद्धिकी आध्यात्मिकी चापि समुन्नतिः सुतरां सुलभा। देवा ब्रह्मचर्यव्रतपालनेनैव मृत्युमपि वशीकृतवन्तः। 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाञ्जत' (अथर्व०)। देवा ब्रह्मचर्येणैवानन्दमधिगतवन्तः। 'इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्' (अथर्व०)। चरित्ररक्षा शीलरक्षा संयमो दमो मनसो वशीकरणमिन्द्रियाणां नियमनं चेत्यादिगुणाः सदाचारपालने विशेषतोऽवधेयाः। (५) वर्णव्यवस्था—ब्राह्मणक्षत्रिय-

वैश्यशूद्राश्चत्वार इमे वर्णाः । वेदानां वेदाङ्गानां चाध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं विद्याया धनस्य च दानं धनादिदानस्य स्वीकरणं च ब्राह्मणस्य कर्तव्यम् । 'अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् (मनु० १.८८) । 'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्' (गीता १८.४२) । देशस्य समाजस्य च रक्षणं क्षत्रियस्य परमो धर्मः । स विपत्तेः क्षताद् वा लोकं त्रायते । अतः साधु निगदितं कविवरेण्येन कालिदासेन—'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः' (रघु०) । 'शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाऽप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्' (गीता १८.४३) । देशस्य जनतायाश्च मनोरञ्जनत्वादेव राजा राजते । 'राजा प्रकृतिरञ्जनात्' । कृषिर्गौरक्षा वाणिज्यं च वैश्यस्य प्रमुखं कर्म । 'कृषिर्गौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्' (गीता १८.४४) । एषु कर्मसु वैश्यैः समुन्नतिः कार्या । श्रमसाध्यं शारीरिकं च कार्यं शूद्रस्य प्रधानं कर्तव्यम् । 'परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्' (गीता १८.४४) । यो यादृशं कर्म कुरुते तादृशं वर्णमवाप्नोति । सर्वे वर्णाः स्वं स्वं कर्म विदधीरन् । इदमिहावधेयम्—आर्यसंस्कृतौ वर्णव्यवस्था स्वीक्रियते, न तु जातिप्रथा । जन्मना जातिरिति, कर्मणा वर्ण इति । वर्णौ वृणोते । जनो यत्कर्म वृणोति स तस्य वर्णः । जातिप्रथा सदोषा हेयोपेक्ष्या च, परं वर्णव्यवस्था निर्दोषोपादेया च ।

(६) आश्रमव्यवस्था—ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्चत्वार एते आश्रमाः । स्ववयोऽनु-
रूपमाश्रममाश्रयेत्, तदाश्रमनिर्दिष्टयिमान् पालयेच्च । आपञ्चविंशतिवर्षं ब्रह्मचर्याश्रमः ।
विद्याध्ययनं तपोमयजीवनयापनं सर्वविधगुणानां संग्रहश्चाश्रमेऽस्मिन् प्रधानं कर्तव्यम् ।
आपञ्चाशद्वर्षं गृहस्थाश्रमः । भौतिकी शारीरिकी मानसिकी च समुन्नतिः,
भौतिकविषयाणामुपभोगः, दाम्पत्यजीवनयापनं वंशप्रतिष्ठायै सन्तानोत्पत्तिश्चाश्रमेऽस्मिन्
विशिष्टं कर्म । पञ्चाशद्वर्षानन्तरं वानप्रस्थाश्रमे प्रवेशः । सपत्नीकेनेश्वराराधनं, संयमपालनं,
योगादिकर्मसु विशिष्टा प्रवृत्तिश्च तत्र प्रमुखं कर्म । षष्टिवर्षानन्तरं यदैव वैराग्यभावना
समुत्पद्यते, तदैव संन्यासाश्रम आश्रयणीयः । 'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्' ।
भौतिकविषयान् परित्यज्य योगाभ्यासे रतिः, पुण्यार्जने प्रवृत्तिः, समाधौ मनसः स्थितिः,
लोकोपकरणे च विनियुक्तिः परिव्राजकानां प्रथमं कर्तव्यम् । (७) कर्मवादः—मनुष्येण
सदाऽनासक्तिभावनया कर्म कार्यमिति । कृतस्य कर्मणः फलावाप्तिः सुनिश्चिता । सत्कर्मणा
पुण्यं दुष्कर्मणा पापं चाप्नोति । 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' । 'पुण्यो वै पुण्येन
कर्मणा भवति पापः पापेनैवेति (बृहदारण्यकम्) । मानवः कर्मानुसारं शुभं वाऽशुभं वा जन्म
लभते । सुकृतं क्रियते चेत् सत्फलं लभते, दुष्कृतं क्रियते चेत् कुफलं प्राप्यते । सर्वास्ववस्थासु
कर्मणां फलमवश्यमवाप्यते । अतस्तादृशं कार्यं कार्यं यथा जीवने दुःखावाप्तिर्न स्यात् । (८)
पुनर्जन्मवादः—कर्मानुरूपं सर्वस्यापि जन्तोः पुनर्जन्म भवति । 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं

जन्म मृतस्य च' (गीता २-२७)। यो हि जायते तस्य मरणं ध्रुवमेवास्ति। मृतस्य च कर्मानुसारं पुनर्जन्म सुनिश्चितम्। यः पूर्वजन्मनि यादृशं कर्म कुरुते, सोऽस्मिन् जन्मनि तादृश एव कुले परिवारे च जन्म लभते। प्रतिभावैशिष्ट्यं विशिष्टगुणादिसमन्वितत्वं तद्वैपरीत्यं च पूर्वजन्मकृतकर्मविपाक एवेत्यवगन्तव्यम्। ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः केचन यतयो निःश्रेयसमधिगच्छन्ति। (९) मोक्षः—मोक्षावाप्तिः परमः पुरुषार्थः। मोक्षमधिगम्य न च पुनरावर्तन्ते मुनयः। केषांचित् मतेन नियतकालं निःश्रेयससुखमुपभुज्य तेऽप्यावर्तन्ते इति। ज्ञानाग्निना सर्वकर्मप्रदाहे मोक्षावाप्तिर्भवतीति। (१०) श्रुतीनां प्रामाण्यम्—वेदाश्चत्वारः स्वतःप्रमाणस्वरूपाः, ग्रन्था अन्ये तु तन्मूलकं प्रामाण्यं लभन्तेऽतस्ते परतःप्रमाणरूपाः। श्रुत्युक्तदिशा कर्मानुष्ठानेन श्रेयोऽवाप्तिस्तदन्यथाऽऽचरणेन दुःखाधिगमश्च। (११) यज्ञस्य महत्त्वम्—सर्वैरेव जनैः पञ्च यज्ञाः दैनिक-कर्तव्यत्वेनानुष्ठेयाः। यज्ञानुष्ठानेनात्म-प्रसादनं देवप्रसादनं चोभयं क्रियते। पञ्च यज्ञाः सन्ति—(क) ब्रह्मयज्ञः—सन्ध्योपासनमीश्वरोपासनं च, (ख) देवयज्ञः—दैनिकयागस्यावश्यकर्तव्यता, (ग) पितृयज्ञः—मातुः पितुश्च सततं परिचर्या, तयोराराजापालनं च, (घ) बलिवैश्वदेवयज्ञः—परिपक्रस्य भोजनस्याल्पेनांशेन मन्त्रपूर्वकमग्नावाहुतिः, कीटादिभ्योऽन्नप्रदानं च, (ङ) अतिथियज्ञः—'अतिथिदेवो भव' इति शास्त्रमनुसृत्यातिथीनां शुश्रूषा सत्करणं च। (१२) सत्यपरिपालनम्—मनसा वाचा कर्मणा सत्यमुरीकुर्यादनुतिष्ठेच्च। सर्वथा सत्यं व्यवहरेन्नासत्यम्। सत्यमेव शाश्वतं विजयं लभते नासत्यम्। तथोक्तम्—'सत्यमेव जयते नानृतम्'। (१३) अहिंसापालनम्—'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यहिंसैव श्रेष्ठधर्मत्वेनाङ्गीक्रियते। अहिंसयैव साध्या विश्वशान्तिः। जनहितं विश्वहितं चेप्सताऽजस्रं मनसा वाचा कर्मणा चाहिंसाधर्मः पालनीयः। (१४) त्यागमहत्त्वम्—अनासक्तेनात्मना जगति व्यवहरेत्। न परस्वममीप्सेत्। पुरुषार्थोपाजितमेवोपभुञ्जीत। तथा चोक्तं वेदे—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' (यजु० ४०.१)। (१५) तपोमयं जीवनम्—तपसैव शुध्यति जीवनं मनश्च प्रसीदति। भोगवासनाभिर्विषीदति स्वान्तम्। मनसो बुद्ध्याश्च परिष्काराय सततं तपोमयं जीवनं यापयेत्। (१६) मातृपितृगुरुभक्तिः—मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, इत्येषां देववत्पूज्यत्वमाख्यायते। शुश्रूषयैवैषां सिध्यति सकलमिह संसृतौ। मातुः पितृगुरूणां चादेशोऽनवरतं पालनीयः। त एव मानवस्य सर्वोत्तमं शुभचिन्तकाः। तेषामाज्ञानुसारमेव व्यवहर्तव्यम्।

विश्वहितस्य विश्वोन्नतेश्च सर्वा एव मूलभूता भावनाः संस्कृतावस्यामुपलभ्यन्ते। एतासामाश्रयणेन सर्वविधा समुन्नतिः सुलभा राष्ट्रस्य विश्वस्य च। गुणवैशिष्ट्यमेवैतस्याः समीक्ष्य समाद्रियते विश्वसंस्कृतावियम्।

१४. संस्कृतस्य रक्षार्थं प्रसारार्थं चोपायाः

सुविदितमेतत् समेषामपि शेषमुपीमतां यद् भारतीया संस्कृतिर्नाधिगन्तुं पार्यते संस्कृतज्ञानमन्तरा। संस्कृतिमन्तरेण निर्जीवं जीवनं जीविनः। संस्कृतिर्हि स्वान्तस्य संस्कृती, सद्भावानां भावयित्री, गुणगणस्य ग्राहयित्री, धैर्यस्य धारयित्री, दमस्य दात्री, सदाचारस्य संचारयित्री, दुर्गुणगणस्य दमयित्री, अविद्यान्धतमसस्यापनोदयित्री, आत्मावबोधस्यावगमयित्री, सुखस्य साधयित्री, शान्तेः सन्धात्री च काचिदनुत्तमा शक्तिः। सेयं संस्कृतिरजस्रं रक्षणीया पालनीया परिवर्धनीयेति भारतीयसंस्कृतेः समुद्धारायावबोधाय च संस्कृतज्ञानमनिवार्यम्। समग्रमपि पुरातनं भारतीयं वाङ्मयं संस्कृतमाश्रित्यावतिष्ठते, इति सुविदितम्। न केवलं भारतीय-संस्कृतिसंरक्षणार्थमेवावश्यकं संस्कृतमपि तु संस्कृतमेतत् विविधसंस्कृतिप्रसारसाधनम्, भारतीयभाषाणामभिवृद्धिहेतुः, राष्ट्रभाषायाः समुन्नतेः साधकम्, आर्यभाषाया गौरवस्य प्राणभूतम्, विश्ववाङ्मयस्य मार्गप्रदर्शकम्, जीवनदर्शनस्य दर्शकम्, आचारशास्त्रस्य शिक्षकम्, पुरुषार्थस्य प्रयोजकम्, विविधविरुद्धसंस्कृतिसमाहारसाधकम्, प्रान्तीयानां प्रादेशिकानां च विकृतीनां विवादानां संघर्षाणां च प्रशमनम्, राष्ट्रीयभावनायाः सद्वृत्ततायाश्चाभिवृद्धेर्मूलम्, वैदिकवाङ्मयालोकस्य प्रसारहेतुः, आध्यात्मिक्या भौतिक्याश्च समुन्नतेः साधनमिति सुतरामवधेया। संस्कृत्या वाङ्मयेन च विहीनस्य देशस्य जातेश्चाधःपतनमनिवार्यम्। द्वयोरेवैतयोः संरक्षणेन संवर्धनेन च समेधते श्रीः सर्वस्या अपि संसृतेः इत्येतदेवावधार्य संस्कृतस्य संरक्षणस्य प्रचारस्य प्रसारस्य च भूयस्यावश्यकताऽनुभूयते साम्प्रतम्। तद्रक्षणप्रचारप्रसारोपायाश्च समासतोऽत्र विविच्यन्ते समुपस्थाप्यन्ते च।

(१) संस्कृतकाठिन्यापनोदनम्—क्लिष्टा दुरूहा दुर्बोधा चेयं गीर्वाणगीरिति लोकानां विचारः प्रशमं नेयः। सरला सुबोधा प्रसादगुणोपेता चेयं प्रयोज्या व्यवहार्या च। सरला सुबोधैव च भाषा प्रचरति प्रसरति चेत्यवगन्तव्यम्। (२) संस्कृतव्याकरणस्य सरलीकरणम्—संस्कृतस्य प्रचारे प्रसारे च संस्कृतव्याकरणस्य काठिन्यं महद् बाधकम्। व्याकरणं सरलं कार्यम्। सूत्राणां कण्ठस्थीकरणे न बलमाधेयम्। व्याकरणनियमा अनुवादद्वारा प्रयोगशैल्या च शिक्षणीयाः। प्रयोगशैल्याऽवगता नियमास्तथा बद्धमूला भवन्ति, यथा नान्येनोपायेन। (३) नवशब्दानामात्मसात्करणम्—विविधासु भाषासु प्रयुज्यमाना नवभावावबोधका नव्याः शब्दाः संस्कृशब्दावल्यां संस्कृतस्वरूपप्रदानद्वारा आत्मसात्करणीयाः। संसृतौ व्यवहियमाणाः सर्वा एव प्रमुखा भाषाः शैलीमिमामाश्रयन्ते। प्रकारेणैतेन तासां भाषाणां प्रगतिरुद्गतिर्जागृतिश्च संसूच्यते। समादृताऽऽसीत् शैलीयं प्राक् संस्कृतेऽपि। (४) नवभावावबोधनम्—विश्वसाहित्ये प्रयुज्यमानाः सर्वेऽपि भावाः सहर्षमाश्रयणीया प्रयोज्याश्च। नवभावावबोधनार्थं नूतना शब्दावली

प्रयोज्या निर्मातव्या वा । विदेशीयनवशब्दग्रहणेऽपि न संकोच-प्रवृत्तिरास्थेया । (५) **संस्कृत-भाषाव्यवहारः**—जीविता जागृता च सैव भाषा या लोके व्यवहियते प्रयुज्यते च । संस्कृतभाषायाः प्रचाराय प्रसाराय चानिर्वार्यमेतद् यत् संस्कृतज्ञाः संस्कृतमाश्रित्यैव व्यवहरेयुः । भाषणे लेखने वादे विवादे संलापे पत्रादिव्यवहारे च संस्कृतमेव प्रयुञ्जीरन् । (६) **नवग्रन्थरचना**—नवीनान् विषयानाश्रित्य संस्कृते नवग्रन्थरचना स्यात् । साम्प्रतिके काले प्रचलिताः सर्वेऽपि विषयाः संस्कृतमाध्यमेन सुलभाः स्युः । एतदर्थं विविधविद्यानिष्णाताः संस्कृतज्ञाः सविशेषमुत्तरदायित्वं भजन्ते । तेषां चैतत्पावनं कर्म । (७) **नवविषयाध्ययनम्**—संस्कृतज्ञानां कृतेऽनिर्वार्यमेतद् यत् संस्कृताध्ययनेन सहैव भूगोलमैतिह्यं विज्ञानादिविषयान् विदेशीया भाषाश्चाधीयीरन् । विविधविद्याऽध्ययनमन्तरेणाशक्यं धियो विस्फुरणम् । (८) **अन्वेषणकार्यम्**—संस्कृतेऽन्वेषणकार्यस्य महत्वावश्यकता । अन्वेषणकार्यमेव गौरवाधायि । अन्वेषणेनैव वाङ्मयस्य महत्त्वमुत्कर्षश्चावगम्यते । एतदर्थं महान् श्रमोऽपेक्ष्यते । (९) **संस्कृतग्रन्थानामनुवादः**—संस्कृतस्य प्रचारार्थं प्रसारार्थं चावश्यकमदो यत् सर्वेषामपि प्रमुखानां संस्कृतग्रन्थानां न केवलं भारतीयासु भाषास्वेव प्रामाणिकोऽनुवादः स्यादपि तु विश्वस्य सर्वास्वेव प्रधानासु भाषासु तेषामनुवादः स्यात् । कार्यं चैतत् सर्वकारप्रयत्नेन तत्सहयोगेन च सम्भवति । (१०) **सुलभग्रन्थमालाप्रकाशनम्**—सर्वेषामेव प्रमुखानामुपयोगिनां च संस्कृतग्रन्थानां सानुवादोऽल्पमूल्यकं संस्करणं प्रकाशितं स्यात् । महार्घाणां चाकरग्रन्थानां सारांशरूपं संस्करणं सानुवादं प्रचारार्थं प्रकाशितं स्यात् । (११) **वैज्ञानिकशैली-समाश्रयणम्**—वैज्ञानिकी शैलीं समाश्रित्य संस्कृतं प्रारिप्सूनां बालानां संस्कृतप्रेमिणां च कृते सुबोधा हृद्याश्च ग्रन्थाः प्रणेयाः । (१२) **संस्कृतस्यानिर्वार्यशिक्षणम्**—आर्य (हिन्दी)-भाषया सहैव संस्कृतमपि सर्वेषु विद्यालयेष्वनिवार्यं स्यात् । संस्कृतमूलकमेव हिन्दीभाषाज्ञानं श्रेयोवहमिति समेषां सुधियामत्रैकमत्यम् । (१३) **पठनपाठनपद्धतिपरिष्कारः**—संस्कृतस्य प्रचारार्थमावश्यकमेतद् यत् संस्कृतस्य पठनपाठनप्रणाली साम्प्रतिकीं वैज्ञानिकीं पद्धतिमनुसरेत् । तत्र च स्यादावश्यकः परिष्कारः । (१४) **विलुप्तग्रन्थोद्धारः**—संस्कृतस्यानेके महार्घा ग्रन्था विलुप्ता विलुप्तप्राया जीर्णाः शीर्णा वा यत्र तत्रोपलभ्यन्ते । तेषामभ्युद्धार आवश्यकः । (१५) **सर्वकारसहयोगः**—सर्वमुपरिष्ठादभिहितं सर्वकारसहयोगेनैव सम्भवति । सर्वकारस्य कर्तव्यमेतद् यत् स संस्कृतज्ञान् आद्रियेत, संस्कृतवाङ्मयप्रसारे साहाय्यमाचरेत्, राजकीयवृत्तिषु संस्कृतज्ञानमनिवार्यं कुर्यात्, संस्कृतशिक्षोद्दारे प्रयतेत च ।

१५. कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्तता वा (मेघ० उत्तर० ४९)

निखिलं जगदिदं परिवर्तनशालि। प्रतिक्षणं प्रतिपलं सर्वोऽपि भूतग्रामः स्वात्मनि परिवृत्तिमनुभवति। परिवृत्तिधर्मत्वमेवास्य भुवनस्य विलोकं विलोकं विपश्चिद्भिः 'गच्छतीति जगत्' इति निर्वचनमाश्रित्य जगदिति नामधेयं विहितम्। 'संसरति गच्छति चलति वेति संसारः संसृतिर्वा' इति व्युत्पत्तिनिमित्तकं संसारः संसृतिरिति च नामद्वयं प्रवर्तितं कोविदैः। जगत्, संसारः, संसृतिरित्यादयः शब्दाः समुद्घोषयन्ति संसारस्य परिवर्तनशालित्वम्। नेह किञ्चिद् वस्तु शाश्वतं स्थिरमपरिवर्तनशीलं वा। यदा सर्वस्य लोकस्येदृश्यवस्था, तदा न सम्भवति मानवजीवनस्यापरिवृत्तित्वम्, तत्रापि च सुखस्य दुःखस्य वा समावस्थया समवस्थानम्।

जगति यथर्तवः परिवर्तन्ते, यथा सप्तसप्तिरुदेति विधुरस्तमेति, निशाकरश्चोदयं याति प्रभाकरश्चास्तमुपगच्छति, यथा रात्रेरनन्तरं दिनं दिवसानन्तरं च विभावरी, तथैव सुखानन्तरं दुःखं दुःखानन्तरं च सुखम्, सम्पदनन्तरं विपद् विपदनन्तरं च सम्पदिति। सर्वमेतत् परिवर्तनस्य क्रममात्रम्। एतदेव तथ्यं समीक्ष्य सन्दिशति शाकुन्तले कविकुलगुरुः कालिदासः। 'यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्, आविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः। तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां, लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु'॥ (शाकु० ४.२)। उत्थानं पतनम्, उत्कर्षोऽपकर्षः, जन्म मृत्युः, सम्पत्तिर्विपत्तिः, सुखं दुःखमिति च परिवृत्तेरवस्थान्तरमेव नान्यत्। यथा शैशवं तदनु पौवनं तदनु वार्धकं तदनु देहावसानं तदनु जन्मान्तरं तदनु पुनः शैशवम्, एवमेव जीवने सुखदुःखे परिवर्तते, परिवृत्तेरवश्यम्भावित्वाद् अनिवार्यत्वाच्च।

सम्भवति परिवर्तनेऽस्मिन् केषामप्यापत्तिरनिष्टापत्तिर्वा। परं निपुणं विचार्यते तर्हि प्रतीयते परिवृत्तेः सुतरमावश्यकतोपयोगिता च। भुवनेऽस्मिन् नाभविष्यत् परिवर्तनं चेन्नाभविष्यत् प्रगतिरुन्नतिरभ्युदयश्च लोकानाम्। ऋतूनां परिवृत्तिमन्तरेण नाभविष्यद् वसन्तो ग्रीष्मो वर्षा वा। न चेदभविष्यत् सुवृष्टिर्नाभविष्यत् सुभिक्षम्। नाभविष्यच्चेद् दुःखं नानुभूतमभविष्यत् सुखम्। दुःखस्य सत्तैव सुखनुभावयति, सुखस्य सत्ता च दुःखम्। सुखदुःखस्य समवस्थानमावश्यकम्। यद्येको यावज्जीवं सुखं सम्पत्तिमेवानुभवेदन्यश्च दुःखं विपत्तिमेव वा, तर्हि न प्रसरिष्यति लोकस्थितिः। कर्मणामावश्यकतोपयोगिता चानुभूयते सर्वैरेव। कर्मविपाकोऽपि नियतोऽतः कर्मानुरूपं कश्चित् स्वकृतसुकृतपरिपाकरूपेण सुखमधिगच्छति, तद्विपर्ययेण च दुःखम्। सुखदुःखं परिवर्तमानमेतत् सुतरां शिक्षयति निखिलं जगत् सुकृत्यस्य सत्परिणामित्वं दुष्कृत्यस्य च दुष्परिणामित्वम्।

परिवृत्तेरेतस्य महत्त्वमालोक्यैव महाकविभिर्विविधाः सूक्तयो विषयेऽस्मिन् वर्णिताः। यथा च—(क) 'कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा

चक्रनेमिक्रमेण'। (मेघ० २.४९)। (ख) 'अतोऽपि नैकान्तसुखोऽस्ति कश्चिन्नैकान्तदुःखः पुरुषः पृथिव्याम्'। (बुद्धचरितम् ११.४३)। (ग) 'कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना, चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः'। (स्वप्न० १.४)। (घ) 'भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति'। (मृच्छ० १.१३)। (ङ) 'चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च'। (हितो० १.१७३)

किं नाम सुखं, किञ्च दुःखमिति। सुखदुःखस्य बहूनि लक्षणानि वर्णयन्ते विविधैः शास्त्रकारैः। भगवान् मनुरत्र निर्दिशति यत् सर्वमात्माधीनं सुखम्, आत्मायत्तत्वं वा सुखत्वमिति, परायत्तत्वं च दुःखमिति। तदाह—'सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्। एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः'। (मनु० ४.१६०)। केचन चान्ये सुखदुःखयोर्लक्षणं निगदन्ति। सु सुष्ठु सुखकरं वा खेभ्य इन्द्रियेभ्य इति सुखम्, ज्ञानेन्द्रियेभ्यः सुखकरं यत् तत्सुखमिति। एवमेव ज्ञानेन्द्रियेभ्यो दुःखकरं यत् तददुःखमिति। मन्मत्या तु लक्षणान्तरमपि शब्दयोरनयोः सम्भवति। सुष्ठु खानि सुखानि, दुष्टानि खानि दुःखानीति। इन्द्रियाणि चेत् संयतानि तर्हि सर्वमपि विषयजातं सुखत्वमापद्यते। दुष्टानि चेदिन्द्रियाणि तर्हि सर्वोऽपि विषयग्रामो दुःखत्वेनापतति। इत्थं सुखदुःखशब्दद्वयमेवेन्द्रियसंयमस्य महत्त्वमुपदिशति।

सुखवद् दुःखस्यापि जीवनेऽनल्पं महत्त्वम्। दुःखनिशीथिनीं धृत्योत्तीर्यैव धीराः श्री-कौमुदीमाकाङ्क्षन्ति। अनुभूय दुःखं न सुखं साधूपभुज्यते। अतः साधूच्यते—'सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते' (मृच्छ० १.१०), 'यदेवोपनतं दुःखात् सुखं तदरसवत्तरम्' (विक्रमो० ३.२१)। समीक्ष्यते चैतत्प्रत्यहं यत्र सुखं सुलभं दुःखानुभूतिमन्तरा प्रत्यवायमन्तरेण च। दुःखमनुभूय प्रत्यूहान् निरस्य च श्रेयः सुलभम्। अत एवाभिधीयते—'श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनान्तरायैः' (किरता० ५.४९), 'विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः' (शाकु० अंक ३)।

कर्मविपाकस्य बलीयस्त्वात् समापतति चेद् दुःखं तर्हि किं नु विधेयं वराकेण विपद्ग्रस्तेन। दुःखोदधौ निमग्नेन धैर्यमेवावलम्बनीयम्। धैर्यमाश्रित्यैव धीरा विपत्पारावारमुत्तरन्ति। पारावारे पोतभङ्गेऽपि सांयात्रिको धृतिमवष्टभ्य तृतीयेत्येव। उक्तं च—'त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले, धैर्यात् कदाचिद् गतिमाप्नुयात् सः। याते समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे, सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव'॥ घोरे दुःखेऽपि नर आत्मशक्तिमाश्रयते चेत् स दुःखप्रहाणिं कर्तुं प्रभवति। नहि किञ्चिदसाध्यमात्मशक्त्या। आत्मशक्तिर्हि सर्वोदयस्य मूलम्। सा दुःखविभावरीं स्वप्रखरांशुभिः सद्यः संहरति। अत उच्यते—'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः'॥ 'धैर्यधना हि साधवः'। ते सम्पदि न हृष्यन्ति, न च विपदि विषीदन्ति। अतः सुखदुःखे समे कृत्वा प्रवर्तते। सम्पदि विपदि च महतामेकरूपतैव लक्ष्यते। यथा चोच्यते—'उदेति सविता ताप्रस्ताप्र एवास्तमेति च। सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता'॥ अतः सम्पदि न हृष्येत्, न च विपदि विषीदेत्। विपदि धैर्यमाधाय चेतसि स्वीयं कर्तव्यमतिवाहयेत्।

१६. नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।

शब्दार्थो सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ॥ (शिशु० २.८६)

दैवस्योद्योगस्य च गुरुलाघवं बलाबलं च निश्चिन्वतां विपश्चितामस्ति गरीयसी विप्रतिपत्तिर्विषयेऽस्मिन् । केचन दिष्ट्या दैवस्य वा महात्म्यमुद्धोषयन्ति, ते दैष्टिका इत्यभिधीयन्ते । अन्ये पौरुषस्य महत्त्वमाचक्षाणाः पुरुषार्थमेव सिद्धेः सोपानत्वेनाङ्गीकुर्वन्ति । ईदृशे महति विरोधे वर्तमाने केचन मनीषिणो द्वयोरेव समन्वयं श्रेयस्करमाचक्षते । विचारणीयं तावदेतद् यत्कतमा सरणिरिह साधीयसी । यामलम्ब्य सकलो लोको भुवनेऽस्मिन् भव्यां भूतिं समासाद्य चिरसञ्चितपुण्यपरिपाकसम्प्राप्तस्य मानवजीवनस्यास्य चरितार्थतां सम्पादयन् ऐहिकमामुष्मिकं चोभयं क्षेममधिगच्छति ।

विमृश्यते तावद् दिष्ट्या एव बलाबलत्वं प्राक् । का नाम दिष्टिः, कथं च प्रभवत्येषा जीवलोकस्योदयास्तमयस्योत्कर्षाकर्षस्य पातोत्पातस्य वा । यदि विचारदृशा निपुणं परीक्ष्यते तर्हि न भूयान् भेदोऽनयोः । प्राकृतस्य कर्मण एव नामान्तरं दिष्टिरिति दैवमिति भाग्यमिति वा । अतः साधूच्यते—‘पूर्वजन्मकृतं कर्म तद् दैवमिति कथ्यते’ । दिष्टिरेव साधकत्वेन बाधकत्वेन वोपतिष्ठते निखिलेषु क्रियमाणेषु कर्मसु । अतः कर्मणां सिद्धिरसिद्धिर्वा दैवाधीनेति व्यवहियते । प्राकृत-कर्मफलपरिपाको नियतोऽतो नियतिरिति च दैवस्य नामान्तरं भवति । न च नियतिः साम्प्रतिकैः कर्मभिरन्यथा भवितुमर्हतीति नियतेर्नियोगोऽधृष्य इति गण्यते । अत्र दैष्टिका उदाहरन्ति—सूर्याचन्द्रमसौ तेजसां वरिष्ठौ नियत्यधीनत्वादेवास्तं समुपगच्छतः । विद्यां पौरुषं चाननुरुध्य लोको दैवानुरूपमेव फलमश्नुते । सुरासुरकृतसमुद्रमन्थने समेऽपि भागे प्राप्तव्ये हरिर्लक्ष्मीं लेभे, हरस्तु हालाहलमेव । उक्तं च—‘दैवं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम् । समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम् ॥’

प्रतिकूलतामुपगते हि दैवे न मनागपि सिध्यति साध्यम् । अतएवाह माघः—
“प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता । अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ।” तादृशं दैवस्य प्राबल्यं यज्जनस्य चेतश्चेतयते तदेव यद् दैवमभिलष्यति । अत आह श्रीहर्षः—“अवश्यमव्येष्वनवग्रहग्रहा यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा । तृणेन वात्येव तयाऽनुगम्यते जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना ।” विरुद्धे हि विधौ श्रमसहस्रमपि वितथं स्यात् । भाग्येऽनुकूले दोषा अपि गुणत्वमायान्ति । उक्तं च—“गुणोऽपि दोषतां याति वक्राभूते विधातरि । सानुकूले पुनस्तस्मिन् दोषोऽपि च गुणायते ।” दुःखानि सुखानि च भाग्यानुसारमेव सम्भवन्ति । उच्यते च—‘भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति’ । दैवानुसारमेव मनुष्यस्य बुद्धिवृत्तिरपि सम्पद्यते । विधिश्चाघटितघटनापटुर्घटितस्य विघटने च दक्षः । ‘अघटितघटितं घटयति, सुघटित-

घटितानि दुर्घटीकुरुते। विधिरेव तानि घटयति, यानि पुमान्नैव चिन्तयति।' सिद्धिरसिद्धिश्च दिष्ट्यनुरूपमेव परिणमतः।

अवितथमेतद्यद् दैवं फलति, सिद्धिश्च दैवाधीना। परन्त्ववगन्तव्यमेतद् यत् पूर्वकृतकर्मपरिपाक एव दैवमिति, नान्यत्। यदि सुनिश्चितमेतदवधारितं तर्हि भाग्यमनुकूलयितुं भवतितराम् आवश्यकता सुविचारितस्य कर्मणः कठिनस्य श्रमस्य च। अतएवावितथमाह श्रीकृष्णो गीतायाम्—'नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः'। कर्म च कर्मफलासक्तिं विहायैव कार्यम्। तदेव साफल्यं लभ्ययति। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि'। सत्फलं तपसा श्रमेण सुचरितेन च लभ्यम्। तदेव च परिणमति काले। 'भाग्यानि पूर्वतपसा किल सञ्चितानि, काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः'। भाग्याद् गुरुरतं कर्म, तदेव फलति, तदेव चोपास्यम्। 'नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति'।

जगति समेषामपि सत्त्वानां नैसर्गिकी इयमभिवाञ्छा यत् स्याद् दुःखात्ययः सुखाधिगमश्च। का नु वरीयसी सृतिरिह स्वीकार्या साध्यमेतत् साधयितुम्। शान्तेन स्वान्तेन चिन्त्यते चेत्तर्हि पुरुषार्थमन्तरा न साधनान्तरं दृष्टिपथमुपयाति। धीरा वा, वीरा वा, मनीषिणो वा, वाग्वैभवसम्पन्ना वागिमनो वा, कविताकामिनीकान्ताः कविवरा वा, सर्वेऽपि पौरुमाश्रित्यैवाभीष्टां सिद्धिमधिजग्मुः। अकर्मण्यताऽऽलस्यं पौरुषहीनत्वं दैष्टिकता चाऽत्र प्रत्यवायरूपेणावतिष्ठन्ते। यद्यस्ति हार्दिकी सुखलिप्सा, अभीष्टमात्महितं, चिकीर्षितं परहितं, काङ्क्षितं कुलहितं, वाञ्छितं विश्वहितं, समीहितं समाजसुखं वा तर्हि आलस्यं नाम रिपुरपनेयश्चेतसोऽपहरणीयाऽकर्मण्यता-ऽपहस्तयितव्यं चापौरुषत्वम्। उद्यम उद्योगोऽध्यवसायो वा मानवस्यानुपमो बन्धुः। यमवष्टभ्य यदभिलषितं तदधिगम्यते। तथा चोच्यते—'आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः। नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति'। योगवासिष्ठेऽप्यभिधीयते—'पौरुषाद् दृश्यते सिद्धिः पौरुषाद् धीमतां क्रमः'। यावज्जीवं जीवः कर्मनिरतोऽध्यवसायपरश्च स्यात्, कर्मफलासक्तिं च परिहरेन्मनसेत्यादिशति वेदः। पथाऽनेनैवाभीप्सितमखिलं सिध्यति सताम्। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छेत ५ समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे' (यजु० ४०.२)। या काऽपि सिद्धिरभीष्टा, साऽविकला शक्यते लब्धुमुद्यमेनैवेति चेच्चेतसि क्रियते तर्हि नालभ्यं किञ्चिदस्ति जगति। अतः साधूक्तम्—'उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः'। 'उद्योगिनं पुरुषसिहमुपैति लक्ष्मीः'। अध्यवसायिन एव साहाय्यमाचरति विभुरपि। यथा चोक्तम्—'उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः। षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्'।

पक्षद्वयस्य बलाबलत्वविवेचनेन सिध्यत्यदो यत् सुविचार्य कृतमवदातं कर्म साधयति साध्यमिह जगति। तदेव च संस्काररूपेणावशिष्टं दैवमिति भवति, प्रवर्तयति च भाविकर्मजातम्। अत उभयस्याश्रयणं न्याय्यम्।

१७. सहसा विदधीत न क्रियाम् (किराता० २.३०)

महाकवेर्भारवेर्महाकाव्ये किरातार्जुनीये सन्ति शतशः सूक्तिमुक्ताः। तत्रापि द्वित्राः सन्ति सूक्तयो याश्चकासति तरणिश्रियमिव। तास्वप्यन्यतमैषा सूक्तिः। सूक्तं तेन महाकविना यन्न जनः कोऽपि सहसा किमपि विधेयं विदधीत, यतो ह्यविवेकः परमापदां पदमस्ति। ये च विमृश्यकारिणो भवन्ति त एव श्रियः श्रयन्ते। तथोक्तं तेन—‘सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पदः।’

को नाम विवेकः? कश्चाविवेकः? क उपयोगो विवेकस्य? किमिह साध्यं विवेकेन? यदि नोपादीयतेऽयं कथमिव विपदां निदानत्वेन परिणमते? विवेचनमेव विवेक इति। सदसतोः पुण्यापुण्ययोः कर्तव्याकर्तव्ययोर्हेयोपादेययोश्च येन विधिवद् विवेचनं क्रियते स विवेक इत्यभिधीयते। इतरश्चाविवेक इत्याख्यायते। विवेकस्य महत्युपयोगिता जीवनेऽस्मिन्। विवेक एव सदसतोः पापपुण्ययोः कर्माकर्मणोश्च फलाफलं गुरुलाघवं च चिन्तयति। स एव किं ग्राह्यं किं हेयं किञ्चोपेक्ष्यमिति सन्दिशति। विवेक एवेह जगति ज्ञानमिति, बुद्धिरिति, धीरिति च व्यवहियते। विवेकमन्तरेण न भूयान् भेदो मनुष्येषु पशुषु च। अस्ति भानवे विवेकशक्तिः। यया सोऽर्थमनर्थं च बहुधा विभाव्यार्थसाधकमुपादतेऽनर्थसाधकं चोद्गति। जीवने हि सर्वस्येष्टं सुखम्। सर्वो हि यतते सुखावाप्तये। नहि दुर्जनोऽपि खलोऽपि मूढोऽपि हीनेन्द्रियोऽपि दुःखमिष्टत्वेन गणयति। सोऽपि सुखमेव कामयते, यतते च तल्लाभाय। अङ्गीकृतायामीदृश्यामवस्थायां को नु मार्गो यः सुखसाधकत्वेन प्रवर्तते। विचारचक्षुषा चिन्त्यते चेद् विवेकस्य महत्त्वं स्फुटं प्रतीयते। सर्वमपि साध्यं साध्यते विवेकेनैव। विवेकपूर्वा कृतिरेव लभ्यति श्रियम्। विवेकः सुखस्य मूलम्, शान्तेर्विधानम्, धृत्या निदानम्, श्रिय आश्रयः, गुणानामागारम्, विभवस्य भूमिः, उन्नतेः साधनम्, सत्कर्मणामाकरः, विनयस्य कारणम्, शीलस्य सन्धायकश्च। विवेक उपादत्तश्चेद् न जीवनेऽवसादावसरः। अनुपादत्तश्चेदयं प्रतिपलं प्रतिपदं चोपतिष्ठन्ते विपदो दुःखानि प्रत्यूहाश्च।

ये हि विपश्चितो विचारशीलाश्च ते प्रतिपदं सम्यगवधार्य वस्तुस्थितिं शान्तेन स्वान्तेन कर्तव्यस्याकर्तव्यस्य च गुरुलाघवं विमृश्य यद् हितसाधकं सुखकारकं च तदेवोपाददते। नहि भयाद् वा हिंसा वा सहसा वा किञ्चित्तेऽनुतिष्ठन्ति। यत्कर्म सुविचार्य क्रियते तत् सत्फलमादधाति। अत उच्यते—‘सुचित्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं, सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्’ (हितोपदेशः १.२२)। ये चाविचार्य कर्मणि प्रवर्तन्ते, तेषां प्रवृत्तिरज्ञानमूला। अज्ञानं हि सर्वासामापदामास्पदम्। अज्ञानावृतत्वात् तेषां कर्मणां दुःखावाप्तिरेव सुलभा। तादृशा जना दिङ्मूढा इव सुखं दुःखमिति मन्यन्ते, दुःखं च सुखम्, पापं सुखसाधनमिति, पुण्यं च दुःखसाधनमिति। एवं ते व्यसनशतशरव्यतामुपगच्छन्ति, प्रत्यहमवनतिं चोपगच्छन्ति। अत उक्तं भर्तृहरिणा—‘विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः’ (नीति० १०)।

विपश्चितो हि विचार्य सर्वमपि क्रियाकलापं कर्मणि प्रवर्तन्ते। सुधियाम् अवनिभृतां चैष परमो गुणो यद् विमृश्य ते कर्मसु प्रवृत्तिमादधते। भूभृतां मन्त्रशक्तिर्विचारमूलैव। किं कार्यं कश्च

तस्योपाय इति भृशं विविच्य ते कर्तव्यं कर्म निश्चिन्वन्ति । यद्यविचार्यैव निश्चीयते किञ्चित् तर्हि तत्फलं दुःखावहमेव भविता । एवं विद्वांसोऽपि यत् किञ्चिदपि स्यात् कर्तव्यं तत्र परिणतिं प्रधानतोऽवधारयन्ति । नहि ते सहसा कर्तव्यमकर्तव्यं वा विनिश्चित्य कर्मसु प्रवर्तन्ते । सहसा विहितं विधेयं दुःखं लम्भयति, चेतसि च शल्यतुल्यमाघातं विधत्ते । अतः साधूक्तं केनापि— 'गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ, परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन । अतिरभसकृतानां कर्मणामविपत्तेर्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः' ।

एष एवाभिप्रायश्चरकसंहितायामप्युपलभ्यते—'परीक्ष्यकारिणो हि कुशला भवन्ति' । 'नापरीक्षितमभिनविशेत' 'सम्यक्प्रयोगनिमित्ता हि सर्वकर्मणां सिद्धिरिष्टा । व्यापच्चासम्यक्-प्रयोगनिमित्ता' । भगवता चरकेनापि कर्तव्यस्य कर्मणः परीक्षणमनिवार्यत्वेन गण्यते । यदि सम्यग् विचार्य कर्तव्यं निर्धार्यते तर्हि तस्य साफल्यमपि प्रागेवानुमातुं पार्यते । अविचार्य कृते कर्मणि न केवलमसाफल्यमेव, विपद् शरीरक्लेशः साधनात्ययः प्रत्यवायावाप्तिश्च । महाभारतेऽपि व्यासेन सुविचार्य कर्मप्रवृत्तिरुपदिष्टा । विमृश्यकारी सुखमेधते, श्रियमश्नुते, प्रत्यूहानपहन्ति, विपद् विदारयति, साध्यं साधयति । उक्तं च महाभारते—'चिरकारक भद्रं ते, भद्रं ते चिरकारक' ।

अनालोच्य शुभाशुभं जनो यत् कर्मणि प्रवर्तते, तस्य मूलमज्ञानमेव । अज्ञानावृतचेतसो हि मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः प्राज्ञमन्याः कर्तव्याकर्तव्यविवेचनमप्यात्मप्रज्ञापरिभ्रवत्वेनाकलयन्ति, न शुश्रूषन्ते साधूनामुपदिष्टम्, क्रियाविलम्बमन्तरायान्तरणमवगच्छन्ति, क्षिप्रकारित्वं च श्रियः साधनं गणयन्ति । एवंविधयाऽऽत्मविडम्बनया विप्रलब्धास्तेऽतिरभसकारित्वाद् न केवलं विपत्पारावार एव निमज्जन्ति, अपितु सर्वलोकस्योपहास्यतामवाप्य दुःखदुःखेन कालमतिवाहयन्ति । केचन हतबुद्धित्वाद् अज्ञानतमःप्रसरेण च पीड्यमाना यथैवोपदिश्यते परैस्तथैवाचर्यते तैः । न ते स्वविवेकोपयोगेन साध्वसाधु वा निर्णेतुमध्यवस्यन्ति । परिणतिस्तु तस्य विपदुपताप एव । अतो निगदितं कालिदासेन—'सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते । मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः' ।

विवेकमूलः सुविचारश्चेदाश्रीयते आश्रयत्वेन, नह्यसाध्यमिह किञ्चिज्जगति । प्रत्यहं समीक्ष्यते सर्वस्यां संसृतां देशैरनेकैः स्वराष्ट्रोद्धाराय प्रवर्त्यमाना विविधा योजनाः । भारतेऽपि पञ्चवर्षीया योजनाः प्रयुक्तचराः प्रयुज्यमानाः प्रयोक्ष्यमाणाश्चावेक्ष्यन्ते । विवेकमूलत्वादेवैतासां साफल्यमिष्यते, सम्भाव्यते च । विपश्चितोऽपि विवेकजीवित्वात् जीवनस्य कार्यक्रमं विमृश्यावधारयन्ति । अध्यवसायावसिक्तेन मनसा मुहुर्मुहुर्हृतमानास्ते स्वाभीप्सितमाश्रयन्ते ।

भारतीयैतिह्यमीक्ष्यते चेत् तत्राप्यविचार्यकारित्वादेव विविधा विपदो वीक्ष्यन्ते । दाशरथी रामः सुवर्णमृगं प्रेक्ष्याविचार्यकारित्वादेव तमन्वधावत् । तत्कृत्यं च तस्य जानकीहरणत्वेन परिणमे । गुरुलाघवमविमृश्यैव रावणोऽपि सीताहरणे प्रवृत्तो निधनमवाप्तश्च सबान्धवः । अविवेकमाश्रित्यैव दुर्योधनोऽपि सूच्यग्रमात्रभूपदानेऽपि कार्पण्यं भजे । तद्विपाकत्वेन महाभारतसमरे सपरिवारः सपरिजनः स्वेष्टजनसहितः सकलामवनिं विहाय दिवमशिश्रियत् । अतो विचार्यैव कृतिरनुष्ठेया, अतिरभसत्वं च विपन्मूलकत्वेन परिहरणीयम् ।

१८. ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः

(किराता० २.२०)

सूक्तिमुक्तेयमुपलभ्यते महाकवेभारवेः कृतौ किरातार्जुनीये। कविरिहोपदिशति तेजस्विताया मानितायाश्च महत्त्वम्। प्रज्वलितमग्निमाक्रमितुं नोत्सहते धृष्टोऽपि कश्चित्, परं भस्मनां पुञ्जं लघुरपि जनः प्रभवत्याक्रमितुम्। कोऽत्र भेदः ? प्रदीप्तोऽग्निर्दाहगुणसमवेतस्तेजसा समन्वितश्च प्रभवति दग्धुं निखिलं जगदिदम्। तत्तेजस्तनोति साध्वसमतुलं स्वान्तेऽपि सन्नासकस्य। न धृणोति धृष्टोऽपि धार्ष्ट्यमाधातुं मनसि कृशानुधर्षणस्य। भस्मानि तु निस्तेजांसि। नानुभवन्ति तानि मानावमानम्। अतस्तेषां धर्षणं शक्यम्। एवमेव मानिनोऽपि सहर्षमसूनुञ्जन्ति, न तु स्वतेजस्त्यजन्ति। अतो निगद्यते भारविणा—‘ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः। अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुञ्जन्ति न धाम मानिनः’ (किराता० २.२०)

किं नाम जीवनम् ? किं नाम पुरुषत्वम् ? के गुणास्ते ये जीवनं साफल्यं लम्भयन्ति, पुरुषे पौरुषञ्चादधति ? तदेव जीवनं येन स्थासु यशश्चीयते, सुखमुपभुज्यते, शान्तिः स्थिरीक्रियते। तदेव पुरुषत्वं यत्र तेजः स्वाभिमानिता पौरुषं च प्राधान्येनाश्रयं लभन्ते। तेजस्विता मानिता गुणार्जनं श्रीसंग्रहश्चेति गुणाः सर्वेषामेव जीवनानि सफलयन्ति, पुरुषे पौरुषमाविष्कुर्वन्ति च। भारविलक्षयति पुरुषत्वं यन्मानित्वमेव प्रधानं पुरुषस्य लक्षणम्, मानविहीनो न नरः। ‘पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानात्र हीयते’ (कि० ११.६१)। विजहाति चेन्मानं स तृणवदगण्यो निरर्थकं च तस्य जन्म। ‘जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः’ (कि० ११.५९)।

मानश्चेदभीप्सितः, कस्तदवाप्त्युपायः ? भारविस्तदवाप्तिसाधनमभिदधाति तेज इति। ‘स्थिता तेजसि मानिता’ (कि० १५.२१)। तेजस्वितागुणमेवावष्टभ्य मानिता प्रवर्तते प्रवर्धते च। यत्र तेजस्विता तत्रैव यशः श्रीगुणगणाश्च। तेजस्विनो हि विराजन्ते तरणिवदाभया। ते दुष्करमपि सुकरं दुर्गममपि सुगमं दुर्लभमपि सुलभं दुःसहमपि सुसहं सम्पादयन्ति। न तेषां वयो विचार्यते। बाल एव रामः खरदूषणवधं विधातुमशकत्। अत आह कालिदासः—‘तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते’ (रघु० ११.१)। यश्च तेजसा परिहीयते परिक्षीयते तत्र मानिता। मानपरिक्षये च सर्वे गुणा अपि तत्र क्षयमेव भजन्ते। निर्वाणे तु दीपके ज्योतिरपि तदाश्रयमुञ्जति। तदाह—‘तेजोविहीनं विजहाति दर्पः, शान्तार्चिषं दीपमिव प्रकाशः’ (कि० १७.१६)। निस्तेजाः सर्वत्रैवावगण्यते परिभूयते धिक् क्रियते धृष्यते च। तस्य निस्तेजस्त्वमजस्रमवमानमावहति। अतो निगदितं भासेन—‘मृदुः परिभूयते’ (प्रतिमा० १.१८)। उक्तं च मृच्छकटिके शूद्रकेण—‘निस्तेजाः परिभूयते’ (१.१४)। तेजसा सममेव समेधते स्वावलम्बनस्य साधीयसी साधना। तेजस्विनो न पराश्रयमपेक्षन्ते, न च परसाहाय्यमेव समीहन्ते। ते स्वतेजसा जगद् व्याप्नुवन्ति। तदुच्यते—‘लघयन् खलु तेजसा जगन् महानिच्छति भूतिमन्यतः’ (किराता० २.१८)।

महाकविना माघेनापि तेजस्विताया मानितायाश्च महत्त्वं बहुधा वर्णितम्। मानिनोऽवमन्तून् समूलमुन्मूल्यैव शान्तिं श्रयन्ते, यथा सप्तसप्तिः समस्तं नैशं तिमिरमपाकृत्यैवोदेति। ‘समूलाघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः। प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रविः’। (शिशु०

२.३३) परावमानं यः सहते, न स पुंशब्दभाक्। तादृशस्य नराधमस्याजनिरेव श्रेयसी। स केवलं मातृक्लेशकारी। 'मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति'। (शि० २.४५)। पादाहतं रजोऽप्युत्थाय मूर्धानमारोहति। योऽपमानेऽपि गतव्यथः स रजसोऽपि हीनः। 'पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति। स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वरं रजः'। (शि० २.४६)। तिग्मता प्रतापाय मृदिमा परिभवाय चेति स्फुटं समीक्ष्यते। राहुर्द्रुतं ग्रसते चन्द्रम्, भानुं च चिरेण। 'तुल्येऽपराधे तन्मृदिमः स्फुटं फलम्' (शि० २.४९)।

महाकविना कालिदासेनापि तेजस्विताया महिमोरीक्रियतेऽभिधीयते च। ऋषयः शान्तिसमन्विता अपि तेजोमयाः। सति चाभिभवे सूर्यकान्तमणिवद् उद्गिरन्ति तेजः। न ते सहन्तेऽभिभवं जातु। 'शमप्रदानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः'। (शाकु० २.७)। सत्याभिभवे प्रज्वलति जातवेदाः, सति च परिभवे तेजस्विनोऽपि स्वमुग्रं रूपं धारयन्ति। 'ज्वलति चलितेऽन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पत्रगः फणां कुरुते। प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः'। (शा० ६.३१)।

सन्तः सदैव श्रेयस्करमाचक्षते यश एव। विनश्चरे जगति यश एवैकं स्थास्नु। यशसे एव जीवन्ति प्रियन्ते च साधवः। यश एव परमं धनं मन्वते मानिनः। उच्यते च—'यशोधनानां हि यशो गरीयः' 'कीर्तियस्य स जीवति'। श्रीरनुयाति तादृशान् मानिनो यशस्विनश्च। मानिनो गत्वैरैरसुभिः स्थायि यशश्चिषन्ति। तथोक्तं भारविणा—'अभिमानधनस्य गत्वैरैरसुभिः स्थास्नु यशश्चिषन्ति'। अचिरांशुविलासचञ्चला ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम्'। (कि० २.१९)। अवधेयमिह चैतत्। ये हि मानिनो मानमेव प्रधानतो गणयन्ति, न ते जात्वभिलषन्ति श्रियम्। ते श्रियमवमत्य मानमाद्रियन्ते। मानस्य सम्पदश्चैकत्रावस्थानं सुदुर्लभम्। तदुच्यते भारविणा—'न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः' (कि० १४.१३)।

तेजोऽवाप्तये सम्पद्यतेतरामावश्यकता गुणार्जनस्य। नान्तरेण गुणसंग्रहं मानिता तेजस्विता वा सम्भवति। गुणार्जनं मूलं मानितायास्तेजस्वितायाश्च। गुणैरेवावाप्यते यशो महिमा च। गुणैरेव गौरवावाप्तिरादरास्पदत्वं च। उक्तं च भारविणा—'गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः' (कि० १२.१०)। गुणार्जनस्य महत्त्वमन्यत्रापि श्रूयते। 'गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्'। भवभूतिरपि गुणानामेव पूज्यत्वमाचष्टे, न तु वय आदीनाम्। 'गुणाः पूजास्थानं गुणेषु न च लिङ्गं न च वयः' (उत्तर० ४.११)। गुणैरेव स्थायिनी कीर्तिः सुलभा, शरीरं तु गत्वरम्। यशःसिद्ध्यै एव सिध्यन्ति साधूनां सच्चरितानि। तदुच्यते—'शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम्। शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः'। (हितोपदेशः १.४९)।

तेजस्विन एव नामाभिनन्दन्ति रिपवोऽपि। स एव सत्यं पुंशब्दाभिधेयः। 'नाम यस्याभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान्' (किराता० ११.७३)। क्षणमपि तेजःसहितं जीवितं श्रेयो न च चिरं सावमानम्। तेजस्वितैव तत्त्वं जीवितस्य। अतः साधूच्यते महाभारते—'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्'।

११. आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।

(वेणी० ५.२३)

का नामाशा ? कथं चाचरतीयं विप्रियं सुप्रियं वा सर्वस्य लोकस्य ? अस्ति किमावश्यकता जीवने आशाया उपादानस्य परिहारस्य वा ? उपादत्ता चेत् किमिति किञ्चित् साधयति साध्यमिह जगति ? निरस्ता चेत् किं सुफला विफला कुफला वा भवति ? आशाया नामग्राहेण समकालमेव समुपतिष्ठन्ते बहवोऽनुयोगाः । ते क्रमशोऽत्र विविच्यन्ते । तेषामौचित्यमनौचित्यं वाऽवधारयिष्यते सयुक्तिकम् । प्राक् तावद् विचार्यते—का नामाशा ? आ समन्ताद् व्याप्नोति मानवानां चेतांसीत्याशा । आङ्पूर्वकाद् अश्वातोरच्प्रत्ययेनैतद् रूपं निष्पद्यते ।

वेदेषूपलभ्यते सर्वत्राशावादस्य प्रवाहः । श्रुतयो मुहुर्मुहुरादिशन्ति मानवमाशामवलम्ब्य समुन्नत्यै समृद्धयै प्रगत्यै च । उच्यते च—(क) वयं स्याम पतयो रयीणाम् (यजु० १०.२०), (ख) अग्ने नय सुपथा राये० (यजु० ४०.१६), (ग) कृधी न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे (ऋग्० १.३६.१४) । (घ) अदीनाः स्याम शरदः शतम् (यजु० ३६-२४) । (ङ) भूत्यै जागरणम्, अभूत्यै स्वपनम् (यजु० ३०.१७) । (च) उच्छ्रयस्व महते सौभगाय (अथर्व० ३.१२.२) । (छ) मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमाम्० (यजु० ३२.१६) । (ज) मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः (ऋग्० १०.१२८.१) । आशैव जीवने धृति स्फूर्ति शक्ति चादधाति । तामाश्रित्यैव सर्वविधा समुन्नतिः सुलभा ।

आशा नामैषा मानवजीवनस्यास्त्याधारशिला । मानवजीवने यः संचारः प्रगतिरुदगतिरुन्नतिर्वाऽवलोक्यते तस्य मूलत्वेनाशायाः संचार एव जीवनेऽवगन्तव्यः । यदि नाम न स्यादाशा जीवने तत्प्रेरकत्वेन, न स्याज्जीवनं प्रगतिशीलमुन्नतिपथमारूढमभ्युन्नतं च । आशा नाम जीवनेऽनुपमा स्फूर्तिप्रदायिनी काचिदपूर्वा शक्तिः । सैव मुमूर्षावपि जीवनाशां संचारयति । सैव वीरे वीराभिमानित्वं शूरे शौर्यं विदुषि वैदुष्यं धीरे धैर्यं साधौ साधुत्वं च प्रसारयति । सैव दीने हीने खिन्ने विषण्णे विपन्नेऽपि च धैर्यमादधाति, दुःसह-दुःखसहनशक्तिं चाविष्करोति चेतसि । नैराश्यस्य घोरायां तमिस्रायामपि सैषाऽऽविर्भावयति जीवनशक्तिप्रदं जाज्वल्यमानं ज्योतिः । न ज्योतिरेतत्त्वला चपलेव क्षणभङ्गुरम् । जागत्यदोऽहर्निशं शान्तेऽपि स्वान्ते साधकस्य । ज्योतिरेतदेव प्रेरयति मुमुक्षुं मोक्षाधिगमाय, साधकं साधनासिद्धयै, वाग्मिनं वाग्-वैशारद्याय, गुणिनं गुणग्रहणाय, विपश्चितं विद्यावैभवाय, कविं काव्यकौशलाय, शूरं शौर्याय, धीरं धैर्याय च । अजस्रमेतदाचरति सुप्रियं सर्वलोकस्य ।

आशा नामेयं नितरामावश्यकी जीवनेऽस्मिन् । उपादेया चेयमुन्नतिमभिविधित्सुभिः । अस्ति चेच्चेतसि धैर्यस्याऽऽधित्सा तर्हि नूनमियमाधेया । विपन्ने विषण्णे च मानसे

धैर्यमादधात्याशैव । नहि विपच्छाश्वती, तदत्ययो ध्रुवः, निशावसानं नियतम्, निशात्यये उपस उद्गमोऽनिवार्यः, एव विपदां क्षयोऽपि ध्रुवः, क्रमशः सम्पदां समुपस्थितिश्च सुनिश्चितेति विचारं विचारं धीर्धैर्यं धारयति ।

उपादत्ता चेदियं साधयत्यसाध्यमपि साध्यं साधूनाम् । परहितनिरता हि साधवः पीड्यन्ते पापिष्ठैः पुरुषैः । अज्ञानसंभारसंक्षीणसद्भावा ह्यसाधवो न चिन्तयन्ति चारुचेतसां चरितानि । अपगते चाज्ञानमले त एव साधूनां सच्चरितानि चिन्तयन्ति, प्रशंसन्ति च तेषां परहितनिरतत्वम् । धृत्या आश्रयणेनैव साधवोऽसाधून् विजयन्ते । प्रोषिते हि भर्तरि वियोगदुःखविधुरा वामा न लभन्ते जातु शान्तिम् । आशैव त्रायते तासां जीवनम् । सैव साहयति गुर्वपि विरहदुःखम् । अत आह कालिदासः—गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति (शा० ४.१६) । अतिमृदुलं हि मानसं भवति मनस्विनीनाम् । आशाबन्धमन्तरेण न शक्यं ताभिर्विप्रयोगदुःखं सोढुम् । अत उच्यते—आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां, सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि । (मेघ० पूर्व० ९) ।

आशामवष्टभ्यैव वीतरागभयक्रोधाः संसारासारत्वोपदेशदक्षा ऋषयो मुनयश्च मुमुक्षवस्तीक्ष्णं तपस्तप्यन्ते । आशामाश्रित्यैवान्तेवासिनो महच्छ्रममनुष्ठाय परीक्षोदधिमुत्तीर्य जीवने साफल्यं भजन्ते । महाभारतयुद्धे गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च देवभूमिं गते आशामाश्रित्यैव शल्यं सैन्यपत्येऽभ्यषेचयन् कौरवाः । अत एवोच्यते—‘गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते । आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।’ देशाभ्युदयः समाजोन्नतिश्चाशाश्रयणेनैव संभवति । भारतवर्षे विविधाः पञ्चवर्षीया योजना देशाभ्युदयस्याशयैव प्रवर्त्यन्ते । अवगम्यते एवमाशाया महत्त्वम् ।

इदं चात्रावधेयम् । सूक्तं केनापि—‘अति सर्वत्र वर्जयेत्’ । यद्याशैवैषा तृष्णारूपेण परिणमते चेद् भवत्येषैव विपदां निदानम् । नहि शाम्यति तृष्णा, तदुपकरणानि तु शाम्यन्ति । तावत्येवाशा श्रेयस्करी सुखसाधनस्वरूपा च यावदियं नोल्लङ्घते स्वीयां मर्यादाम् । मर्यादातिक्रमे तु सर्वमेव दुःखात्मकतां भजते इत्यत्र न कस्यापि विपश्चितो विप्रतिपत्तिः । एतच्चेतसि कृत्वैव क्रियते कोविदैराशायास्तिरस्क्रिया, सन्तोषस्य च सत्क्रिया । उच्यते च—‘आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्’ । न स्याज्जात्वाशाया वशंवदः, अपि त्वाशामेव वशंवदां विदधीत । आशा चेद् वशगा तर्हि सर्वोऽपि लोको वशगो भवेत् । अत उच्यते—‘आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य । आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः’ । आशावशगस्य न भवति मोक्षः स्थविरत्वेऽपि । अतः साधूच्यते—‘अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् । वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्’ । ‘कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः’ । तदेवं सिध्यत्यदो यत् तृष्णात्वेन नाश्रयेदाशाम् । आशां वशगां विधाय तामाश्रित्य च साधयेत् सकलं साध्यम् ।

२०. स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च ।

शिक्षा नाम जीवने शुभाशुभावबोधनी पुण्यापुण्यविवेचनी हिताहितनिदर्शनी कृत्याकृत्यनिर्देशनी समुन्नतिसाधिकाऽवनतिनाशनी सद्भावविर्भावयित्री दुर्भावतिरोधात्री आत्मसंस्कृतिहेतुर्मनसः प्रसादयित्री, धियः परिष्कर्त्री, संयमस्य साधयित्री, दमस्य दात्री, धैर्यस्य धात्री, शीलस्य शीलयित्री, सदाचारस्य संचारयित्री, पुण्यप्रवृत्तेः प्रेरयित्री, दुष्प्रवृत्तेर्दमयित्री, समग्रसुखनिधाना, शान्तेः सरणिः, पौरुषस्य पावनी काचिदपूर्वा शक्तिरिह निखिलेऽपि भुवने । समाश्रित्यैवैतां सुधियो विश्वहितं देशहितं समाजहितं जातिहितं च चिकीर्षन्ति, लोकस्य दुःखदावाग्निं संजिहीर्षन्ति, दीनानुपचिकीर्षन्ति, सद्भावानाधित्सन्ति, दुर्भावान् जिहासन्ति, सत्कर्म विधित्सन्ति, दुष्कर्म जिहीर्षन्ति, आत्मानं मुमुक्षन्ते च । यथेयं नराणां हितसाधयित्री सुखसाधनी च, तथैव स्त्रीणामपि कृतेऽनिवार्या सुखशान्तिसाधिका समुन्नतिमूला च । यथा च नान्तरेण शिक्षां पुरुषैरभ्युदयावाप्तिः सुलभा सुकरा च, तथैव स्त्रीणां कृतेऽपि समधिगन्तव्यम् । नरश्च नारी च द्वावेवैतौ सद्गृहस्थसुरथस्य चक्रद्वयम् । यथा चक्रेणैकेन न रथस्य गतिर्भवति, एवं सर्वार्थसाधिनीं स्त्रियमन्तरेण न गृहस्थरथस्य प्रगतिः सुकरा । सति विदुषि नरे सहधर्मचारिणी चेत् सच्छिक्षापरिहीणा, न दाम्पत्यं सुखावहम् । द्वयोरेव गुणैर्धर्मेण ज्ञानेन विद्यया शीलेन सौजन्येन च गार्हस्थ्यं सुखमावहतीत्यवगन्तव्यम् । यथा नरेण ज्ञानमन्तरा समुन्नतिदुर्लभा, तथैव स्त्रियाऽपि । एतर्हि पुरुषशिक्षावत् स्त्रीशिक्षाप्यनिवार्याऽऽवश्यकी च ।

यदि विचारदृशा विमृश्यते परीक्ष्यते चेद् भूयस्यावश्यकताऽनुभूयते स्त्रीशिक्षायाः । स्त्रिय एवैता मातृशक्तेः प्रतीकभूताः । निसर्गादेवैतासु पतत्युत्तरदायित्वं शिशोर्भरणस्य पोषणस्य च, गृहस्य संचालनस्य संस्थापनस्य च, गृहस्थजीवनस्य सुखस्य शान्तेश्च, परिवारप्रपुष्टेः कुटुम्बभरणस्य च, श्वशुरश्वश्रुवोः शुश्रूषायाः परिचर्यायाश्च, शिशोः शैशवे शिक्षणस्य प्रशिक्षणस्य च, शिशौ सत्संस्काराधानस्य सच्छीलनिधानस्य च, भर्तुः सहयोगस्य सद्भावोन्नयनस्य च, अभ्यागतसपर्याया लोकहितसम्पादनस्य च । अनासाद्य वैदुष्यं न संभाव्यते स्त्रीभिः स्वीयोत्तरदायित्वपरिपालनम् । वैदुष्यलाभाय च न केवलं विविधग्रन्थपरिशीलनमेव पर्याप्तम्, अपितु व्यावहारिकीणां विविधानां विद्यानां विज्ञानानां च परिज्ञानमपि तेषां कृतेऽनिवार्यम् । विविधकलाकलापकौशलमवाप्यैव पार्यते दाम्पत्यजीवनं मधुरं सुखावहमानन्दरसावसिक्तं च सम्पादयितुम् । विशदीभवत्येतस्माद् यन्मानवशिक्षणवन्नारीशिक्षाऽपि नितरामावश्यकी । ज्ञानविज्ञानकौशलमधिगच्छति चेद् द्वय्यपि नरनार्योस्तर्हि न केवलं तेषामेव जीवनं सुखशान्तिसमन्वितं भविताऽपि तु समाजहितं राष्ट्रहितं विश्वहितं च संभाव्यते युगलेन सम्पादयितुम् ।

ऊरीक्रियते चेत् स्त्रीशिक्षाया आवश्यकता तर्हि बहवोऽनुयोगाः पुरतोऽवतिष्ठन्ते । तद्यथा—किं स्यात् स्त्रीशिक्षायाः स्वरूपम् ? कीदृशी शिक्षा तासां हितकरी भवितुमर्हति ? कुमाराणां कुमारीणां च सहशिक्षा श्रेयस्करी न वेति ? विषयेष्वेषु नैकमत्यं मतिमताम् । कुमारीणां शिक्षा कुमाराणां शिक्षावदेव स्यात् । तत्र नोचितः कश्चन प्रतिबन्धः । जीवनसंग्रामे साम्यमूला स्यात् तासु व्यवहृतिरित्येके आतिष्ठन्ते । अन्ये तु नरनार्योर्नैसर्गिको भेदोऽपौरुषेयः, तेषां कार्यशक्तिरसमा, तेषां व्यवहारक्षेत्रं विपरीतम्, तेषां वृत्तिभेद इत्यास्थाय शिक्षायामपि वैविध्यं हितकरमाकलयन्ति । उचितं चैतत् प्रतिभाति । नार्यो हि मातृशक्तेः प्रतीकभूता इत्युक्तपूर्वम् । तासां कृते सैव शिक्षा श्रेयो वितनितुं प्रभवति या मातृशक्तिमूलभूतान् गुणान् उन्नयेत् । तासु शीलं सौकुमार्यं सद्भावं स्नेहं वात्सल्यं सच्चारित्र्यं द्वन्द्वसहिष्णुत्वं कर्तव्यनिष्ठतामास्तिक्यं चोत्पादयेत् । गुणानामेतेषामभावश्चेत् तासु, तर्हि सकलकलानिष्णातत्वमपि तासां निष्प्रयोजनम् । अतस्तादृशी शिक्षा हितकरी या सच्छीलादिगुणाधानपूर्वकं तासु गृहकलावैशारद्यं कर्मनिष्ठतां सद्गृहिणीत्वबुद्धिमुत्पादयेत् । “स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्” इत्यत्र न श्रद्धति सुधियः साम्प्रतम् । लोकव्यवहारज्ञानविहीनानां केषामप्युक्तिरिति तेषां मतम् ।

कुमाराणां कुमारीणां च सहशिक्षाविषये वैमत्यमधुनाऽपि संलक्ष्यते विदुषाम् । शैशवे सहशिक्षा संभवति । न तत्र व्यावहारिकी बिलष्टता । यौवनेऽपि सहशिक्षा श्रेयस्करीति न वक्तुं सुकरम् । व्यवहारदृशा दृश्यते चेत् समापतति यद् यौवने सहशिक्षा न तथा हितसाधनी, यथाऽहितसाधनी । अतो यावच्छक्यं तावद् यौवने पृथक् शिक्षैव प्रशस्या ।

सुशिक्षितैव स्त्री सद्गृहिणी सती साध्वी सत्कर्मपरायणा वंशप्रतिष्ठास्वरूपा च भवितुमर्हति । सैव सद्गृहादिसद्गुणगणान्वितां सन्तति विधातुमीष्टे । स्त्रिय एव मातृभूताः सद्वंशं सद्ग्राष्टं च निर्मातुं प्रभवन्ति । आह्निकक्रियाकलापविकलो मानवो न तथाऽपत्येषु सत्संस्काराधाने प्रभवति, यथा मातरः । अतः मातृशक्तेः शास्त्रेषु महद् गौरवमनुश्रूयते । उक्तं च मनुना—‘यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवताः’ । अन्यत्र चोच्यते—‘मातृदेवो भव’, ‘सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते’, ‘पितुर्दशगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते’ । गृहाधिष्ठातृदेवतात्वात् सा गृहिणी, गृहस्वामिनी, गृहलक्ष्मीरित्यादिशब्दैः संस्तूयते । तत्सत्त्वादेव गृहं गृहमित्युच्यते । उच्यते च—‘न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते’ । ऋग्वेदेऽपि ‘जायेदस्तम्’ गृहिण्येव गृहमिति प्रतिपाद्यते । एवं मातरः स्त्रियश्च सर्वत्रैव समादरमर्हन्ति । देशस्य समाजस्य च समुन्नत्यै स्त्रीशिक्षा नितरामावश्यकीत्यवगन्तव्यम् ।

(११) अनुवादार्थ गद्य-संग्रह

(१) बढ़े चलो, बढ़े चलो

(ऐतरेय ब्राह्मण, अ० ३३, खण्ड ३)

हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को इन्द्र ने उपदेश किया कि—(क) हे रोहित, हमने सुना है कि कठोर परिश्रम करके थके बिना ऐश्वर्य नहीं मिलता। परावलम्बी मनुष्य पापी होता है। परमात्मा परिश्रमी का साथी होता है, अतः बढ़े चलो। (ख) बैठे हुए का ऐश्वर्य बैठ जाता है। उठते हुए का उठता है, सोते हुए का सोता है और चलते हुए का बढ़ता है, अतः बढ़े चलो। (ग) सोता हुआ कलियुग होता है, अँगड़ाई लेता हुआ द्वापर होता है, उठता हुआ त्रेता होता है और चलता हुआ सतयुग होता है, अतः बढ़े चलो। (घ) चलता हुआ मधु पाता है, चलता हुआ स्वादिष्ट भोगों को पाता है। सूर्य की श्रेष्ठता को देखो जो चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता, अतः बढ़े चलो।

(२) अभिमान से पतन

(शतपथ ब्राह्मण, कांड ९, प्र० १, ब्रा० १)

देवता और असुर दोनों प्रजापति के पुत्र हैं। दोनों में स्पर्धा हुई। तब असुरों ने दुरभिमान से सोचा कि हम किसमें हवन करें? उन्होंने स्वार्थ-बुद्धि से अपने ही मुँह में आहुति दी और अपनी ही उदरपूर्ति करते हुए विचरण करने लगे। वे दुरभिमान के कारण ही पराजित हुए। अतएव दुरभिमान न करे। दुरभिमान पतन का कारण है। देवों ने स्वार्थ-बुद्धि को छोड़कर एक-दूसरे के मुँह में आहुति दी और परोपकार करते हुए विचरण करने लगे। प्रजापति ने अपने-आपको उन्हें समर्पण किया। उनको यज्ञ दिया। यज्ञ देवों का अन्न है।

संकेत—(१) (क) नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इचरतः सखा। चरैवेति। (ख) आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः। शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः (ग) कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः। उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्। (घ) चरन् वै मधु विन्दन्ति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्। सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। (२) देवाश्च वा असुराश्च। उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे। कस्मिन् वयं जुहुयामेति। स्वेष्वेवास्येषु जुह्वतश्चेरुः। तेऽतिमानेनैव पराबभूवुः। तस्मान्नातिमन्येत। पराभवस्य हैतन्मुखं यदभिमानः। अन्योन्यस्मिन्नेव जुह्वतश्चेरुः। तेभ्यः प्रजापतिरात्मानं प्रददौ। यज्ञो हैषामास। यज्ञो हि देवानामन्नम्।

(३) याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद

(बृहदारण्यक उप०, अ० ४, ब्रा० ५)

याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं, मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी और कात्यायनी सामान्य स्त्री-बुद्धिवाली। याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा—मैं संन्यास लेना चाहता हूँ और तुम्हें कुछ बताना चाहता हूँ। मैत्रेयी ने कहा—यदि यह सारी पृथ्वी धन से पूर्ण हो जाय तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी? याज्ञवल्क्य ने कहा—नहीं, नहीं। जैसा अन्य सांसारिक लोगों का जीवन है, वैसे ही तुम्हारा जीवन होगा। धन से अमरत्व की कोई आशा नहीं है। मैत्रेयी ने कहा—जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, उसको लेकर मैं क्या करूँगी? जिससे अमरत्व प्राप्त हो, वह बात मुझे बताइए। याज्ञवल्क्य ने कहा—पति, स्त्री, पुत्र, धन, पशु, ब्राह्मण, क्षत्रिय, जनता, देवता, वेद और प्राणियों के हित के लिए ये प्रत्येक वस्तुएँ प्रिय नहीं होती हैं, अपितु अपनी आत्मा की भलाई के लिए ये वस्तुएँ प्रिय होती हैं। अतः आत्मा को देखो, सुनो, मनन और उसका ध्यान करो। आत्मा के देखने, सुनने, मनन और जानने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

(४) सत्य को जानो और अपनाओ

(छान्दोग्य उप० अध्याय ७)

सत्य को जानना चाहिए। मनुष्य जब वस्तु-स्वरूप को जानता है, तभी सत्य बोलता है। बिना जाने सत्य नहीं बोलता, जानते हुए ही सत्य बोलता है, अतः ज्ञान और विज्ञान को जानना चाहिए। मनुष्य जब मनन करता है, तभी जानता है। बिना मनन किए नहीं जानता, मनन करने से जानता है, अतः मनन करना चाहिए। मनुष्य को जब किसी वस्तु पर श्रद्धा होती है, तभी मनन करता है। बिना श्रद्धा के मनन नहीं करता, श्रद्धा होने पर मनन करता है, अतः श्रद्धा को जानना चाहिए। मनुष्य में जब निष्ठा होती है, तभी किसी वस्तु पर श्रद्धा करता है। बिना निष्ठा के श्रद्धा नहीं होती। मनुष्य जब कर्म करता है तभी किसी कार्य में उसकी निष्ठा होती है। बिना कर्म किये निष्ठा नहीं होती। मनुष्य को जब किसी कार्य से सुख मिलता है, तभी वह उस काम को करता है। दुःख मिलने पर उस कार्य को नहीं करता। अतः जानना चाहिए कि सुख क्या है? जो महान् है, वह सुख है, थोड़े में सुख नहीं होता। ब्रह्म महान् है, वह सुखरूप है, उसे जानो।

संकेत—(३) प्रव्रजिष्यन् अस्मि । स्यां न्वहं तेनामृता । अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन । कामाय । आत्मनस्तु कामाय । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः । आत्मनि दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम् । (४) सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यम् । यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति, अविजानन् । यदा वै मनुतेऽथ विजानाति, अमत्वा । यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते, अश्रद्दधत्, श्रद्दधत् । यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति । अनिस्तिष्ठन् । नाकृत्वा निस्तिष्ठति । नासुखं लब्ध्वा करोति । यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति ।

(५) जगत्कर्ता ब्रह्म

(ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य २.१.२४)

चेतन ब्रह्म एक और अद्वितीय जगत् का कारण है, यह आपका कथन ठीक नहीं है, क्योंकि संसार में सर्वत्र साधन-समूह के संग्रह से कार्य की सत्ता दृष्टिगोचर होती है। घट पट आदि के बनानेवाले कुम्हार आदि मिट्टी, चाक, डंडा, धागा आदि अनेक साधनों को लेकर घटादि को बनाते हैं। ब्रह्म असहाय है, अतः वह अन्य साधनों के अभाव में कैसे संसार को बना सकता है ? इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म जगत् का कर्ता नहीं है। आपकी पूर्वोक्त युक्ति युक्तियुक्त नहीं है। द्रव्य के विशिष्ट स्वभाव के कारण ऐसा हो सकता है। जैसे दूध दही के रूप में परिणत होता है और जल बर्फ के रूप में। उसी प्रकार ब्रह्म जगत् के रूप में परिणत होता है। उष्णता आदि दूध से दही बनने में सहायक मात्र होते हैं। दूध से ही दही बनेगी, जल से ही बर्फ, अन्य वस्तु से नहीं। इससे ज्ञात होता है कि वस्तु-विशेष से ही वस्तु-विशेष बनती है। अन्य वस्तुएँ उसमें सहायकमात्र होती हैं। ब्रह्म सर्वसाधन-सम्पूर्ण है, अतः विचित्र शक्तियों के योग से एक ब्रह्म से ही विचित्र परिणामयुक्त यह जगत् उत्पन्न होता है।

(६) सांख्य-दर्शन

इस दर्शन के संस्थापक कपिल मुनि माने जाते हैं। इस दर्शन के अनुसार व्यक्त (प्रकट जगत्), अव्यक्त (भूल प्रकृति) और ज्ञ (पुरुष) के ज्ञान से सांसारिक दुःखों की समाप्ति होती है। इस दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण हैं। इस संसार में प्रकृति और पुरुष ये दोनों स्वतन्त्र और अविनाशी सत्ताएँ हैं। प्रकृति में तीन गुण हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्। इनकी साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। जब इस त्रिगुण की साम्यवस्था में अन्तर पड़ता है, तब सृष्टि का प्रारम्भ होता है। प्रकृति से महत् या बुद्धि उत्पन्न होती है। महत् से अहंकार और अहंकार से १६ पदार्थ अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ और मन तथा ५ तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) उत्पन्न होती हैं। ५ तन्मात्राओं से ५ स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं। कार्य के विषय में इस दर्शन का मत है कि कार्य कारण में सदा अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। इस सिद्धान्त को सत्कार्यवाद कहते हैं। कारण कार्य के रूप में प्रकट होता है। कारण का कार्यरूप में तात्त्विक विकार होता है। इस सिद्धान्त को परिणामवाद कहते हैं।

संकेत—(५) इति यदुक्तं तन्नोपपद्यते, कस्मादुपसंहारदर्शनात्। चक्रम्। साधना-न्तरानुपसंग्रहे। द्रव्यस्वभावविशेषादुपपद्यते। दधिरूपेण परिणमते, हिमरूपेण। योगात्। (६) व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्। सत्ताद्वयी वर्तते। सत्त्वं रजस्तम इति। पञ्च तन्मात्राः।

(७) महाभाष्य-नवनीत

(महाभाष्य नवाह्निक आ० १, २)

(क) जिसके उच्चारण करने से तत्तद्गुणादि विशिष्ट वस्तु का बोध हो, उसे शब्द कहते हैं। (ख) रक्षा, ऊह (तर्क), आगम, लघुत्व और असन्देह, ये व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन हैं। वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए। वेद के मन्त्रों में यथास्थान विभक्ति आदि के परिवर्तनार्थ व्याकरण पढ़ना चाहिए। यह परम्परागत आदेश भी है कि—ब्राह्मण को निःस्वार्थभाव से धर्मस्वरूप षडङ्ग वेद पढ़ना और जानना चाहिए। व्याकरण के द्वारा ही अत्यन्त लघु उपाय से शब्दज्ञान हो सकता है। व्याकरण के द्वारा शब्दार्थ में सन्देह नहीं रहता कि इस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है। (ग) चार प्रकार से विद्या का उपयोग होता है—विद्याभ्यास के द्वारा, स्वाध्याय-काल के द्वारा, प्रवचन-काल के द्वारा और व्यवहार-काल के द्वारा। (घ) द्रव्य नित्य है, आकृति अनित्य है। यह कैसे ज्ञात होता ? संसार में ऐसा देखा जाता है कि मिट्टी एक आकृति से युक्त होकर पिण्ड होती है। उसको बिगाड़कर घड़े आदि बनाए जाते हैं। इसी प्रकार सोने की बनी वस्तु की एक आकृति को बिगाड़कर अनेक आभूषण बनाये जाते हैं। आकृति बार-बार बदलती जाती है, किन्तु द्रव्य वही रहता है। आकृति के नष्ट होने पर द्रव्य ही शेष रहता है। अथवा आकृति भी नित्य है, क्योंकि वस्तु की कोई-न-कोई आकृति शेष रहती ही है। (ङ) चार प्रकार के शब्द होते हैं—जातिवाचक, गुणवाचक, क्रियावाचक और यदृच्छा शब्द।

(८) वाक्यपदीय-सुभाषित

(वाक्यपदीय कांड १ और २)

(क) संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो शब्दज्ञान के बिना हो। सारा ज्ञान शब्द से मिश्रित होकर ही प्रकाशित होता है। (ख) शब्द और अर्थ ये दोनों एक ही आत्मा के अपृथक् रहनेवाले भेद हैं। (ग) अनेकार्थक शब्दों के अर्थों का निर्णय इन साधनों से होता है—संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, प्रयोजन, प्रकरण, चिह्न-विशेष, अन्य शब्दों का सान्निध्य, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, लिंग-विशेष, स्वर आदि।

संकेत—(७) (ख) रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्। आगमः खल्वपि—ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। (ग) चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति—आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति। (घ) द्रव्यं हि नित्यम्, आकृतिरनित्या। कथं ज्ञायते ? पिण्डः। उपमृद्य। क्रियन्ते। आकृतिरन्या चान्या च भवति। आकृत्युपमर्देन। अथवा नित्याऽऽकृतिः। (ङ) चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः—जातिशब्दा गुणशब्दाः क्रियाशब्दा यदृच्छाशब्दाः। (८) (क) न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते। (ख) एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ। (ग) संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य संनिधिः। सामर्थ्यमौचित्यं देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः। शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥

(९) परम्पासर-वर्णन

(वा० रामायण, किष्किन्धा० सर्ग १)

हे लक्ष्मण ! यह पम्पा सरोवर पन्ने के तुल्य स्वच्छ जल से युक्त है। चारों ओर कमल खिले हैं और अनेक वृक्षों से शोभित है। पम्पा का वन भी दर्शनीय है। यहाँ ऊँचे-ऊँचे वृक्ष शिखरयुक्त पर्वतों के तुल्य प्रतीत होते हैं। यह कमलों से व्याप्त है और दर्शनीय है। वृक्षों की चोटियाँ फूलों के बोझ से लदी हुई हैं और वृक्ष पुष्पित लताओं से आश्लिष्ट हैं। वन पुष्पित वृक्षों से युक्त हैं और वृक्ष फूलों की वर्षा इस प्रकार कर रहे हैं जैसे बादल जल की वर्षा करते हैं। पत्थरों पर उगे हुए अनेक वनवृक्ष हवा से कम्पित होकर पृथ्वी पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं। वायु गिरे हुए, गिरनेवाले और वृक्षों पर लगे हुए फूलों के साथ क्रीड़ा-सी कर रही है। पर्वत की कन्दराओं से निकली हुई वायु वृक्षों को नचाती हुई-सी, मत्त कोकिलों की ध्वनि से गान-सी कर रही है। सुगन्धित कमल जल में तरुण सूर्य के तुल्य चमक रहे हैं। वायु एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर और एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर घूमती हुई अनेक रसों का आस्वादन करके आनन्दित-सी घूम रही है। भौरा फूलों का रसास्वादन कर प्रेममत्त हो फूलों में ही लीन है। भौरों की ध्वनि से युक्त वृक्ष एक-दूसरे को बुलाते हुए-से प्रतीत होते हैं।

(१०) नलोपाख्यान

(महाभारत, वनपर्व)

राजा नल वीरसेन का सुपुत्र था और निषध देश का राजा था। त्रह सुन्दर, सुशील, वीर, योद्धा, वेद-शास्त्रज्ञ, अश्वविद्या-विशेषज्ञ और पाकशास्त्र-प्रवीण था। उसके राज्य के समीप ही विदर्भ का राज्य था। वहाँ राजा भीमसेन राज्य करता था। उसकी पुत्री दमयन्ती सर्वगुणों से युक्त और सर्वसुन्दरी थी। चारणों ने एक-दूसरे के समक्ष दोनों की प्रशंसा की। फलस्वरूप नल और दमयन्ती एक-दूसरे को बिना देखे ही प्रेम करने लगे। एक दिन उद्यान में भ्रमण करते समय नल ने एक सुनहरे पंखवाला हंस देखा। उसने उस हंस को पकड़ लिया। हंस की प्रार्थना पर नल ने उसे छोड़ दिया। हंस ने निवेदन किया कि मैं आपकी एक उत्तम सेवा करूँगा। हंस उड़कर विदर्भ पहुँचा और वहाँ उसने दमयन्ती के समक्ष नल के गुणों की प्रशंसा की। दमयन्ती ने नल से विवाह का निश्चय किया। हंस ने सारी सूचना नल को दी। दमयन्ती के विवाहार्थ स्वयंवर का आयोजन हुआ। सभी राजा और राजकुमार स्वयंवर में पहुँचे। इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम भी स्वयंवर में आए। दिक्पालों ने नल के द्वारा प्रयत्न किया कि दमयन्ती उनमें से एक को छाँट ले। परन्तु दमयन्ती ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। स्वयंवर में उसने नल को ही पति चुना। चारों दिक्पालों ने उसके हृदय की पवित्रता देखकर उसे वर दिए।

संकेत—(९) वैदूर्यविमलोदका। उत्तुङ्गाः। शिखराणि, पुष्पभारसमृद्धानि, उपगूढानि। पुष्पवर्षाणि। उद्भूताः, पुष्पैरवकिरन्ति गाम्। पतितैः, पतमाँः, पादपस्थैः। नर्तयन्निव, गायतीव। सूर्यवत् प्रकाशन्ते। पादपाद् पादपम्, गच्छन्, आस्वाद्य, वाति। आह्वयन्त इव भान्ति। (१०) जातरूपच्छदम्। वृणुयात्।

(११) आचार-शिक्षा

(चरकसंहिता)

जो अपना हित चाहता है, वह सदाचार का पालन करे। इससे दो लाभ होते हैं—
 आरोग्य और जितेन्द्रियता। देवता, ब्राह्मण, गुरुओं, वृद्धों और आचार्य की पूजा करे। सुन्दर वेश
 रखे, बालों को ठीक सँवारे, प्रसन्नमुख रहे, समय पर हितकर, स्वल्प और मधुर बात कहे।
 इन्द्रियों को वश में रखे, धर्मात्मा, निर्भीक, आस्तिक, बुद्धिमान्, उत्साही और क्षमाशील हो।
 असत्य न बोले। पर-धन को न ले। झगड़ा पसन्द न करे, पाप न करे। दूसरे के दोषों को न
 कहे। दूसरों की गुप्त बात न बतावे। अधार्मिकों के साथ न बैठे। बहुत जोर से न हँसे। नाक न
 खोदे, दाँत न कटकटावे, भूमि न कुरेदे, तिनका न तोड़े। न अधिक जागे, न अधिक सोवे और
 न अधिक खावे-पीए। श्रेष्ठ लोगों से विरोध न करे। रात में दही न खावे। स्त्रियों का अपमान
 न करे। सज्जनों और गुरुओं की निन्दा न करे। अपनी प्रतिज्ञा को न तोड़े। अपने समय को नष्ट
 न करे। अपने नियम को न तोड़े। लोभी और मूर्खों से मित्रता न करे। गुप्त बात प्रकट न करे।
 किसीका अपमान न करे। अभिमान न करे। समय को हाथ से न जाने दे। शोक के वश में न
 हो। धैर्य और पराक्रम को न छोड़े।

(१२) कालमृत्यु और अकालमृत्यु

(चरकसंहिता)

कालमृत्यु और अकालमृत्यु कैसे होती है ? भगवान् आत्रेय ने अग्निवेश से कहा कि—
 जैसे रथ की धुरी विशेषताओं से युक्त होती है और वह उत्तम तथा सर्वगुणसम्पन्न होने पर भी
 चलते-चलते समयानुसार अपनी शक्ति के क्षीण हो जाने से नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार
 बलवान् मनुष्य के शरीर में आयु स्वभावतः धीरे-धीरे उपयोग में आने पर अपनी शक्ति के क्षीण
 होने पर नष्ट हो जाती है। जैसे वही धुरी बहुत बोझ से लदने से, ऊँचे-नीचे मार्ग पर चलने
 से, पहिए के टूटने से, कील निकल जाने से और तेल न देने से बीच में ही टूट जाती है,
 उसी प्रकार शक्ति से अधिक काम करने से उचित रूप से भोजन न करने से, हानिकारक
 भोजन खाने से, इन्द्रियों के असंयम से, कुसंगति से, विषादि के खाने से और अनशन आदि से
 बीच में ही आयु समाप्त हो जाती है। इसको अकालमृत्यु कहते हैं। इसी प्रकार रोगों की ठीक
 चिकित्सा न होने से भी अकालमृत्यु होती है।

संकेत—(११) आत्महितं चिकीर्षता सद्वृत्तमनुष्ठेयम्। प्रसाधितकेशः स्यात्। काले
 हितमितमधुरार्थवादी स्यात्। न वैरं रोचयेत्। नान्यरहस्यमागमयेत्। कुष्णीयात्, विघट्टयेत्,
 विलिखेत्, छिन्द्यात्। न विरुध्येत। न स्त्रियमवजानीत। न परिवदेत्, न गुह्यं विवृणुयात्। न
 कार्यकालमतिपातयेत्। जह्यात्। (१२) अक्षः, यथाकालम्, स्वशक्तिक्षयात्। अतिभाराधिष्ठितत्वात्,
 विषमपथात्, चक्रभङ्गात्, कीलमोक्षात्, तैलादानात्, अन्तरा व्यसनमापद्यते। अयथाबलमारम्भात्।
 मिथ्योपचारात्।

(१३) सन्ध्या-वर्णन

(सुबन्धुकृत वासवदत्ता)

इसके बाद सूर्य अस्ताभिमुख हुआ। वह अस्ताचलरूपी कल्पवृक्ष के फूल के गुच्छे के समान सुन्दर प्रतीत हो रहा था। वह सिन्दूर-पंक्ति से शोभित ऐरावत के गण्ड-स्थल की शोभा धारण किए हुए था। वह आकाशरूपी लक्ष्मी के विकसित पुष्पस्तवक के तुल्य, आकाशरूपी अशोक वृक्ष के गुलदस्ते के तुल्य और पश्चिमदिशारूपी अंगना के स्वर्ण-दर्पण के तुल्य प्रतीत होता था। इस प्रकार विद्रुमलता-तुल्य आकृति-युक्त भगवान् सूर्य पश्चिम समुद्र के जल में मग्न हो गये। वृक्षों की चोटियों पर चिड़ियाँ शब्द करने लगीं, कौवे अपने घोंसलों की ओर जाने लगे, वासगृहों में अगर की धूपबत्तियाँ जलने लगीं, वृद्धाएँ लोरियाँ गाकर और थपथपाकर बच्चों को सुलाने लगीं, सज्जनवृन्द सन्ध्या-वन्दन करने लगे, कपि-वृन्द उद्यान-वृक्षों पर आश्रय लेने लगे, जीर्ण वृक्षों के कोटरों से उल्लू निकलने लगे, अन्धकार को भगाने के लिए दीपशिखाएँ चमकने लगीं। उस समय पश्चिम-समुद्र की विद्रुम लता के तुल्य, आकाशरूपी सरोवर की रक्त-कमलिनी के तुल्य, कामदेव के रथ की स्वर्णपताका के तुल्य, आकाशरूपी महल की लाल पताका के तुल्य, पीले तारों से युक्त सन्ध्या दिखाई पड़ी।

(१४) वर्षा-वर्णन

(सुबन्धुकृत वासवदत्ता)

कुछ समय बाद वर्षा ऋतु आई। उस समय आकाशरूपी सरोवर में कामदेव की स्वर्ण और रत्न-जटित नौका की तरह, आकाशरूपी महल के मुख्यद्वार की रत्न-माला के तुल्य, आकाशरूपी कल्पवृक्ष की सुन्दर कली के तुल्य, कामदेव की रत्न-जटित क्रीडायष्टि के तुल्य, इन्द्रधनुसरूपी लता शोभित हुई। क्यारीरूपी खानों में उछलते हुए पीले हरे मेढकरूपी मोहरों से मानो वर्षा ऋतु बिजली के साथ शतरंज खेल रही थी। बादलरूपी लकड़ी पर बिजलीरूपी आरे के चलने से गिरते हुए बुरादे के तुल्य बूँदें शोभित हो रही थीं। दिग्वधुओं के टूटे हुए हार के मोतियों के तुल्य ओले शोभित हो रहे थे।

संकेत—(१३) अस्तगिरिमन्दारस्तवकसुन्दरः, बिभ्राणः, नभःश्रियः, गगनाशोकतरोः, पुष्पगुच्छ इव, दिनमणिरपराकूपारपयसि ममज्ज, कलविङ्ककुलकलकलवाचालशिखरेषु शिखरिषु, ध्वाङ्क्षेषु, अगुरुधूपपरिमलोद्गारेषु, आलोलिकाभिरतिलधुकटाडनैः शिशयिषमाणे शिशुजने, निर्जिगमिषति, स्फुरन्तीषु, गगनहर्म्यस्य, कपिलतारका। (१४) कनकरत्ननौकेव, नभःसौधतोरणरत्नमालिकेव, कलिकेव, रत्नमयी, इन्द्रधनुर्लता, केदारिकाकोष्ठिकासु समुत्पतद्भिः पीतहरितैर्दुर्नयद्युतैरिव चिक्रीड विद्युता समं घनकालः। जलददारुणि तडिल्लताकरपत्रदारिते, चूर्णनिकरा इव, जलकणाः। विच्छिन्नदिग्वधूहारमुक्तानिकरा इव करकाः।

(१५) धर्म त्रिवर्ग का सार

(दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, उ० २)

धर्म के बिना अर्थ और काम की उत्पत्ति ही नहीं हो पाती। इसलिए कहा जा सकता है कि धर्म, काम और अर्थ की अपेक्षा नहीं करता। यह धर्म ही मोक्ष-सुख की उत्पत्ति का मूल कारण है और चित्त की एकाग्रतामात्र से यह सिद्ध हो जाता है। धर्म, अर्थ और काम की तरह बाह्य साधनों के अधीन नहीं रहता। तत्त्वज्ञान से उत्कर्ष को प्राप्त धर्म किसी भी प्रकार से अनुष्ठित अर्थ और काम से बाधित नहीं होता। यदि अर्थ और काम से बाधित भी हो जाए तो थोड़े-से प्रयत्न से ठीक होकर उस दोष को नष्ट करके महान् कल्याण का साधन बन जाता है। धर्म से पवित्र मन में रजोगुण का समावेश उसी प्रकार नहीं होता जैसे आकाश में धूल नहीं रुकती। अतः मेरा विश्वास है कि अर्थ और काम धर्म की सौवीं कला को भी नहीं पहुँच सकते।

(१६) राजनीति के मूल-तत्त्व

(दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, उच्छ्वास ८)

राज्य तीन शक्तियों के अधीन होता है। वे तीन शक्तियाँ हैं—मन्त्र, प्रभाव और उत्साह। तीनों परस्पर एक-दूसरे से सम्बद्ध होकर कार्य-साधन करती हैं। मन्त्र से कर्तव्य-कर्म का ज्ञान होता है। प्रभाव अर्थात् प्रभुशक्ति से कार्य में प्रवृत्ति होती है और उत्साह-शक्ति से कार्यसिद्धि होती है। सहाय, साधन, उपाय, देश-काल का विभाग और विपत्ति का प्रतीकार, ये पाँच अंग कहे जाते हैं। ये ही पाँच अंग नीतिरूपी वृक्ष के मूल हैं। कोष और दण्ड का प्रभाव उक्त वृक्ष का स्कन्ध है। कर्तव्य अर्थ के लिए स्थिर प्रयत्न को उत्साह कहते हैं। साम, दाम, दण्ड और भेद ये चारों गुण उसकी शाखाएँ हैं। स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, सेना और पुरवासी, इन आठ राज्य के अंगों के भेद और प्रभेद से नीतिवृक्ष के ७२ पत्ते होते हैं। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और समाश्रय, ये ही नीतिवृक्ष के किसलय हैं। मन्त्र, प्रभाव, उत्साह और इनकी सिद्धियाँ इसके पुष्प और फल हैं। यह नीतिरूपी वृक्ष राजा का बराबर उपकार करता रहता है। इनकी रक्षा के लिए अनेक सहायकों की आवश्यकता होती है, अतः सहायकों से हीन के द्वारा इसकी रक्षा नहीं हो सकती।

संकेत—(१५) निवृत्तिसुखप्रसूतिहेतुः, आत्मसमाधानमात्रसाध्यश्च। तत्त्वदर्शनोपबृंहितः, स न बाध्यते। अल्पायासप्रतिसमाहितः, श्रेयसेऽनल्पाय कल्पते। मन्ये, शततमीमपि कलां न स्मृशतः। (१६) राज्यं नाम शक्तित्रयायत्तम्। एते परस्पराणुगृहीताः कृत्येषु क्रमन्ते। मन्त्रेण विनिश्चयोऽर्थानाम्। असहायेन दुरुपजीव्यः।

(१७) जाबाल्याश्रम-वर्णन

(कादम्बरी, पूर्वभाग)

मैंने जाबालि का पवित्र आश्रम देखा। जहाँ पर निरन्तर यज्ञ हो रहा है, छात्रवृन्द अध्ययन में लगे हुए हैं, अनेक तोता और मैना वेद का पाठ कर रहे हैं, देवों और पितरों की पूजा की जा रही है, अतिथियों की सेवा हो रही है, यज्ञ-विद्या की व्याख्या हो रही है, धर्मशास्त्रों की आलोचना हो रही है, अनेक धार्मिक पुस्तकें बाँची जा रही हैं, समस्त शास्त्रों के अर्थों पर विचार हो रहा है, यति-लोग ध्यान लगा रहे हैं, मन्त्रों की साधना कर रहे हैं और योग का अभ्यास कर रहे हैं। यहाँ न कलिकाल है, न असत्य है और न काम-विकार है। यह त्रिलोक से बन्दित है, गायों से अधिष्ठित है नदी स्रोत और प्रपातों से युक्त है, पवित्र है, उपद्रव-रहित है, घने वृक्षों से अन्धकारित है और ब्रह्मलोक के तुल्य अति रमणीय है। यहाँ मलिनता हवि-धूम में है, चरित्र में नहीं। मुख की लालिमा तोतों में है, क्रोध में नहीं। तीक्ष्णता कुशाग्रों में है, स्वभाव में नहीं। चंचलता कदली-दलों में है, मनो में नहीं। अग्नि-प्रदक्षिणा में भ्रमण (भ्रान्ति) है, शास्त्रों के विषय में भ्रान्ति नहीं। मुख-विकार वृद्धावस्था के कारण है, धन के अभिमान से नहीं।

(१८) सन्ध्या-वर्णन

(कादम्बरी, पूर्वभाग)

इस समय दिन ढलने लगा। स्नान करके निकले हुए मुनियों ने पूजा करते हुए जो लाल चन्दन का अंगराग पृथ्वी पर दिया, मानो सूर्य ने वस्तुतः उसे धारण कर लिया। धूप का पान करनेवाले ऋषियों ने मानो सूर्य की उष्णता पी ली, अतएव सूर्य निस्तेज हो गया। सूर्य की किरणों और पक्षि-गण पृथ्वी और कमलवनों को छोड़कर अब पर्वतशिखरों और तरुशिखरों पर पहुँच गये। सूर्य के अस्त होने पर मूँगों की लता के तुल्य लाल सन्ध्या दिखाई पड़ी। दिनभर कहीं घूमकर मानो अब दिनान्त के समय लाल तारों से युक्त सन्ध्या लौटकर आई है। अब कमलिनी सूर्यरूपी पति से मिलन के लिए मानो व्रत कर रही है। पश्चिम समुद्र के जल में सूर्य के वेग से गिरने से जो छींटे ऊपर उठे हैं, वही मानो तारागण के रूप में आकाश में शोभित हो रहे हैं। सिद्ध-कन्याओं के द्वारा पूजार्थ डाले हुए पुष्पों के तुल्य तारों से युक्त आकाश दिखाई पड़ने लगा। क्रमशः चन्द्रमा उदित हुआ। चन्द्रमा के अन्दर विद्यमान कलंक ऐसा ही प्रतीत हुआ मानो चन्द्रमारूपी तालाब में चाँदीनरूपी जल के पान के लोभ से आया हुआ और अमृतरूपी कीचड़ में फँस जाने से निश्चल मृग हो।

संकेत—(१७) अनवरतप्रवृत्ताध्वरम्, अध्ययनमुखरवटुजनम्, अनेकशुकसारिको-
दधुष्यमाणसुब्रह्मण्यम्, पूज्यमान०, उपचर्यमाण०, व्याख्यायमान०, आबध्यमानध्यानम्। यत्र मलिनता
हविर्धूमेषु न चरितेषु। मुखरागः शुकेषु न कोपेषु। जरया, न धनाभिमानेन। (१८) परिणतो
दिवसः, उदवहत्, ऊष्मपैः, स्थितिमकुर्वत्। विद्रुमलतेव पाटला। विहृत्य। लोहिततारका। परावर्तिट।
दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत्। अम्भः सीकरनिकरम्। अलक्ष्यत। हिमकरसरसि चन्द्रिका-
जलपानलोभादवतीर्णः, अमृतपङ्कलग्नः।

(१९) उज्जयिनी-वर्णन

(कादम्बरी पूर्वभाग)

राजा तारापीड की उज्जैन नामक राजधानी थी। वह समस्त त्रिभुवन की तिलकरूपी थी। वह गहरी खाई से घिरी हुई थी, सफेदी पुते हुए परकोटे से परिवेष्टित थी, बड़ी-बड़ी बाजार की सड़कों से शोभित थी, चौराहों पर बने हुए देव-मन्दिरों से अलंकृत थी, वेद-ध्वनियों से निष्पाप थी, असंख्यों तालाबों से युक्त थी। वहाँ पर लोग वीर, विनयी, सत्यवादी, सुन्दर, धर्मतत्पर, महापराक्रमी, समस्त ज्ञान-विज्ञानवेत्ता, दानी, चतुर, मधुरभाषी, प्रसन्नमुख, स्वच्छवेषधारी, सभी भाषाओं के ज्ञाता, सभी लिपियों के वेत्ता, शान्त और सरलहृदय थे। उस नगरी में मणिद्वीपों में ही अनिर्वाण था, चकवा-चकवी के जोड़े में ही वियोग होता था, सोने की ही वर्णपरीक्षा होती थी, ध्वजाओं में ही अस्थिरता थी, कुमुदों में ही मित्रद्वेष (सूर्यद्वेष) था, अन्यत्र नहीं।

(२०) शुकनासोपदेश

(कादम्बरी, पूर्वभाग)

जन्मसिद्ध प्रभुत्व, नव यौवन, अनुपम सौन्दर्य और असाधारण शक्ति, ये चारों महान् अनर्थ के कारण हैं। इनमें से एक-एक भी सभी अविनयों के कारण हैं, सभी एकत्र हों तो कहना ही क्या। यौवन के आरम्भ में प्रायः शास्त्ररूपी जल से धोने से निर्मल बुद्धि भी कलुषित हो जाती है। विषय-भोगरूपी मृगतृष्णा इन्द्रियरूपी मृगों को हरनेवाली है और भयंकर दुष्परिणामवाली है। निर्मल मन में उपदेश की बातें उसी प्रकार सरलता से प्रविष्ट हो जाती हैं, जैसे स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें। गुरुजनों का उपदेश मनुष्यों के समस्त मलों को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान है, बालों की सफेदी आदि विरूपता को न करनेवाला वृद्धत्व है, चर्बी आदि को न बढ़ाने वाला गौरव है, असाधारण तेजवाला प्रकाश है। लक्ष्मी को ही देखो। यह मिलने पर भी बड़े कष्ट से सुरक्षित होती है। गुणरूपी पाशों के बन्धन से निश्चेष्ट बनाने पर भी नष्ट हो जाती है। यह न परिचय को मानती है, न कलीनता को देखती है, न सौन्दर्य को देखती है, न कुलपरम्परा को मानती है, न शील को देखती है, न चतुरता को कुछ गिनती है, न त्याग का आदर करती है। न विशेषज्ञता का विचार करती है, न सत्य को कुछ समझती है और न आचार का ही पालन करती है। इसको पाकर लोग सभी अविनयों के स्थान हो जाते हैं। वे न देवताओं को प्रणाम करते हैं, न माननीयों का मान करते हैं और न गुरुओं का सत्कार करते हैं।

* संकेत—(१९) ललामभूता, गभीरेण परिखावलयेन परिवृता, सुधासितेन प्राकारमण्डलेन, महाविपणिपथैः, शृङ्गाटकेषु, निष्कल्मषा। अनिवृत्तिर्मणिप्रदीपानाम्, द्वन्द्ववियोगः, कनकानाम्, कुमुदानां मित्रद्वेषः। (२०) किमुत समवायः। इन्द्रियहरिणहारिणी, अतिदुरन्ता। उपदेशगुणाः सुखं विशन्ति। अखिलमलप्रक्षालनक्षमम्, अजलम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यम्, अनारोपित-मेदोदोषम्, अतीतज्योतिरालोकः। लब्धाऽपि, गुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृताऽपि। गणयति, आद्रियते, अनुबुध्यते।

(२१) मरणासन्न पिता के समीप हर्ष

(हर्षचरित)

एक बार हर्ष ने रात्रि के चौथे पहर स्वप्न में देखा कि एक महासिंह भयंकर दावाग्नि में जल रहा है और सिंहिनी भी अपने बच्चों को छोड़कर अग्नि में कूद रही है। यह देखकर उसके मन में आया कि संसार में लोहे से भी दृढ़ प्रेम का बन्धन होता है, जिसके कारण पशु-पक्षी भी ऐसा करते हैं। अगले ही दिन उसने कुरङ्गक नामक दूत से पिता की रुग्णता का समाचार सुना। समाचार पाते ही वह घुड़सवारों के साथ लौट पड़ा और अगले दिन राजद्वार पर पहुँचा। वहाँ उसने निःशब्द, किवाड़ों के खुलने और बन्द होने की खटखट से रहित, खिड़कियाँ बन्द होने से हवा के झोंके से रहित, कुछ प्रेमी जनों से युक्त, तीव्र ज्वर से भयभीत वैद्यों से युक्त, खिन्न मन्त्रियों से अधिष्ठित महल में विद्यमान, काल की जिह्वा के अग्र भाग पर वर्तमान, क्षीण वाणीवाले, चंचल चित्त, शारीरिक व्याकुलता से युक्त, दीर्घ साँस लेते हुए और पास में बैठी हुई निरन्तर रोती हुई माता यशोवती के द्वारा बार-बार शिर और छाती पर हाथ फेरे जाते हुए पिता को देखा।

(२२) मानवचरित-समीक्षा

(प्रबन्धमंजरी, उद्भिज्जपरिषत्)

सभापति अश्वत्थदेव मानवचरित-समीक्षा करते हुए अपने बन्धु वृक्षों से कहते हैं कि— मनुष्यों की हिसावृत्ति की सीमा नहीं है। पशुहत्या उनके लिए खेल है। वे खिन्न मन के विनोद के लिए महावन में आकर इच्छानुसार और निर्दयतापूर्वक पशुवध करते हैं। जिस प्रकार ऐहिक सुख की इच्छा से मनुष्य उत्साहपूर्वक जीवहिंसा करके अपने हृदय की अतिनिष्ठुर क्रूरता को प्रकट करते हैं, उसी प्रकार पारलौकिक सुख की आशा से वे महोत्सवपूर्वक निरपराध पशुओं को इष्टदेवता के आगे बलि देकर अपनी नृशंसता का परिचय देते हैं। वस्तुतः इनके पशुबलि के कार्य को देखकर हम जड़ों का भी हृदय विदीर्ण हो जाता है। ये निरन्तर अपनी उन्नति को चाहते हुए प्रतिक्षण सर्वथा स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयत्न करते हैं। ये न धर्म को मानते हैं, न सत्य का अनुष्ठान करते हैं, अपितु तृणवत् स्नेह की उपेक्षा करते हैं, स्वच्छता को छोड़ देते हैं, विश्वासघात करते हैं, पापाचरण से थोड़ा भी नहीं डरते, झूठ बोलने में नहीं लज्जित होते, सर्वथा अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं।

संकेत—(२१) तुरीये यामे, आत्मानं पातयति। आसीच्चास्य चेतसि। लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः, यदाकृष्टास्तियञ्चोऽप्येवमाचरन्ति। समधिगत्यैवोदन्तम्। परिहृतकपाटरटिते, घटितगवाक्षरक्षितमरुति, भिषजि, दुर्मनायमानमन्त्रिणि, धवलगृहे स्थितम्, विरलं वाचि, चलितं चेतसि, विह्वलं वपुषि, सन्ततं श्वसिते, वक्षसि च स्पृश्यमानम्। (२२) निरवधिः। आक्रीडनम्। प्रकटयन्ति। विदीर्यते। उपेक्षन्ते, बिभ्यति, लज्जन्ते, सिसाधयिषन्ति।

(२३) आर्यावर्त-वर्णन

(नलचम्पू)

यह आर्यावर्त देवों के द्वारा भी सेव्य है, धन-धान्य से सम्पन्न है, नदी-नहरों से युक्त है, सब विषयों में संसार का अग्रणी है, समस्त संसार का सार है, पुण्यात्माओं को शरण देता है, धर्म का धाम है, सम्पत्तियों का सदन है, पुण्यों का आधार है, सद्ब्यवहाररूपी रत्नों की खान है और आर्यमर्यादाओं का निकेतन है। यहाँ प्रजा संसार के सभी सुखों से सम्पन्न है, सभी पूर्ण आयु तक जीते हैं, सभी धर्म-कर्म में लग्न हैं, अतः आधि-व्याधियों से मुक्त हैं। सभी ग्राम गाय, घोड़े आदि पशुओं से युक्त हैं, सभी नगर गगनचुम्बी महलों से सुशोभित हैं, सभी लोग सदाचारी हैं तथा धन का दान और उपभोग करते हैं, वन सुन्दर और फलदायी वृक्षों से युक्त हैं, वाटिकाएँ मनोहर फल-फूलों से युक्त हैं, कुलीन स्त्रियाँ सूर्य के तुल्य तेजयुक्त और पतिव्रता हैं। वह स्वर्ग से भी बढ़कर है। घर-घर में सुन्दर स्त्रियाँ हैं, सारी प्रजा समृद्ध है, सभी धनी, दानी और मानी हैं।

(२४) कवित्व और राजत्व

(शिवराजविजय)

भूषण कवि बादशाह औरंगजेब का दरबार छोड़कर महाराज शिवाजी का आश्रय प्राप्त करने के लिए उनकी नगरी में पहुँचे। शिवाजी से मिलने से पूर्व वे एक शिवमन्दिर में रुके और वहाँ के पुजारी से बातचीत की। मन्दिर की खिड़की से शिवाजी ने भूषण की यह बात सुनी— मैं चिरकाल तक दिल्लीश्वर की छत्र-छाया में रहा हूँ। किन्तु हम कवि लोग किसीके राजत्व, वीरता, तेजस्विता और धनाढ्यता की परवाह नहीं करते हैं। हम लोग किसीके साभिमान भूभंग को और कोपयुक्त गर्व की बर्बरता को नहीं सहन करते हैं। उसका पृथ्वी पर ऐसा राज्य नहीं है, जैसा कि हमारा साहित्य-जगत् पर। उसके खरीदे हुए गुलाम भी उसकी इच्छा होते ही हाथ जोड़कर उसके सामने खड़े नहीं हो जाते, जैसे कि हमारे सामने इच्छा होते ही पद, वाक्य, छन्द, अलंकार, रीतियाँ, गुण और रस उपस्थित हो जाते हैं। वह अशर्फी देकर भी दूसरों को उतना सन्तुष्ट नहीं कर सकता, जितना कि हम केवल कविता से सन्तुष्ट कर सकते हैं। हमारी वीररस की कविता को सुनकर मरता हुआ भी युद्ध में खड़ा हो जाता है। जिसके भाग्य में चिरस्थायिनी कीर्ति होती है, वह हमारा आदर करता है। यह सुनकर कवि का परिचय प्राप्त करने के लिए शिवाजी ने मन्दिर में प्रवेश किया।

संकेत—(२३) शरण्यः, आकरः, पुरुषायुषजीविन्यः, अभ्रंलिहैः प्रासादैः, विशिष्यते।

(२४) सम्राजः, द्वारम्, शिवराजस्य। अध्यतिष्ठत्, मन्दिराध्यक्षेन सह, गवाक्षात्, नाऽपेक्षामहे, साभिमानभूभङ्गम्, कोपाञ्चितगर्वबर्बरतां न सहामहे, तादृशम्, सारस्वतसृष्टौ, क्रीतदासा अपि, तदीहासमकालमेव, नाऽवतिष्ठन्ते, छन्दांसि, रीतयः, दीनारसंभारैरपि, न तथा तोषयितुमलम्, प्रियमाणोऽपि।

(२५) वैदिक साहित्य

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद में मन्त्र हैं, जिनको ऋचा कहते हैं। ये पद्य में हैं। ऋग्वेद की पाँच शाखाओं में से केवल शाकल शाखा ही प्राप्य है। यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं—शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद की दो संहिताएँ प्राप्त होती हैं—काण्व और माध्यन्दिन। कृष्ण यजुर्वेद की चार संहिताएँ प्राप्य हैं—काठक, कापिष्ठल, मैत्रायणी और तैत्तिरीय। सामवेद गानात्मक वेद है। यह दो भागों में विभक्त है—आर्चिक, उत्तरार्चिक। अथर्ववेद की दो संहिताएँ प्राप्त होती हैं—शौनक और पैप्पलाद। प्रत्येक वेद चार भागों में विभक्त है—संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। प्रत्येक वेद के ब्राह्मण आदि हैं। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं—ऐतरेय ब्राह्मण, कौषीतकि ब्राह्मण। शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण है और कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण। सामवेद के ब्राह्मण हैं—ताण्ड्य ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण। अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है। ऋग्वेद के दो आरण्यक हैं—ऐतरेयाण्यक, कौषीतक्यारण्यक। अन्य आरण्यक ब्राह्मण-ग्रन्थों के साथ ही सम्बद्ध हैं। आजकल १२० उपनिषद् उपलब्ध हैं। इनमें से निम्नलिखित ११ ही मुख्य और प्रामाणिक मानी जाती हैं—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर।

(२६) वेदाङ्ग

वेदाङ्ग ६ हैं—१. शिक्षा (ध्वनिविज्ञान), २. व्याकरण, ३. छन्द, ४. निरुक्त (वेदों की निर्वचनात्मक व्याख्या), ५. ज्योतिष, ६. कल्प (कर्मकाण्ड की विधि)। इनके द्वारा वेदों के अर्थों का ज्ञान होता है और मन्त्रों का यज्ञादि में विनियोग भी ज्ञात होता है। शिक्षा और ध्वनिविज्ञान का वर्णन प्रातिशाख्यों और शिक्षा-ग्रन्थों में है। इनमें मुख्य ये हैं—ऋक्प्रातिशाख्य, शुक्लयजुःप्रातिशाख्य, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, सामप्रातिशाख्य, पुष्पसूत्र, अथर्वप्रातिशाख्य। भारद्वाज, व्यास, याज्ञवल्क्य और पाणिनि आदि के शिक्षा-ग्रन्थ हैं। व्याकरण में पाणिनि की अष्टाध्यायी सबसे मुख्य है। इस पर कात्यायन ने वार्तिक और पतंजलि ने महाभाष्य लिखा है। इसके आधार पर काशिका, सिद्धान्तकौमुदी आदि व्याकरण-ग्रन्थ लिखे गये हैं। छन्द विषय पर पिंगल का छन्दःसूत्र प्राचीन ग्रन्थ है। निरुक्त में यास्क का निरुक्त ही प्राप्य है। ज्योतिष विषय पर लगध का वेदांग-ज्योतिष नामक एक प्राचीन ग्रन्थ है। कल्पसूत्र चार भागों में विभक्त हैं—(क) श्रौतसूत्र—इनमें विशेष यज्ञों की विधियाँ वर्णित हैं। इनमें मुख्य आश्वलायनश्रौतसूत्र, कात्यायनश्रौतसूत्र, बौधायनश्रौतसूत्र आदि हैं। (ख) गृह्यसूत्र—इनमें १६ संस्कारों का वर्णन है। गृह्यसूत्र अनेक हैं। ये बौधायन, आपस्तम्ब, गोभिल आदि के हैं। (ग) धर्मसूत्र—इनमें नीति, धर्म, कर्तव्य आदि का वर्णन है। ये भी अनेक हैं। (घ) शुल्बसूत्र—इनमें यज्ञवेदी के निर्माण और नाप आदि का वर्णन है।

(२७) भाषा और भाषण

(भाषाविज्ञान, श्यामसुन्दरदास)

मनुष्य और मनुष्य के बीच, वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं। भाषा विचारों को व्यक्त करती है, पर विचारों से अधिक सम्बन्ध उसके वक्ता के भाव, इच्छा, प्रश्न आदि मनोभावों से रहता है। भाषा सदा किसी न किसी वस्तु के विषय में कुछ कहती है, वह वस्तु चाहे बाह्य भौतिक जगत् की हो अथवा सर्वथा आध्यात्मिक और मानसिक। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। भाषा का शरीर प्रधानतः उन व्यक्त ध्वनियों से बना है, जिन्हें वर्ण कहते हैं। इसके अतिरिक्त संकेत, मुख-विकृति और स्वर-विकार भी भाषा के अङ्ग माने जाते हैं। स्वर, बल-प्रयोग और उच्चारण का वेग या प्रवाह भी भाषा के विशेष अङ्ग हैं। 'बोली' से अभिप्राय स्थानीय और घरेलू बोली से है, जो तनिक भी साहित्यिक नहीं होती और बोलनेवालों के मुख में ही रहती है। 'विभाषाओं' का क्षेत्र बोली से विस्तृत होता है। एक प्रान्त अथवा उपप्रान्त की बोलचाल तथा साहित्यिक रचना की भाषा 'विभाषा' कहलाती है। इसे प्रान्तीय भाषा भी कहते हैं। कई विभाषाओं में व्यवहृत होनेवाली एक शिष्ट-परिगृहीत विभाषा ही 'भाषा' कहलाती है। विभाषा ही भाषा बनती है और वह धार्मिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कारणों से प्रोत्साहन पाकर अपना क्षेत्र अधिक-से-अधिक व्यापक और विस्तृत बनाती है।

(२८) अर्थ-विकास

(अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन)

यास्क ने निरुक्त में सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान आकृष्ट किया है कि किस प्रकार वस्तुओं के नाम पड़ते हैं और आगे चलकर किस प्रकार उनके अर्थों में विस्तार या संकोच होता है। पतंजलि ने महाभाष्य में और भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में इस विषय पर विस्तृत विचार किया है। अर्थविकास की तीन धाराएँ हैं—अर्थसंकोच, अर्थविस्तार और अर्थादेश। एक शब्द जो अपने यौगिक या निर्वचनात्मक अर्थ के आधार पर नानार्थक और व्यापक होना चाहिए था, उसके अर्थों में संकोच हो जाने से उसका व्यापक रूप से प्रयोग नहीं हो सकता है। जैसे—गो, अश्व, परिव्राजक, जीवन आदि में अर्थसंकोच होने से इनका निर्वचनात्मक अर्थ में प्रयोग नहीं हो सकता है। जहाँ शब्द का मूल अर्थ विस्तृत होकर अन्य अर्थों का भी बोध कराता है, वहाँ अर्थविस्तार होता है। जैसे—प्रवीण, कुशल, तैल, गोशाला आदि शब्दों के अर्थों में विस्तार हो गया है। जहाँ पर शब्द अपने मूल अर्थ को छोड़कर नए अर्थ को अपना लेता है, वहाँ अर्थादेश होता है। जैसे—सह् धातु वेद में जीतने अर्थ में है, पर अब उसका अर्थ सहना हो गया है।

संकेत—(२७) परिवारेषूपयुज्यमानया गिरा, नाममात्रमपि। (२८) अर्थान्तराण्य-वगमयति। अभिनवमर्थमात्मसात् करोति। जयार्थे वर्तते, मर्षणार्थे व्यवहियते।

(२९) (क) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

(दशरूपक और साहित्यदर्पण)

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं, जिनके आधार पर उनका विभाजन होता है—वस्तु, नेता और रस। वस्तु को कथावस्तु भी कहते हैं। वस्तु को दो भागों में विभक्त किया गया है—(१) आधिकारिक—वह कथावस्तु है जो मुख्य कथा होती है। (२) प्रासंगिक—वह कथा है जो गौणरूप से हो और मुख्य कथा का अंग हो। सम्पूर्ण कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) प्रख्यात—जो इतिहास पर अवलम्बित हो। (२) उत्पाद्य—कवि-कल्पित हो (३) मिश्र—कुछ अंश ऐतिहासिक हो और कुछ कवि-कल्पित। नाटक में पाँच अर्थप्रकृतियाँ, पाँच अवस्थाएँ और पाँच सन्धियाँ होती हैं। अर्थप्रकृतियाँ नाटकीय कथा-वस्तु के पाँच तत्त्व हैं। ये प्रयोजन की सिद्धि के कारण होते हैं। (१) बीज—वह तत्त्व है, जो प्रारम्भ में संक्षेप में निर्दिष्ट हो और आगे उसका ही विस्तार हो। (२) बिन्दु—यह अवान्तर कथा से मूल कथा के टूटने पर उसे जोड़ता और आगे बढ़ाता है। (३) पताका—वह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती है। (४) प्रकरी—वह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर तक चलती है। (५) कार्य—जो साध्य या लक्ष्य होता है, उसे कार्य कहते हैं।

(३०) (ख) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

नाटकीय कार्य की प्रगति के विभिन्न विश्रामों को अवस्थाएँ कहते हैं। ये पाँच हैं—(१) आरम्भ—मुख्य फल की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है, उसे आरम्भ कहते हैं। (२) यत्न—फल की प्राप्ति के लिए नायक जो बड़े वेग से प्रयत्न करता है, उसे यत्न कहते हैं। (३) प्राप्त्याशा—अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों के द्वारा फल-प्राप्ति की कभी सम्भावना और कभी असम्भावना, इस संदिग्ध अवस्था को प्राप्त्याशा कहते हैं। (४) नियताप्ति—इसमें विघ्नों के हट जाने से फल-प्राप्ति निश्चित जान पड़ती है। (५) फलागम—जब इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है। पाँचों अर्थप्रकृतियों को क्रमशः पाँचों अवस्थाओं से जो सम्बद्ध करती हैं, उन्हें सन्धियाँ कहते हैं। ये पाँच हैं—(१) मुख—बीज और आरम्भ को मिलाकर मुख-सन्धि होती है। (२) प्रतिमुख-सन्धि—बिन्दु और यत्न को मिलाकर। (३) गर्भ-सन्धि—पताका और प्राप्त्याशा को मिलाकर। (४) विमर्श-सन्धि—प्रकरी और नियताप्ति को मिलाकर। (५) उपसंहृति या निर्वहण-सन्धि—कार्य और फलागम को मिलाकर। नाटक में अभिनय चार प्रकार का होता है—(१) आङ्गिक—शरीर के अंगों के द्वारा। (२) वाचिक—वाणी के द्वारा। (३) आहार्य—वेषभूषा के द्वारा। (४) सात्त्विक—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, अश्रु आदि के द्वारा।

संकेत—(२९) अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद् विसर्पति। अवान्तरार्थ-विच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्। व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते। प्रासङ्गिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता। समापनं तु यत् सिद्ध्यै तत्कार्यमिति संमतम्।

(३१) (ग) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

रंगमंच पर प्रदर्शित करने की दृष्टि से कथा-वस्तु के दो विभाग किये गये हैं—(१) सूच्य—नीरस या अनुचित घटनाएँ, जिनकी केवल सूचना दे दी जाती है। (२) दृश्य श्रव्य—दर्शनीय और श्रवणीय वस्तुएँ, जिनका प्रदर्शन किया जाता है। सूच्य वस्तुओं को जिन उपायों से सूचित किया जाता है, उन्हें अर्थोपक्षेपक कहते हैं। वे पाँच हैं—(१) विष्कम्भक—भूत और भावी घटनाओं की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। एक या दो मध्यम कोटि के पात्र हों तो 'शुद्ध विष्कम्भक', नीच और मध्यम दोनों कोटि के पात्र हों तो उसे 'मिश्र विष्कम्भक' कहते हैं। इनकी भाषा संस्कृत या शौरसेनी प्राकृत होती है। (२) प्रवेशक—भूत और भावी घटनाओं की सूचना निम्न श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। इनकी भाषा केवल प्राकृत ही होती है। (३) चूलिका—पर्दे के पीछे से वस्तु या घटना की सूचना देना। जैसे—नेपथ्य से कथन। (४) अंकास्य—अंक के समाप्ति के समय जाते हुए पात्रों के द्वारा अगले अंक की घटना की सूचना देना। (५) अंकावतार—अंक की समाप्ति के पहले ही अगले अंक की कथावस्तु का प्रारम्भ करना।

(३२) (घ) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

सुनाने या न सुनाने की दृष्टि से कथावस्तु के तीन विभाग किये गये हैं—(१) सर्वश्राव्य या प्रकाश—जो बात सबको सुनाने योग्य है। (२) अश्राव्य या स्वगत—जो बात सुमाने के योग्य न हो और मन-ही-मन कही जाए। (३) नियतश्राव्य—जो बात कुछ लोगों को ही सुनानी होती है। इसके दो विभाग हैं—(क) जनान्तिक—हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना कि अन्य पात्र उसे न सुन पावें। (ख) अपवारित—मुँह फेरकर किसी दूसरे पात्र की गुप्त बात कहना। एक और भेद आकाशभाषित है, ऊपर मुँह करके स्वयं ही अकेले बात करना। नाटक में चार वृत्तियाँ या शैलियाँ होती हैं—(१) कैशिकी वृत्ति—यह शृंगारप्रधान नाटकों के उपयुक्त है। इसमें मनोहर वेषभूषा, स्त्रियों की अधिकता, नृत्य-गीत का बाहुल्य और शृंगाररस की मुख्यता होती है। (२) सात्वती वृत्ति—यह वीररस-प्रधान नाटकों के योग्य है। इसमें सत्त्व, शौर्य, त्याग, दया, ऋजुता आदि गुणों का बाहुल्य होता है; शोक का अभाव और हर्ष का विस्तार होता है। (३) आरभटी वृत्ति—यह रौद्र और बीभत्सरसों के योग्य है। इसमें माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, वध, बन्धन आदि कार्य मुख्य होते हैं। (४) भारती वृत्ति—इसका सभी रसों में उपयोग होता है। इसमें संस्कृत का प्रयोग अधिक होता है, स्त्रियाँ नहीं होती हैं, वाचिक कार्य अधिक होता है।

संकेत—(३१) अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका। (३२) (१) सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्। (२) अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्। (क) त्रिपाताकरोणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्। अन्योन्यामन्त्रणं यत् स्यात् तज्जनान्ते जनान्तिकम्। (ख) तद् भवेदपवारितम्। रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते।

(३३) भाव या मनोविकार

(रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि)

नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे सम्बन्ध रखनेवाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के वे भिन्न-भिन्न योग संघटित होते हैं, जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सुख और दुःख की मूल अनुभूति ही विषय-भेद के अनुसार प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा इत्यादि मनोविकारों का जटिल रूप धारण करती है। मनोविकारों या भावों की अनुभूतियाँ परस्पर तथा सुख या दुःख की मूल अनुभूति से ऐसी ही भिन्न होती हैं, जैसे रासायनिक मिश्रण परस्पर तथा अपने संयोजक द्रव्यों से भिन्न होते हैं। समस्त मानव-जीवन के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं। मनुष्य की प्रवृत्तियों की तह में अनेक प्रकार के भाव ही प्रेरक के रूप में पाये जाते हैं। शील या चरित्र का मूल भी भावों के विशेष प्रकार के संघटन में ही समझना चाहिए। लोक-रक्षा और लोक-रंजन की सारी व्यवस्था का ढाँचा इन्हीं पर ठहराया गया है।

(३४) श्रद्धा-भक्ति

(चिन्तामणि)

किसी मनुष्य में जन-साधारण से विशेष गुण या शक्ति का विकास देख उसके सम्बन्ध में जो एक स्थायी आनन्द-पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है, उसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य-बुद्धि का संचार है। प्रेम और श्रद्धा में अन्तर यह है कि प्रेम प्रिय के स्वाधीन कार्यों पर ही निर्भर नहीं। कभी-कभी किसी का रूप मात्र, जिसमें उसका कुछ भी हाथ नहीं, उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होने का कारण होता है। पर श्रद्धा ऐसी नहीं है। प्रेम के लिए इतना ही बस है कि कोई मनुष्य हमें अच्छा लगे; पर श्रद्धा के लिए आवश्यक यह है कि कोई मनुष्य किसी बात में बढ़ा हुआ होने के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो। श्रद्धा का व्यापारस्थल विस्तृत है, प्रेम का एकान्त। प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार। प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण। प्रेम में केवल दो पक्ष होते हैं, श्रद्धा में तीन। प्रेम एकमात्र अपने ही अनुभव पर निर्भर रहता है, पर श्रद्धा दूसरों के अनुभव पर भी जगती है।

संकेत—(३३) मूले, प्रेरकत्वेनोपलभ्यन्ते, अवगन्तव्यम्, आधारः, उपस्थाप्यते। (३४)

पर्याप्तिमेतदेव, रोचेत, कमपि विषयमवलम्ब्य समुन्नत्या, एकान्तम्, उद्बुध्यते।

(३५) कविता क्या है ?

(चिन्तामणि)

जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं। कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किये रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।

(३६) काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था

(चिन्तामणि)

सत्, चित् और आनन्द—ब्रह्म के इन तीन स्वरूपों में से काव्य और भक्तिमार्ग 'आनन्द' स्वरूप को लेकर चले। विचार करने पर लोक में इस आनन्द की अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएँ पाई जाएँगी—साधारणावस्था और सिद्धावस्था। आनन्द की साधनावस्था प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलती है और सिद्धावस्था उपभोग-पक्ष को लेकर। साधनावस्था को लेकर चलनेवाले काव्य हैं—रामायण, महाभारत, रघुवंश, शिशुपालवध, किरातार्जुनीय आदि। सिद्धावस्था को लेकर चलनेवाले काव्य हैं—आर्यासप्तशती, अमरुशतक, गीतगोविन्द आदि। लोक में फैली दुःख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनन्दकला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचण्डता में भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामंजस्य कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है। भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचण्डता और मृदुता का सामंजस्य ही लोकधर्म का सौन्दर्य है। धर्म और मंगल की यह ज्योति अधर्म और अमंगल की घटा को फाड़ती हुई फूटती है। काव्य में सारे भाव, सारे रूप और सारे व्यापार आनन्द-कला के विकास में ही योग देते हैं।

संकेत—(३५) समकक्षत्वेन मन्यामहे। आक्षिप्य। भूमिमेतामारूढस्य मनुजस्य, आत्मावबोधोऽपि न जायते। विलाययति। (३६) आश्रित्य प्रवृत्तौ। अनुशीलनेन, अवस्थाद्वयमुपलप्स्यते। अवलम्ब्य प्रवर्तते। प्रवृत्तानि। प्रसृताम्, अपहर्तुम्, गभीरा। संगच्छते (सम्+गम् आत्मनेपदी)। ज्योतिरिदम्, विदारयत् प्रस्फुटति। साहाय्यमादधति।

(३७) साधारणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद

(चिन्तामणि)

जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबसे उसी भाव का आलम्बन हो सके, तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ 'साधारणीकरण' कहलाता है। सच्चा कवि वही है, जिसे लोक-हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य-जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक-हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है। भाव और विभाव दोनों पक्षों के सामंजस्य के बिना पूरी और सच्ची रसानुभूति हो नहीं सकती। काव्य का विषय सदा 'विशेष' होता है, 'सामान्य' नहीं; वह 'व्यक्ति' सामने लाता है, 'जाति' नहीं। काव्य का काम है कल्पना में बिम्ब या मूर्त भावना उपस्थित करना, बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं। 'बिम्ब' जब होगा तब विशेष या व्यक्ति का ही होगा, सामान्य या जाति का नहीं।

(३८) रसात्मक-बोध के विविध स्वरूप

(चिन्तामणि)

संसार-सागर की रूप-तरंगों से मनुष्य की कल्पना का निर्माण और इसीकी रूप-गति से उसके भीतर विविध भावों या मनोविकारों का विधान हुआ है। सौन्दर्य, माधुर्य, विचित्रता, भीषणता, क्रूरता आदि की भावनाएँ बाहरी रूपों और व्यापारों से ही निष्पन्न हुई हैं। हमारे प्रेम, भय, आश्चर्य, क्रोध, करुणा आदि भावों की प्रतिष्ठा करनेवाले मूल आलम्बन बाहर ही के हैं। रूप-विधान तीन प्रकार के हैं—(१) प्रत्यक्ष रूप-विधान, (२) स्मृत रूप-विधान, (३) कल्पित रूप-विधान। (१) प्रत्यक्ष रूप-विधान भावुकता की प्रतिष्ठा करनेवाले मूल आधार या उपादान हैं। इन प्रत्यक्ष रूपों की मार्मिक अनुभूति जिनमें जितनी ही अधिक होती है, वे उतने ही रसानुभूति के उपयुक्त होते हैं। (२) स्मृति दो प्रकार की होती है—(क) विशुद्ध स्मृति—वह स्मृति जो हमारी मनोवृत्ति को शुद्ध मुक्त भावभूमि में ले जाती है। जैसे—प्रिय-स्मरण, बाल्यकाल या यौवनकाल के अतीत जीवन का स्मरण। (ख) प्रत्यभिज्ञान—यह प्रत्यक्ष-मिश्रित स्मरण है। प्रत्यभिज्ञान में थोड़ा-सा अंश प्रत्यक्ष होता है और बहुत-सा अंश उसीके सम्बन्ध में स्मरण द्वारा उपस्थित होता है। जैसे—'यह वही है' के द्वारा व्यक्ति को देखकर यह वही झगड़ालू व्यक्ति है, जो उस दिन झगड़ा कर रहा था, यह स्मरण करना। (३) कल्पना—काव्य-वस्तु का सारा रूप-विधान इसी क्रिया से होता है। वचनों द्वारा भाव-व्यंजना के क्षेत्र में कल्पना को पूरी स्वच्छन्दता रहती है।

संकेत—(३७) नैतद्रूपं प्राप्यते, भवेत्, न भवति। एतद्रूपतां प्रापणमेव। हृदयं परिचिनोति। लयस्य। वास्तविकी। उपस्थापयति। उपस्थापनम्, आहरणम्। (३८) बाह्यरूपेभ्यः निष्पन्नाः। प्रतिष्ठापकानि। बाह्यान्वेय। नयति। स्तोकांशः, भूयानंशः। कलहप्रियः। विवदमानोऽभवत्। कल्पना पूर्णस्वातन्त्र्यमनुभवति।

(३९) विराग या अनुराग

(चित्रलेखा)

विराग मनुष्य के लिए असम्भव है, क्योंकि विराग नकारात्मक है। विराग का आधार शून्य है—कुछ नहीं है। ऐसी अवस्था में जब कोई कहता है कि वह **विरागी** है, **गलत कहता है**, क्योंकि उस समय वह यह कहना चाहता है कि उसका संसार के प्रति विराग है। पर साथ ही किसीके प्रति उसका अनुराग अवश्य है, और उसके अनुराग का केन्द्र है ब्रह्म। जीवन का कार्यक्रम है रचनात्मक, विनाशात्मक नहीं। मनुष्य का कर्तव्य है अनुराग, विराग नहीं। 'ब्रह्म से अनुराग' के अर्थ होते हैं—ब्रह्म से पृथक् वस्तु की उपेक्षा, अथवा उसके प्रति विराग। पर **वास्तव में** देखा जाए तो **विरागी** कहलानेवाला व्यक्ति वास्तव में विरागी नहीं, अपितु **ईश्वरानुरागी** होता है। क्या संसार से विराग और ब्रह्म से अनुराग—ये दोनों एक चीज हैं?

(४०) पाप और पुण्य

(चित्रलेखा)

संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मनःप्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति इस **संसार के रंगमंच पर एक** अभिनय करने आता है। अपनी मनः-प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह **दुहराता है**—यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है, और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है, विवश है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा?

मनुष्य में ममत्व प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। परन्तु व्यक्तियों के सुख के केन्द्र भिन्न होते हैं। कुछ सुख को धन में देखते हैं, कुछ सुख को मदिरा में देखते हैं, कुछ सुख को सत्कर्म में देखते हैं और कुछ दुष्कर्म में, कुछ सुख को त्याग में देखते हैं और कुछ संग्रह में, पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। कोई भी व्यक्ति संसार में अपनी इच्छानुसार ऐसा काम नहीं करेगा, जिससे दुःख मिले। यही मनुष्य की मनः-प्रवृत्ति है और उसके दृष्टिकोण की विषमता है। संसार में इसीलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकती और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम वही करते हैं जो हमें करना पड़ता है।

संकेत—(३९) असद्रूपः सः, स विरक्त इति, मृषाऽभिधानं तत्, परमार्थतः, विरक्त इति, ईश्वरानुरक्तः, किमुभयमेतत् पर्यायत्वेन गणनीयम्। (४०) अवनिरङ्गो, आवर्तयति, स्वस्य प्रभुः, साधनमात्रं सः, न भूता न भविष्यति, यद् विवशत्वेन विधेयं भवति।

(१२) सुभाषित-मुक्तावली

सूचना—(१) सुभाषित विषयानुसार अकारादि-क्रम से दिये गये हैं। (२) सुभाषितों के आगे ग्रन्थ-नाम संक्षेप में दिया गया है, जिस ग्रन्थ से वह सुभाषित संकलित किया गया है। (३) जिन सुभाषितों का विवरण अज्ञात या सन्दिग्ध है, उनके आगे गन्ध-नाम नहीं दिया गया है। (४) सुभाषित वर्गों और उपवर्गों में विषय के आधार पर विभाजित किये गये हैं। (५) संक्षेप के लिए ग्रन्थों के निम्नलिखित संकेत दिये गये हैं।

संकेत-सूची

अ०=अनर्घराघव	च०=चरकसंहिता	मृ०=मृच्छकटिक
उ०=उत्तररामचरित	चा०=चाणक्यनीति	मे०=मेघदूत
ऋ०=ऋग्वेद	चौ०=चौरपंचाशिका	यजु०=यजुर्वेद
क०=कथासरित्सागर	द०=दशकुमारचरित	यो०=योगवासिष्ठ
का०=कादम्बरी	दृ०=दृष्टान्तशतक	र०=रघुवंश
का०नी०=कामन्दकीयनीति	नै०=नैषधीयचरित	रा०=रामायण (वाल्मीकीय)
काव्य०=काव्यादर्श	प०=पञ्चतन्त्र	वि०=विक्रमोर्वशीय
कि०=किरातार्जुनीय	प्र०=प्रसन्नराघव	शा०=अभिज्ञानशाकुन्तल
कु०=कुमारसम्भव	भ०=भर्तृहरिशतकत्रय	(शाकुन्तल)
कुव०=कुवलयानन्द	भा०=भागवतपुराण	शा०प०=शार्ङ्गधरपद्धति
गी०=भगवद्गीता	म०=मनुस्मृति	शि०=शिशुपालवध
गु०=गुणरत्न	महा०=महाभारत	ह०=हर्षचरित
घ०=घटखर्परकाव्य	मा०=मालतीमाधव	हि०=हितोपदेश

(१) भारत-प्रशंसा

(क) भारत-प्रशंसा

१. दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम्।

(ख) भूमि-प्रशंसा

१. बहुरत्ना वसुन्धरा। २. बह्वाश्चर्या हि मेदिनी (क०)।

(ग) जन्मभूमि-प्रशंसा

१. जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। २. प्राणिनां हि निकृष्टाऽपि जन्मभूमिः परा प्रिया (क०)।

(२) अध्यात्म

(क) अध्यात्म

१. अमृतायते हि सुतपः सुकर्मणाम् (कि०) । २. इति त्याज्ये भवे भव्यो मुक्तावुत्तिष्ठते जनः (कि०) । ३. उदिते परमानन्दे नाहं न त्वं न वै जगत् । ४. एकाग्रो हि बहिर्वृत्तिनिवृत्तस्तत्त्वमीक्षते । ५. किमिवास्ति यत्र तपसामदुष्करम् (कि०) । ६. छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे, शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा (शा०) । ७. जपतो नास्ति पातकम् । ८. ज्ञानमार्गे ह्यहंकारः परिधो दुरतिक्रमः (क०) । ९. तपःसीमा मुक्तिः । १०. तपोऽधीनानि श्रेयांसि ह्युपायोऽन्यो न विद्यते (क०) । ११. तपोधीना हि संपदः (क०) । १२. दृष्टतत्त्वश्च न पुनः कर्मजालेन बध्यते (क०) । १३. धन्यास्ते भुवि ये निवृत्तमनसो धिग् दुःखितान् कामिनः । १४. न मुक्तेः परमा गतिः (यो०) । १५. न वैराग्यात् परं भाग्यम् । १६. न शान्तेः परमं सुखम् । १७. नहि महतां सुकरः समाधिभङ्गः (कि०) । १८. निरुत्सुकानामभियोगभाजां समुत्सुकेवाङ्कमुपैति सिद्धिः (क०) । १९. निवृत्तपापसंपर्काः सन्तो यान्ति हि निर्वृतिम् (क०) । २०. निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् (हि०) । २१. निस्पृहस्य तृणं जगत् । २२. बोधे बोधे सच्चिदानन्दभासः । २३. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः (शाट्या० उप०) । २४. लब्धदिव्यरसास्वादः को हि रज्येद् रसान्तरे (क०) । २५. वाञ्छारत्नं परमपदवी । २६. विरक्तस्य तृणं जगत् । २७. विरक्तस्य तृणं भार्या । २८. शीलयन्ति यतयः सुशीलताम् (कि०) । २९. साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः (निरुक्त) । ३०. साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः (उ०) । ३१. साधने हि नियमोऽन्यजनानां योगिनां तु तपसाऽखिलसिद्धिः (नै०) । ३२. सुखमास्ते निःस्पृहः पुरुषः । ३३. स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः (शा०) ।

(ख) कर्मफल

१. अयि खलु विषमः पुराकृतानां, भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः । २. आत्मकृतानां हि दोषाणां नियतमनुभवितव्यं फलमात्मनैव (का०) । ३. कर्म कः स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते (नै०) । ४. कर्मदोषाद् दरिद्रता । ५. कर्मानुगो गच्छति जीव एकः (भा०) । ६. कर्मयत्तं फलं पुंसाम् । ७. गहना कर्मणो गतिः (गी०) । ८. चित्रा गतिः कर्मणाम् । ९. जन्मान्तरकृतं हि कर्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि (का०) । १०. प्राचीनकर्म बलवन्मुनयो वदन्ति (महा०) । ११. भद्रकृत् प्राप्नुयाद् भद्रमभद्रं चाप्यभद्रकृत् (क०) । १२. भद्रमभद्रं वा कृतमात्मनि कल्प्यते (क०) । १३. स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ।

(ग) दर्शन

१. अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः (कि०) । २. भस्मीभूतस्य जीवस्य पुनरागमनं कुतः (नै०) । ३. भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः । ४. मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु०) । ५. मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम् (२०) । ६. यस्यामेव वेलायां चित्तवृत्तिः, सैव वेला सर्वकार्येषु (का०) । ७. वक्ति जन्मान्तरप्रीतिं मनः स्निह्यदकारणम् (क०) । ८. विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः (कि०) । ९. विचित्राः खलु वासनाः । १०. विमलं कलुषीभवच्च चेतः कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा (कि०) । ११. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः (शा०) । १२. सदा स्याद्योऽत्र यच्चित्तस्तन्मयत्वमुपैति सः (क०) । १३. सर्वश्चित्तप्रमाणेन सदसद् वाऽभिवाञ्छति (क०) । १४. सिद्धिं वा यदि वाऽसिद्धिं चित्तोत्साहो निवेदयेत् (प०) ।

(घ) देव-कृपा

१. अमोघो देवतानां च प्रसादः किं न साधयेत् (क०) । २. देवा हि नान्यद् वितरन्ति किन्तु प्रसद्य ते साधुधियं ददन्ते (नै०) । ३. दोषोऽपि गुणतां याति, प्रभोर्भवति चेत्कृपा । ४. न देवा यष्टिमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् । यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संयोजयन्ति तम् (महा०) । ५. प्रसन्ने हि किमप्राप्यमस्तीह परमेश्वरे (क०) । ६. विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया (२०) । ७. सानुकूले जगन्नाथे विप्रियः सुप्रियो भवेत् ।

(ङ) दैव-स्वरूप (दैवप्रशंसा, दैवनिन्दा, भाग्य, भाग्यहीन)

१. अनतिक्रमणीया हि नियतिः (का०) । २. अपि धन्वन्तरिवैद्यः किं करोति गतायुषि । ३. अभद्रं भद्रं वा विधिलिखितमुन्मूलयति कः । ४. असंभाव्या अपि नृणां भवन्तीह समागमाः (क०) । ५. असाध्यं साधत्यर्थं हेलयाऽभिमुखो विधिः (क०) । ६. अहह कष्टपण्डितता विधेः (भ०) । ७. अहो दैवाभिशातानां प्राप्तोऽप्यर्थः पलायते (क०) । ८. अहो नवनवाश्चर्यनिर्माणे रसिको विधिः (क०) । ९. अहो विधेरचिन्त्यैव गतिरदभुतकर्मणाम् (क०) । १०. अहो विधौ विपर्यस्ते न विपर्यस्यतीह किम् (क०) । ११. ईदृशी भवितव्यता (कि०) । १२. कल्पवृक्षोऽप्यभयानां प्रायो याति पलाशताम् (क०) । १३. कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं, दुःखमेकान्ततां वा । नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मे०) । १४. किं हि न भवेदीश्वरेच्छया (क०) । १५. को जानाति जनो जनार्दनमनोवृत्तिः कदा कीदृशी । १६. को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे (उ०) । १७. को हि स्वशिरसश्छायां विधेश्चोल्लंघयेद् गतिम् (क०) । १८. कुद्धे विधौ भजति मित्रममित्रभावम् । १९. दैवो दुर्बलघातकः । २०. दैवमेव हि साहाय्यं कुरुते सत्त्वशालिनाम् (क०) । २१. दैवी विचित्रा गतिः । २२. दैवे दुर्जनतां गते तृणमपि प्रायेण वज्रायते । २३. दैवे निरुन्धति निबन्धनतां वहन्ति, हन्त प्रयासपरुषाणि न पौरुषाणि (नै०) । २४. दैवेनैव

हि साध्यन्ते सदर्थाः शुभकर्मणाम् (क०) । २५. न च दैवात् परं बलम् । २६. ननु दैवमेव शरणं धिग् धिग् वृथा पौरुषम् । २७. न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः (२०) । २८. न ह्यलमतिनिपुणोऽपि पुरुषो नियतिलिखितां लेखामतिक्रमितुम् (द०) । २९. नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः । ३०. नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मे०) । ३१. नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलम् (भ०) । ३२. नैवान्यथा भवति यल्लिखितं विधात्रा । ३३. प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता (शि०) । ३४. प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति (हि०) । ३५. प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः (भ०) । ३६. फलं भाग्यानुसारतः (महा०) । ३७. बलवति सति दैवे बन्धुभिः किं विधेयम् । ३८. बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा (महा०) । ३९. भवितव्यता बलवती (शा०) । ४०. भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशी गतिः (महा०) । ४१. भवितव्यस्य नासाध्यं दृश्यते बत दृश्यताम् (क०) । ४२. भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (शा०) । ४३. यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्माजितुं कः क्षमः (हि०) । ४४. यदभावि न तद्भावि, भावि चेन्न तदन्यथा (हि०) । ४५. लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः । ४६. वक्रे विधौ वद कथं व्यवसायसिद्धिः । ४७. वामे विधौ नहि फलन्त्यभिवाञ्छितानि । ४८. विधिरहो बलवानिति मे मतिः (भा०) । ४९. विधिरुच्छृङ्खलो नृणाम् । ५०. विधिर्हि घटयत्यर्थानचिन्त्यानपि संमुखः (क०) । ५१. विधिलिखितं बुद्धिरनुसरति । ५२. विधेर्विचित्राणि विचेष्टितानि । ५३. विधेर्विलासानब्धेश्च तरङ्गान् को हि तर्कयेत् (क०) । ५४. शक्या हि केन निश्चेतुं दुर्ज्ञाना नियतेर्गतिः (क०) । ५५. शिरसि लिखितं लंघयति कः । ५६. साध्यासाध्यविचारं हि नेक्षते भवितव्यता (क०) ।

(च) धर्म-चर्चा

१. अचिन्त्यो बत दैवेनाप्यापातः सुखदुःखयोः (क०) । २. अधर्मविषवृक्षस्य पच्यते स्वादु किं फलम् (क०) । ३. अनपायि निबर्हणं द्विषां, न तितिक्षासममस्ति साधनम् (कि०) । ४. अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म (कु०) । ५. को धर्मः कृपया विना । ६. क्षमया किं न सिध्यति । ७. क्षान्तितुल्यं तपो नास्ति । ८. चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि य (यो०) । ९. त्रैलोक्ये दीपको धर्मः । १०. धर्मः कीर्तिद्वयं स्थिरम् (महा०) । ११. धर्मः सत्येन वर्धते । १२. धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति । १३. धर्मसंरक्षणार्थं प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः (२०) । १४. धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् (महा०) । १५. धर्मस्य त्वरिता गतिः (प०) । १६. धर्मेण चरतां सत्ये नास्त्यनभ्युदयः क्वचित् (क०) । १७. धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः (हि०) । १८. धर्मो मित्रं मृतस्य च । १९. धर्मो हि सान्निध्यं कुरुते सताम् (क०) । २०. न च धर्मो

दयापरः । २१. न दयासदृशं ज्ञानम् । २२. न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते (कु०) । २३. न धर्मसदृशं मित्रम् । २४. न धर्मात् परमं मित्रम् । २५. नाधर्मश्चिरमृद्धये (क०) । २६. नानृतात् पातकं परम् । २७. नास्ति सत्यसमो धर्मः (महा०) । २८. निसर्गविरोधिनी चेयं पयःपावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्तिः (महा०) । २९. पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम् (र०) । ३०. प्रमाणं परमं श्रुतिः (महा०) । ३१. भवन्त्येव हि भद्राणि धर्मादेव यदादरात् (क०) । ३२. महेश्वरमनाराध्य न सन्तीप्सितसिद्धयः (क०) । ३३. यतः सत्यं ततो धर्मः । ३४. यतो धर्मस्ततो जयः । ३५. योगिनां परिणमन् विमुक्तये, केन नाऽस्तु विनयः सतां प्रियः (कि०) । ३६. वचोभूषा सत्यम् । ३७. वित्तेन रक्ष्यते धर्मो, विद्या योगेन रक्ष्यते (चा०) । ३८. व्यक्तिमायाति महतां माहात्म्यमनुकम्पया (क०) । ३९. श्रवणपुटरत्नं हरिकथा । ४०. श्रीमङ्गलात् प्रभवति (महा०) । ४१. श्रेयसि केन तृप्यते (शि०) । ४२. सत्यं सम्यक् कृतोऽल्पोऽपि, धर्मो भूरिफलो भवेत् (क०) । ४३. सत्यं कण्ठस्य भूषणम् । ४४. सत्यं न तद् यच्छलमभ्युपैति । ४५. सत्यमेव जयते नानृतम् । ४६. सत्येन धार्यते पृथ्वी । ४७. स धार्मिको यः परमर्म न स्पृशेत् । ४८. सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् (चा०) । ४९. स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः (गी०) ।

(३) अर्थ (धन)

(क) धन-निन्दा

१. अकाण्डपातोपनता न कं लक्ष्मीर्विमोहयेत् (क०) । २. अकालमेघवद् वित्तम-
कस्मादेति याति च (क०) । ३. आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः (प०) । ४.
ऋद्धिश्चित्तविकारिणी । ५. कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितः (प०) । ६. जलबुद्बुदसमाना विराजमाना
संपत् तडिल्लतेव सहसैवोदेति, नश्यति च (द०) । ७. धनोष्मणा म्लायत्यलं लतेव मनस्विता
(ह०) । ८. मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु (शा०) । ९. यत्रास्ति लक्ष्मीर्विनयो न तत्र ।
१०. शरदभ्रचलाश्चलेन्द्रियैरसुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रियः (कि०) । ११. सम्पत्कणिकामपि प्राप्य
तुलेव लघुप्रकृतिरुन्नतिमायाति (ह०) । १२. साधुवृत्तानपि क्षुद्रा विक्षिपन्त्येव सम्पदः (कि०) ।

(ख) धन-प्रशंसा

१. अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः । २. अर्थेन बलवान् सर्वः । ३. को न तृप्यति
वित्तेन । ४. चाण्डालोऽपि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम् । ५. द्रव्येण सर्वे वशाः । ६. धनं
सर्वप्रयोजनम् । ७. निर्गलिताम्बुगर्भं, शरदघनं नादति चातकोऽपि (र०) । ८. पात्रत्वाद्
धनमाप्नोति । ९. पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी । १०. पूज्यं वाक्यं समृद्धस्य । ११. भोगो भूषयते

धनम् । १२. मातर्लक्ष्मि तव प्रसादवशतो दोषा अपि स्युर्गुणाः । १३. लक्ष्मीर्यस्य गृहे स एव भजति प्रायो जगद्वन्द्यताम् । १४. लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् (शा०) । १५. सा लक्ष्मीरूपकुरुते यया परेषाम् (कि०) ।

(ग) निर्धनता (निर्धन)

१. अवज्ञासोदर्यं दारिद्र्यम् (द०) । २. उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः । ३. कष्टं निर्धनिकस्य जीवितमहो दारैरपि त्यज्यते । ४. कृशे कस्यास्ति सौहृदम् (प०) । ५. क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति (प०) । ६. दरिद्रता धीरतया विराजते । ७. दारिद्र्यदोषेण करोति पापम् । ८. दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी (घ०) । ९. दारिद्र्यं परमाञ्जनम् (भा०) । १०. न दरिद्रस्तथा दुःखी लब्धक्षीणधनो यथा । ११. निर्धनता सर्वापदामास्पदम् (मृ०) । १२. निर्धनस्य कुतः सुखम् । १३. पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी । १४. पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपाः । १५. बुभुक्षितः किं न करोति पापम् (प०) । १६. बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् । १७. बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते । १८. रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय (मे०) । १९. विषं गोष्ठी दरिद्रस्य । २०. वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः । २१. सर्वं शून्यं दरिद्रस्य (प०) । २२. सर्वशून्या दरिद्रता ।

(४) काम (भोगनिन्दा)

१. अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः (र०) । २. अहो अतीव भोगाशा कं नाम न विडम्बयेत् (क०) । ३. आकृष्टः कामलोभाभ्यामपायः को न पश्यति (क०) । ४. आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (कि०) । ५. कामक्रोधौ हि विप्राणां मोक्षद्वारगालावुभौ (क०) । ६. कामातुराणां न भयं न लज्जा (भ०) । ७. कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु (मे०) । ८. कुतः सत्यं च कामिनाम् । ९. कोऽवकाशो विवेकस्य हृदि कामान्धचेतसः (क०) । १०. को हि मार्गमार्गं वा व्यसनान्धो निरीक्षते (क०) । ११. तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत् सागरम् । १२. दुर्जया हि विषया विदुषापि (नै०) । १३. न कामसदृशो रिपुः (यो०) । १४. नास्ति कामसमो व्याधिः । १५. भोगान् भोगानिवाहेयान् अध्यास्यापन्नं दुर्लभा (कि०) । १६. वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम् (प०) । १७. विषयाकृष्यमाणा हि तिष्ठन्ति सुपथे कथम् (क०) । १८. विषयिणः कस्यापदोऽस्तं गताः । १९. श्रद्धेया विप्रलब्धारः..... कामाः कष्टा हि शत्रवः (कि० ११-३५) । २०. सङ्गात् संजायते कामः (गी०) ।

(५) जगत्-स्वरूप

(क) जगत्-स्वरूप

१. असारेऽस्मिन् भवे तावद् भावाः पर्यन्तनीरसाः (क०) । २. न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः । ३. परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते । ४. मधुरविधुरमिश्राः सृष्टयो हा विधातुः (प्र०) ।

(ख) नश्वरता

१. अतिद्रुतवाहिनी चानित्यतानदी (ह०) । २. अस्थिरं जीवितं लोके (हि०) । ३. अस्थिराः पुत्रदाराश्च (हि०) । ४. अस्थिरे धनयौवने (हि०) । ५. क्षणविध्वंसिनः कायाः का चिन्ता मरणे रणे । ६. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च (गी०) । ७. धिगिमां देहभृतामसारताम् (र०) । ८. न वस्तु दैवस्वरसाद् विनश्वरं सुरेश्वरोऽपि प्रतिकर्तुमीश्वरः (नै०) । ९. मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः । (र०) । १०. सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः (महा०) ।

(ग) लोक-स्वभाव

१. अतिकष्टास्वप्यवस्थासु जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति सर्वप्राणिनां प्रवृत्तयः (का०) । २. अहो धिग्वैषम्यं लोकव्यवहारस्य (मृ०) । ३. आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः (का०) । ४. गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम् । ५. गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः । ६. जनस्य रूढप्रणयस्य चेतसः किमप्यमर्षोऽनुनये भृशायते (कि०) । ७. जनाने कः करमर्पयिष्यति (नै०) । ८. ध्रुवमभिमते को वा पूर्णे मुदा न हि माद्यति (कु०) । ९. नवा वाणो मुखे मुखे । १०. न सन्त्येव ते येषां सतामपि सतां न विद्यन्ते मित्रोदासीनशत्रवः (ह०) । ११. नहि सर्वविदः सर्वे । १२. नहि सर्वेऽपि कुर्वन्ति सभ्या युक्तिविवेचनम् । १३. पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि । उपकार्योपकर्तारो मित्रोदासीनशत्रवः (महा०) । १४. पिण्डे-पिण्डे मतिभिन्ना तुण्डे-तुण्डे सरस्वती । १५. पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् । १६. प्रमादमोहितः प्रायो न विचारक्षमो जनः (क०) । १७. भिन्नरुचिर्हि लोकः । १८. सर्वः स्वार्थं समीहते (शि०) ।

(घ) स्वभावो दुरतिक्रमः

१. आकण्ठजलमग्नोऽपि श्वा लिहत्येव जिह्वया । २. उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः (शा०) । ३. उष्णत्वमग्न्यातपसम्प्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य (र०) । ४. या यस्य प्रकृतिः स्वभावजनिता केनापि न त्यज्यते । ५. सतां हि साधु शीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते । ६. सुतसमपि पानीयं शमयत्येव पावकम् (प०) । ७. स्नापितोऽपि बहुशो नदीजलैर्गर्दभः किमु हयो भवेत् क्वचित् । ८. स्वभावो दुरतिक्रमः (प०) । ९. स्वभावो यादृशो यस्य न जहाति कदाचन (चा०) ।

(६) चातुर्वर्ण्य

(क) ब्राह्मण

१. असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः (प०) । २. तुष्यन्ति भोजनैर्विप्राः । ३. ब्राह्मणा मधुरप्रियाः । ४. शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् (गी०) । ५. सिद्धं होतद् वाचि वीर्यं द्विजानां, बाह्वीर्वीर्यं यतु तत् क्षत्रियाणाम् (उ०) ।

(ख) क्षत्रिय

१. अधर्मयुद्धेन जयं को हीच्छेत् क्षत्रियो भवन् (क०) । २. कुराजान्तानि राष्ट्राणि (प०) । ३. क्षतात् किल त्रायत इत्यदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः (र०) । ४. तत्कार्मुकं कर्मसु यस्य शक्तिः । ५. राजा प्रकृतिरञ्जनात् । ६. शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् (गी०) । ७. स क्षत्रियस्त्राणसहः सतां यः । ८. संग्रामो हि शूराणामुत्सवो हि महानयम् (क०) । ९. सिद्धं होतद् वाचि वीर्यं द्विजानां, बाह्वीर्वीर्यं यतु तत् क्षत्रियाणाम् ।

(ग) वैश्य

१. कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् (गी०) ।

(घ) शूद्र

१. परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् (गी०) ।

(७) जीवन

(क) बाल्य

१. कस्य नोच्छृङ्खलं बाल्यं गुरुशासनवर्जितम् (क०) । २. लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् । प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् । ३. स्वामिवत् पञ्चवर्षाणि दश वर्षाणि दासवत् । प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।

(ख) यौवन

१. कस्य नेष्टं हि यौवनम् (क०) । २. किञ्चित्कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च । ३. सर्वथा दुर्लभं यौवनमस्वलितम् (का०) । ४. सर्वथा न कञ्चिन्न खलीकरोति जीविततृष्णा । ५. स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिव नहि रम्यं मृगदृशः । ६. हरति मनो मधुरा हि यौवनश्रीः (कि०) ।

(ग) वार्धक्य

१. अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जातं तुण्डम् । वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम् । २. जरा रूपं हरति । ३. न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः (हि०) । ४. वृद्धस्य तरुणी विषम् । ५. वृद्धा जना निष्करुणा भवन्ति । ६. वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् (हि०) । ७. वृद्धा नारी पतिव्रता ।

(घ) काल (अवसर)

१. कालयुक्त्या ह्यरिर्मित्रं जायते न च सर्वदा (क०) । २. काले खलु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः (र०) । ३. काले दत्तं वरं ह्यल्पमकाले बहुनापि किम् (क०) । ४. कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः (भा०) । ५. कुर्वन्त्यकालेऽभिव्यक्तिं न कार्यापेक्षिणो बुधाः (क०) । ६. समय एव करोति बलाबलम् (शि०) । ७. समये हि सर्वगुणकारि कृतम् (शि०) ।

(ङ) काल (मृत्यु)

१. कः कालस्य न गोचरान्तरगतः (म०) । २. कालस्य कुटिला गतिः । ३. कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी (मा०) । ४. मृत्योः सर्वत्र तुल्यता । ५. मृत्योर्बिभेषि किं बाले, न स भीतं विमुञ्चति । ६. लङ्घ्यते न खलु कालनियोगः (कि०) । ७. सर्वं कालवशेन नश्यति । ८. सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः (भ०) ।

(च) आरोग्य

१. अजीर्णे भोजनं विषम् (हि०) । २. अहितो देहजो व्याधिः । ३. आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः (च०) । ४. दृष्टश्रुताभ्यं सन्देहमवापोह्याचरेत् क्रियाः (सुश्रुत०) । ५. धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् (च०) । ६. न च व्याधिसमो रिपुः । ७. न नक्तं दधि भुञ्जीत । ८. पित्तेन दूने रसने सितापि तिक्तायते (नै०) । ९. प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते (र०) । १०. मर्दनं गुणवर्धनम् । ११. यथौषधं स्वादु हितं च दुर्लभम् । १२. रसमूला हि व्याधयः । १३. विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य (शा०) । १४. व्याधितस्यौषधं मित्रम् । १५. शरीरं व्याधिमन्दिरम् । १६. शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् (कु०) । १७. शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद् विशारदः (सुश्रुत०) । १८. सम्यक् प्रयोगः सर्वेषां सिद्धिमाख्याति कर्मणाम् (च०) । १९. सर्वथा न कञ्चन न स्पृशन्ति शरीरधर्माणमुपतापाः (का०) । २०. सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः (च०) । २१. स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति (शि०) । २२. हितभुक् मितभुक् ऋतभुक् । २३. हितमारण्यमौषधम् ।

(९) राजधर्मादि

(क) राजधर्म (राजकर्म)

१. अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि (कि०) । २. अल्पीयसोऽप्यामयतुल्यवृत्तेर्महापकाराय रिपोर्विवृद्धिः (कि०) । ३. अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः (शा०) । ४. आपन्नस्य विषयनिवासिन आर्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम् (शा०) ।

५. आश्वस्तो वेत्ति कुसृतिं प्रभुः को हि स्वमन्त्रिणाम् (क०)। ६. ईश्वरराणां हि विनोदरसिकं मनः (कि०)। ७. ऋद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः (र०)। ८. को नाम राज्ञां प्रियः (प०)। ९. क्षितिपतिः को नाम नीतिं विना। १०. गणयन्ति न राज्यार्थेऽपत्यस्त्रेहं महीभुजः (क०)। ११. चाराज्जानन्ति राजानः। १२. नयवर्त्मगाः प्रभवतां हि धियः (कि०)। १३. नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पदः। १४. नयेन चालंक्रियते नरेन्द्रता। १५. नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके, जनपदहितकर्ता द्विष्यते पार्थिवेन्द्रैः (प०)। १६. नहीश्वरव्याहृतयः कदाचित् पुष्पान्ति लोके विपरीतमर्थम् (कु०)। १७. नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता (प०)। १८. नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मः (र०)। १९. परमं लाभमरातिभङ्गमाहुः (कि०)। २०. पिशुनजनं खलु बिभ्रति क्षितीन्द्राः। २१. पृथिवीभूषणं राजा। २२. प्रजानामपि दीनानां राजैव सदयः पिता। २३. प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते (शि०)। २४. प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य (कु०)। २५. प्रभूणां हि विभूत्यन्धा धावत्यविषये मतिः (क०)। २६. प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु (कु०)। २७. प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च, यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयन्ति (प०)। २८. भजन्ति वैतसीं वृत्तिं राजानः कालवेदिनः (क०)। २९. मनीषिणः सन्ति न ते हितैषिणः (प०)। ३०. महीपतीनां विनयो हि भूषणम्। ३१. राजा राष्ट्रकृतं पापम्। ३२. राजा सहायवान् शूरः सोत्साहो जयति द्विषः (क०)। ३३. वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः (र०)। ३४. वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा (प०)। ३५. व्रजन्ति शत्रूनवभूय निःस्पृहाः, शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः (कि०)। ३६. शुचिः क्षेमकरो राजा। ३७. सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी सम्पद्यते जन्तुः। राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव (शा०)। ३८. स्वदेशे पूज्यते राजा (चा०)। ३९. हतं सैन्यमनायकम् (चा०)।

(ख) सदभृत्य

१. अनियुक्तोऽपि च ब्रूयाद्यदीच्छेत् स्वामिनो हितम् (क०)। २. कथं हि लङ्घ्यते भृत्यैर्ग्रहिकस्य प्रभोर्वचः (क०)। ३. कालप्रयुक्ता खलु कर्मविद्धिर्विज्ञापना भर्तुषु सिद्धिमेति (कु०)। ४. न किञ्चिन्न कारयत्यसाधारणी स्वामिभक्तिः (ह०)। ५. नास्त्यहो स्वामिभक्तानां पुत्रे वात्मनि वा स्पृहा (क०)। ६. प्राणैरपि हि भृत्यानां स्वामिसंरक्षणं व्रतम् (क०)। ७. भृत्या अपि त एव ये संपत्तेर्विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते (का०)। ८. संभावना ह्यधिकृतस्य तनोति तेजः (कि०)। ९. सेवार्थमः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः (भ०)। १०. स्वामिन्यसाध्यव्यसने सुखं सन्मन्त्रिणां कुतः (क०)। ११. स्वाम्यायताः सदा प्राणा भृत्यानामर्जिता धनैः (प०)।

(१०) आचार

(क) कर्तव्य-बोधन

१. अर्थमनर्थ भावय नित्यं, नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्। २. आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया

(१०)। ३. आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि (प०)। ४. उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् (गी०)। ५. उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्। ६. कर्तव्यं हि सतां वचः (क०)। ७. कर्तव्यो महदाश्रयः (प०)। ८. कस्यचित् किमपि नो हरणीयं, मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम्। ९. गन्तव्यं राजपथे। १०. न स्वेच्छं व्यवहर्तव्यमात्मनो भूतिमिच्छता (क०)। ११. न्याय्यां वृत्तिं सभाचरेत्। १२. परमार्थमविज्ञाय न भेतव्यं ऋचिऋभिः (क०)। १३. भवेन्न यस्य यत्कर्म, स तत्कुर्वन् विनश्यति (क०)। १४. मनःपूतं समाचरेत् (का० नी०)। १५. मौनं विधेयं सततं सुधीभिः। १६. मौनं सर्वार्थसाधकम्। १७. मौनं स्वीकृतिलक्षणम्। १८. यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाकरणीयम्। १९. वचने का दरिद्रता। २०. वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् (का० नी०)। २१. विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत्। २२. शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। २३. सत्यपूतां वदेद् वाणीम्। २४. सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता (उ०)। २५. सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् (कि०)। २६. सहसा हि कृतं पापं कथं मा भूद् विपत्तये (क०)। २७. सुलभो हि द्विषां भङ्गो, दुर्लभा सत्स्ववाच्यता (कि०)।

(ख) १. कुसंगति-निन्दा

१. असतां सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्। २. असाधुयोगा हि जयान्तरायाः प्रमाथिनीनां विपदां पदानि (कि०)। ३. कामं व्यसनवृक्षस्य मूलं दुर्जनसंगतिः (क०)। ४. दशाननोऽहरत् सीता बन्धं प्राप्तो महोदधिः। ५. नीचाश्रयो हि महतामपमानहेतुः। ६. पवनः परागवाही रथ्यासु वहन् रजस्वलो भवति। ७. मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली। ८. मूर्खैर्हि सङ्गं कस्यास्ति शर्मणे (कि०)। ९. हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात्। समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् (हि०)।

(ख) २. सत्संगति-प्रशंसा

१. अनुसृत्य सतां वर्त्म यत् स्वल्पमपि तद् बहु। २. कस्य नाभ्युदये हेतुर्भवेत् साधुसमागमः (क०)। ३. कस्य सत्सङ्गो न भवेच्छुभः (क०)। ४. कामं न श्रेयसे कस्य संगमः पुण्यकर्मभिः (क०)। ५. किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेता, तं चेत्सहस्रकरिणो धुरि नाकरिष्यत् (शा०)। ६. गुणमहतां महते गुणाय योगः (कि०)। ७. चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसंगतिः। ८. ध्रुवं फलाय महते महतां सह संगमः (क०)। ९. पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्। १०. पुण्यैरेव हि लभ्यते सुकृतिभिः सत्संगतिर्दुर्लभा। ११. प्रायः सज्जनसंगतौ हि लभते दैवानुरूपं फलम्। १२. प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते (भा०)। १३. बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति (शि०)। १४. विश्वासयत्याशु सतां हि योगः (कि०)। १५. संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति। १६. सङ्गं सतां किमु न मङ्गलमातनोति (भा०)। १७. सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति (उ०)। १८. सतां हि सङ्गः सकलं प्रसूयते (भा०)। १९. सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्। २०. सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत संगतिम्।

सद्भिर्विवादं मैत्रौ च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत् । २१. समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद्, वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः (कि०) ।

(ग) १. कृतघ्नता-निन्दा

१. अङ्कमारुह्य सुसं हि हत्वा किं नाम पौरुषम् । २. कृतघ्ना धनलोभान्धा नोपकारेक्षणक्षमाः (क०) । ३. कृतघ्नानां शिवं कुतः (क०) ।

(ग) २. कृतज्ञता-प्रशंसा

१. कृतज्ञे सत्परीवारे प्रभौ सेवाऽफला कुतः (क०) । २. न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय, प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः (मे०) । ३. न तथा कृतवेदिनां करिष्यन् प्रियतामेति यथा कृतावदानः (कि०) ।

(घ) १. गुण-प्रशंसा

१. अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्दते (२०) । २. अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां, न जातु मौलो मणयो वसन्ति (विक्रमांक०) । ३. एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्द्रोः किरणेष्विवाङ्कः (कु०) । ४. कमिवेशते रमयितुं न गुणाः (कि०) । ५. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः (उ०) । ६. गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः (कि०) । ७. गुणिनि गुणज्ञो रमते, नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः । ८. गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः । ९. गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम् । १०. गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो, न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम् । ११. गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः (कि०) । १२. नाम यस्याभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान् (कि०) । १३. पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते (२०) । १४. परिजनताऽपि गुणाय सदगुणानाम् (कि०) । १५. प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना । १६. प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूतमादरः (कु०) । १७. लक्ष्मीरनुसरति नयगुणसमृद्धिम् । १८. वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः (कि०) । १९. सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् (कि०) । २०. सुलभो हि द्विषो भङ्गो दुर्लभा सत्स्ववाच्यता (कि०) । २१. स्थिरा शैली गुणवताम् (कुवल्या०) । २२. हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् । २३. हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः (शा०) ।

(घ) २. दुर्गुण-निन्दा

१. अतिरोषणश्चक्षुष्मानप्यन्य एव जनः (ह०) । २. अशीलं कस्य नाम स्यान्न खलीकारकारणम् (क०) । ३. अशीलं कस्य भूतये (क०) । ४. अशीलस्य हतं कुलम् । ५. आपदेत्युभयलोकदूषणी वर्तमानमपथे हि दुर्मतिम् (कि०) । ६. गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति । ७. पुरुषा अपि बाणा अपि गुणच्युताः कस्य न भयाय । ८. मद्यपस्य कुतः सत्यम् । ९. मद्यपाः किं न जल्पन्ति ।

(च) १. तेजस्विता

१. अरुन्तुदत्वं महतां ह्यगोचरः (कि०) । २. अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां, भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः (कि०) । ३. अविभिद्य निशाकृतं तमः, प्रभया नांशुमताऽप्युदीयते (कि०) । ४. अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः (कु०) । ५. इन्धनौघधगप्यग्निस्त्वेषा नात्येति पूषणम् (शि०) । ६. उदिते तु सहस्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमाः । ७. उपहितपरमप्रभावधाम्नां, न हि जयिनां तपसामलंघ्यमस्ति (कि०) । ८. ऋते कृशानोर्नहि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् । (कु०) । ९. ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः, क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः (शि०) । १०. कथंचिन्नहि दिव्यानां, वीर्यं भजति मोघताम् (क०) । ११. किमिवावसादकरमात्मवताम् (कि०) । १२. किमिवास्ति यन्न सुकरं मनस्विभिः (कि०) । १३. को विहन्तुमलमास्थितोदये, वासरश्रियमशीतदीधितौ (शि०) । १४. जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः । १५. ज्वलयति महतां मनांस्यमर्षे, न हि लभतेऽवसरं सुखाभिलाषः (कि०) । १६. ज्वलितं न हिरण्यरेतसं, चयमास्कन्दति भस्मनां जनः (कि०) । १७. तमस्तपति धर्माशौ कथमाविर्भविष्यति (शा०) । १८. तीव्रसत्त्वस्य न चिराद् भवन्त्येव हि सिद्धयः (क०) । १९. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते (र०) । २०. तेजोविहीनं विजहाति दर्पः, शान्ताचिषं दीपमिव प्रकाशः (कि०) । २१. न खलु वयस्तेजसो हेतुः (भ०) । २२. न दूषितः शक्तिमतां स्वयंग्रहः (कि०) । २३. न परेषु महौजसश्छलादपकुर्वन्ति मलिम्लुचा इव (शि०) । २४. न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः (कि०) । २५. नातिपीडयितुं भग्नानिच्छन्ति हि महौजसः (कि०) । २६. निवसन्नन्तर्दारुणि लङ्घ्यो वह्निर्न तु ज्वलितः । २७. परैरनिन्द्यं चरितं मनस्विनां वयोऽनुसारोचितमेव शोभते (क०) । २८. प्रकृतिः खलु सा महीयसः, सहते नान्यसमुन्नतिं यया (कि०) । २९. मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम् (भ०) । ३०. महतां हि धैर्यमविविधवैभवम् (कि०) । ३१. महानुभावः प्रतिहन्ति पौरुषम् (कि०) । ३२. मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति (शि०) । ३३. वशिनां न निहन्ति धैर्यमनुभावगुणः (कि०) । ३४. विलम्बितुं न खलु सदा मनस्विनो, विधित्सवः कलहमवेक्ष्य विद्विषः (शि०) । ३५. श्रेयान् हि मानिनो मृत्युर्नैदृगात्मप्रकाशनम् (क०) । ३६. संकल्पैकप्रधाना हि दिव्यानामखिलाः क्रियाः (क०) । ३७. सदाभिमानैकधना हि मानिनः (शि०) । ३८. सम्पत्सु हि सुसत्त्वानामेकहेतुः स्वपौरुषम् (क०) । ३९. संभवत्यभिजातानामभिमानो ह्यकृत्रिमः (क०) । ४०. सहते विपत्सहस्रं मानी नैवापमानलेशमपि (महा०) । ४१. सहापकृष्टैर्महतां न संगतं, भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः (कि०) । ४२. सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः (शि०) । ४३. सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा (र०) । ४४. स्थिता तेजसि मानिता (कि०) । ४५. स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः (र०) । ४६. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्रौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा (र०) ।

(च) २. मित्रता

१. आकरः स्वपरभूरिकथानां प्रायशो हि सुहृदोः सहवासः (नै०)। २. आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत् (प०)। ३. आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्। दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना, छायेव मैत्री खलसञ्जनानाम् (प०)। ४. एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा (भ०)। ५. किमु चोदिताः प्रियहितार्थकृतः कृतिनो भवन्ति सुहृदाम् (शि०)। ६. कुवाक्यान्तं च सौहृदम् (प०)। ७. कृशे कस्यास्ति सौहृदम्। ८. तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः (उ०)। ९. नहि विचलति मैत्री दूरतोऽपि स्थितानाम्। १०. नालं सुखाय सुहृदो नालं दुःखाय शत्रवः (महा०)। ११. परोऽपि हितवान् बन्धुः (प०)। १२. भावस्थराणि जननान्तरसौहृदानि (शा०)। १३. मनोभूषा मैत्री। १४. मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः (मे०)। १५. मित्रलाभमनु लाभसम्पदः (कि०)। १६. मित्रार्थगणितप्राणा दुर्लभा हि महोदयाः (क०)। १७. यतः सतां हि संगतं, मनीषिभिः सासपदीनमुच्यते (कु०)। १८. विदेशे बन्धुलाभो हि, मरावमृतनिर्झरः (क०)। १९. विप्रलम्भोऽपि लाभाय, सति प्रियसमागमे (कि०)। २०. समानशीलव्यसनेषु सख्यम् (हि०)। २१. समीरणो नोदयिता भवेति, व्यादिश्यते केन हुताशनस्य (कु०)। २२. स सुहृद् व्यसने यः स्यात् (प०)। २३. स्वं जीवितमपि सन्तो न गणयन्ति मित्रार्थं (प०)। २४. स्वयमेव हि वातोऽग्नेः, सारथ्यं प्रतिपद्यते (र०)। २५. हितप्रयोजनं मित्रम्।

(छ) वीरता (धीरता), (वीर, धीर)

१. अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः (वि०)। २. अमर्षणः शोणितकाङ्क्षया किं, पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः (र०)। ३. अयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणम् (उ०)। ४. अल्पसत्त्वेषु धीराणामवज्ञैव हि शोभते (क०)। ५. अश्नुते स हि कल्याणं, व्यसने यो न मुह्यति (क०)। ६. असिद्धार्था निवर्तन्ते, न हि धीराः कृतोद्यमाः (क०)। ७. आपत्काले च कष्टेऽपि, नोत्साहस्त्यज्यते बुधैः (क०)। ८. आपत्सु धीरान् पुरुषान् स्वयमायान्ति सम्पदः (क०)। ९. आपदि स्फुरति प्रज्ञा, यस्य धीरः स एव हि (क०)। १०. आपद्यपि त्याज्यं न सत्त्वं सम्पदेषिभिः (क०)। ११. आरब्धा ह्यसमाप्तैव, किं धीरैस्त्यज्यते क्रिया (क०)। १२. आरब्धे हि सुदुष्करेऽपि महतां मध्ये विरामः कुतः (क०)। १३. उत्साहैकधने हि वीरहृदये नाप्रोति खेदोऽन्तरम् (क०)। १४. उन्नतो न सहते तिरस्क्रियाम्। १५. एकोऽप्याश्रयहीनोऽपि लक्ष्मीं प्राप्नोति सत्त्ववान् (क०)। १६. जीवन् हि धीरोऽभिमतं, किं नाम न यदाप्रुयात् (क०)। १७. ज्वलयति महतां मनांस्यमर्षे, न हि लभतेऽवसरं सुखाभिलाषः (कि०)। १८. न जात्ववसरे प्राप्ते, सत्त्ववानवसीदति (क०)। १९. ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः (शा०)। २०. न शूरा विसहन्ते हि, स्त्रीनिमित्तं पराभवम् (क०)। २१. न स शक्नोति किं यस्य, प्रज्ञा नापदि हीयते (क०)। २२. नहि सत्त्वावसादेन, स्वल्पाप्यापद् विलङ्घ्यते (क०)। २३. निसर्गः स हि

धीराणां, यदापद्याधिकं दृढम् (क०)। २४. न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः (भ०)। २५. परवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम् (शि०)। २६. पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्। २७. प्रकृतिरियं सत्त्ववताम्। २८. प्रतिपन्नसुहृत्कार्यनिर्वाहं धीरसत्त्वता (क०)। २९. प्राणव्ययाय शूराणां, जायते हि रणोत्सवः (क०)। ३०. प्राणेभ्योऽपि हि धीराणां, प्रिया शत्रुप्रतिक्रिया (नै०)। ३१. भुजे वीर्यं निवसति न वाचि (ह०)। ३२. भीता इव हि धीराणां, यान्ति दूरे विपत्तयः (क०)। ३३. महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः (शि०)। ३४. विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः (कु०)। ३५. विनाप्यर्थेर्धीरः स्पृशति बहुमानोन्नतिपदम् (हि०)। ३६. शतेषु जायते शूरः। ३७. शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च, लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः (प०)। ३८. शूरस्य मरणं तृणम्। ३९. शूरा हि प्रणतिप्रियाः (क०)। ४०. स धीरो यो न संमोहमापत्कालेऽपि गच्छति (क०)।

(ज) शिष्टाचार (सदाचार)

१. आचारः प्रथमो धर्मः (म०)। २. आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः, समाधिभेदप्रभवो भवन्ति (कु०)। ३. उपभुक्ते हि तारुण्ये, प्रशमः सद्भिरिष्यते (क०)। ४. महाजनो येन गतः स पन्थाः (प०)। ५. विनयाद्याति पात्रताम्। ६. विनयो हि सतां व्रतम्। ७. शीलं परं भूषणम्। ८. शीलं भूषयते कुलम्। ९. शीलं हि विदुषां धनम् (क०)। १०. शीलं हि सर्वस्य नरस्य भूषणम्। ११. शुभाचारस्य कः कुर्यादशुभं हि सचेतनः (क०)। १२. सकलं शीलेन कुर्याद् वशम्। १३. सकलगुणभूषा च विनयः।

(झ) १. सज्जनप्रशंसा

१. अक्षोभ्यतैव महतां महत्त्वस्य हि लक्षणम् (क०)। २. अगम्यं मन्यते सुगम्। ३. अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति। ४. अनुगृह्णन्ति हि प्रायो देवता अपि तादृशम् (क०)। ५. अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः (वि०)। ६. अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी (शि०)। ७. अशयोभीरवः किं न, कुर्वन्ते बत साधवः (क०)। ८. अयातपूर्वा परिवादगोचरं, सतां हि वाणी गुणमेव भाषते (कि०)। ९. अरुन्तुदत्वं महतां ह्यगोचरः (कि०)। १०. अहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः (भ०)। ११. आदानं हि विसर्गाय, सतां वारिमुचामिव (र०)। १२. आपन्नातिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे०)। १३. आवेष्टितो महासर्पैश्चन्दनः किं विषायते। १४. उत्तरोत्तरशुभो हि विभूनां कोऽपि मञ्जुलतमः क्रमवादः (नै०)। १५. उत्सहन्ते न हि द्रष्टुमुत्तमाः स्वजनापदम् (क०)। १६. उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् (हि०)। १७. उदारस्य तृणं वित्तम्। १८. कण्ठे सुधा वसति वै खलु सज्जनानाम्। १९. कथमपि

भुवनेऽस्मिस्तादृशाः संभवन्ति (मृ०) । २०. कदापि सत्पुरुषाः शोकवास्तव्या न भवन्ति (शा०) ।
 २१. करुणार्द्रा हि सर्वस्य, सन्तोऽकारणबान्धवाः (क०) । २२. केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना
 ह्युत्तमेषु (मे०) । २३. क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे (भ०) । २४. क्षुद्रेऽपि नूनं
 शरणं प्रपन्ने, ममत्वमुच्चैःशिरसां सतीव (कु०) । २५. खलसङ्गोऽपि नैष्ठुर्यं, कल्याणप्रकृतेः कुतः ।
 २६. ग्रहीतुमार्यान् परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः (शि०) । २७. घनाम्बुना राजपथे
 हि पिच्छले, क्वचिद् बुधैरप्यपथेन गम्यते (नै०) । २८. घनाम्बुभिर्बहुलितनिम्नगाजलैर्जलं नहि
 व्रजति विकारमम्बुधेः (शि०) । २९. चित्ते वाचि क्रियायां च, साधूनामेकरूपता । ३०. जितशान्तेषु
 धीराणां स्नेह एवोचितोऽरिषु (क०) । ३१. ते भूमण्डलमण्डनैकतिलकाः सन्तः कियन्तो जनाः ।
 ३२. त्यजन्त्युत्तमसत्त्वा हि, प्राणानपि न सत्पथम् (क०) । ३३. दावानलप्लोषविपत्ति-
 मन्योऽरण्यस्य हर्तुं जलदात् प्रभुः किम् (कु०) । ३४. दुर्लक्ष्यचिह्ना महतां हि वृत्तिः (कि०) ।
 ३५. देवद्विजसपर्यां हि, कामधेनुर्मता सताम् (क०) । ३६. देहपातमपीच्छन्ति, सन्तो नाविनयं
 पुनः (क०) । ३७. धनिनामितरः सतां पुनर्गुणवत्संनिधिरेव संनिधिः (शि०) । ३८. न चलति
 खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित् । ३९. न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम् । ४०. न भवति
 पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम् । ४१. न भवति महतां हि क्वापि मोघः प्रसादः । ४२. नहि
 कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति । ४३. निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः । ४४. निर्वाहः
 प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद् हि गोत्रव्रतम् । ४५. न्यायाधारा हि साधवः (कि०) । ४६. परदुःखेनापि
 दुःखिता विरलाः । ४७. परिजनताऽपि गुणाय सज्जनानाम् (कि०) । ४८. पुण्यवन्तो हि सन्तानं
 पश्यन्त्युच्चैः कृतान्वयम् (क०) । ४९. प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् (भ०) । ५०. प्रणामान्तः
 सतां कोपः । ५१. प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् (र०) । ५२. प्रतिपन्नार्थनिर्वाहं सहजं
 हि सतां व्रतम् (क०) । ५३. प्रयुक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव (मे०) । ५४. प्रवर्तते
 नाकृतपुण्यकर्मणां, प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती (कि०) । ५५. प्रसन्नानां वाचः फलमपरिमेयं
 प्रसुवते । ५६. प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि (र०) । ५७. प्रहृष्टनिर्बन्धरूपो हि सन्तः (र०) । ५८.
 प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः । ५९. प्रायेणाकारणमित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च सदा खलु
 भवन्ति सतां चेतांसि (क०) । ६०. प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति (भ०) । ६१.
 बताश्रितानुरोधेन किं न कुर्वन्ति साधवः (क०) । ६२. ब्रुवते हि फलेन साधवो, न तु कण्ठेन
 निजोपयोगिताम् (नै०) । ६३. भक्त्या हि तुष्यन्ति महानुभावाः । ६४. भजन्त्यात्मभरित्वं हि,
 दुर्लभेऽपि न साधवः (क०) । ६५. भवति महत्सु न निष्फलः प्रयासः (शि०) । ६६. भवो
 हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् । ६७. मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् (हि०) । ६८. महतां
 हि धैर्यमविभाव्यवैभवम् (कि०) । ६९. महतां हि सर्वमथवा जनातिगम् (शि०) ।
 ७०. महतामनुकम्पा हि विरुद्धेषु प्रतिक्रिया (क०) । ७१. महतीमपि श्रियमवाप्य विस्मयः,
 सुजनो न विस्मरति जातु किंचन (शि०) । ७२. महते रुजत्रपि गुणाय महान् (कि०) ।

७३. महान् महत्येव करोति विक्रमम् (प०)। ७४. मोघा हि नाम जायेत महत्सूपकृतिः कुतः (क०)। ७५. यथा चित्तं तथा वाचो, यथा वाचस्तथा क्रियाः। ७६. रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते (उ०)। ७७. रिपुष्वपि हि भीतेषु सानुकम्पा महाशयाः (कि०)। ७८. वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणां चेतांसि, को हि विज्ञातुमर्हति (उ०)। ७९. विक्रियायै न कल्पन्ते सम्बन्धाः सदनुष्ठिताः (कु०)। ८०. विप्रियमप्याकर्ण्य ब्रूते प्रियमेव सर्वदा सुजनः। ८१. विवेकधाराशतधौतमन्तः, सतां न कामः कलुषीकरोति (नै०)। ८२. व्रताभिरक्षा हि सतामलंक्रिया (कि०)। ८३. संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् (भ०)। ८४. संपत्सु हि सुसत्त्वानामेकहेतुः स्वपौरुषम् (क०)। ८५. सतां महत्संमुखधावि पौरुषम् (नै०)। ८६. सतां हि चेतःशुचितात्मसाक्षिका (नै०)। ८७. सतां हि प्रियंवदा कुलविद्या (ह०)। ८८. सतां हि साधुशीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते। ८९. सत्यनियतवचसं वचसा सुजनं जनाश्चलयितुं क ईशते (शि०)। ९०. सद्भावार्द्रः फलति चिरेणोपकारो महत्सु (मे०)। ९१. सद्भिस्तु लीलया प्रोक्तं शिलालिखितमक्षरम्। ९२. सद्य एव सुकृतां हि पच्यते, कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम् (र०)। ९३. सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ते प्रतिक्रियाम् (महा०)। ९४. सन्तः परीक्ष्यान्तरद् भजन्ते (मालविका०)। ९५. सुदुर्ग्रहान्तःकरणा हि साधवः (कि०)। ९६. स्वामापदं प्रोज्झ्य विपत्तिमग्नं, शोचन्ति सन्तो ह्युपकारिपक्षम् (कि०)। ९७. हृदे गभीरे हृदि चावगाढे, शंसन्ति कार्यावतरं हि सन्तः (नै०)।

(झ) २. दुर्जन-निन्दा

१. अकृत्यं मन्यते कृत्यम् (प०)। २. अत्युच्चैर्भवति लघीयसां हि धाष्टर्यम् (शि०)। ३. अनुकूलेऽपि कलत्रे, नीचः परदारलम्पटो भवति। ४. अन्यस्माल्लब्धपदो नीचः प्रायेण दुःसहो भवति। ५. अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः परभणितुषु तृप्तिं यान्ति सन्तः कियन्तः। ६. अभक्ष्यं मन्यते भक्ष्यम्। ७. अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं, द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् (कु०)। ८. अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयंकरः (भ०)। ९. अव्यापारेषु व्यापारं, यो नरः कुर्तुमिच्छति (प०)। १०. अश्रेयसे न वा कस्य, विश्वासो दुर्जने जने (क०)। ११. असद्वृत्तेरहोवृत्तं दुर्विभावं विधेरिव (कि०)। १२. असन्मैत्री हि दोषाय, कूलच्छायेव सेविता (कि०)। १३. अहो विश्वास्य वञ्च्यन्ते, धूर्तैश्छद्माभिरीश्वराः (क०)। १४. अहो सहन्ते बत नो परोदयम्। १५. उष्णो दहति चाङ्गारः, शीतः कृष्णायते कर्म (प०)। १६. कवले पतिता सद्यो वमयति ननु मक्षिकाऽन्नभोक्ताम्। १७. कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः (शि०)। १८. किं मर्दितोऽपि कस्तूर्या, लशुनो याति सौरभम्। १९. किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम्

(कि०)। २०. कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति (शा०)। २१. को वा दुर्जनवागुरासु पतितः
क्षेमेण यातः पुमान् (प०)। २२. क्वाश्रयोऽस्ति दुरात्मनाम्। २३. क्षारं पिबति पयोर्धेर्वषत्यम्भोधरो
मधुरमम्भः। २४. गुणार्जनोच्छ्रायविरुद्धबुद्धयः, प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधवः (कि०)। २५.
तरुणीकच इव नीचः, कौटिल्यं नैव विजहाति। २६. दुःखान्धा हि पतन्त्येव, विपच्छ्वभ्रेषु
कातराः (क०)। २७. दुग्धधौतोऽपि किं याति, वायसः कलहंसताम्। २८. दुर्जनः परिहर्तव्यो,
विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन् (भ०)। २९. दुर्जनस्य कुतः क्षमा। ३०. दुर्जनस्यार्जितं वित्तं, भुज्यते
राजतस्कैः। ३१. दूरतः पर्वता रम्याः। ३२. दोषग्राही गुणत्यागी पल्लोलीव हि दुर्जनः (प०)।
३३. न परिचयो मलिनात्मनां प्रधानम् (शि०)। ३४. नासद्भिः किञ्चिदाचरेत्। ३५.
निसर्गतोऽन्तर्मलिना ह्यासाधवः। ३६. नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधुः करोत्येव। ३७.
परवृद्धिषु बद्धमत्सराणां किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०)। ३८. प्रकृतिसिद्धमिदं हि
दुरात्मनाम्। ३९. प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधवः (कि०)। ४०. प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं
गरुडायते (प०)। ४१. बन्धुः को नाम दुष्टानाम्। ४२. भूयोऽपि सिक्तः पयसा घृतेन, न
निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति। ४३. भ्रष्टस्य का वा गतिः। ४४. मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न
भयंकरः (भ०)। ४५. मन्ये दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धाताऽपि भग्नोद्यमः। ४६. मात्सर्यरागोपहतात्मनां
हि, स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि (कि०)। ४७. ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे
(भ०)। ४८. विचित्रमायाः कितवा ईदृशा एव सर्वदा (का०)। ४९. विपदन्ता ह्यविनीतसम्पदः
(कि०)। ५०. विश्वासः कुटिलेषु कः (क०)। ५१. शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः
(कु०)। ५२. सरित्पूरप्रपूर्णाऽपि, क्षारो न मधुरायते (यो०)। ५३. सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात्
क्रूरतरः खलः (चा०)। ५४. साहसं नैरपैक्ष्यं च, कितवानां निसर्गजम् (क०)। ५५. स्पृशन्ति
न नृशंसानां, हृदयं बन्धुबुद्धयः (नै०)। ५६. स्पृशन्नपि गजो हन्ति (प०)। ५७. हिंसा
बलमसाधूनाम् (महा०)। ५८. होतारमपि जुह्वन्तं, स्पृष्टो दहति पावकः (प०)।

(ज) १. सत्कर्म-प्रशंसा

१. अचिन्त्यं हि फलं सूते सद्यः सुकृतपादपः (क०)। २. उतं सुकृतबीजं हि, सुक्षेत्रेषु
महत्फलम् (क०)। ३. कुरूपता शीलतया विजायते। ४. क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति (र०)।
५. गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो, भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः (शि०)। ६. धर्मपरायणानां सदा
समीपसंचारिण्यः कल्याणसंपदो भवन्ति (का०)। ७. नहि कल्याणकृत् कश्चिद्, दुर्गतिं तात
गच्छति (गी०)। ८. रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि। ९. वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्, वित्तमेति च याति
च (महा०)। १०. वृत्तं हि महितं सताम्। ११. शुभकृत्रहि सीदति। १२. स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य,
त्रायते महतो भयात् (गी०)।

(ज) २. दुष्कर्म-निन्दा

१. अनार्यः परदारव्यवहारः (शा०)। २. अनार्यजुष्टेन पथा, प्रवृत्तानां शिवं कुतः (क०)। ३. अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् (शा०)। ४. अपन्थानं तु गच्छन्तं, सोदरोऽपि विमुञ्चति। ५. कष्टो ह्यविनयक्रमः (क०)। ६. पापप्रभावात् नरकं प्रयाति। ७. पापे कर्मण्यवज्ञातहितवाक्ये कुतः सुखम् (क०)। ८. पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते (शा०)। ९. प्रतिबध्नाति हि श्रेयः, पूज्यपूजाव्यतिक्रमः (र०)। १०. भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः (भ०)। ११. वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम् (भ०)। १२. वरं प्राणत्यागो न च पिशुन-वाक्येष्वभिरुचिः। १३. वरं भिक्षाशित्वं न मानपरिखण्डनम्। १४. वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम्।

(ट) स्वावलम्बन

१. आत्मानमात्मनाऽनवसाद्यैवोद्धरन्ति सन्तः। २. उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत् (गी०)। ३. गुणसंहतेः समतिरिक्तमहो, निजमेव सत्त्वमुपकारि सताम् (कि०)। ४. नास्ति चात्मसमं बलम्। ५. लंघयन् खलु तेजसा जगत्र महानिच्छति भूतिमन्यतः (कि०)। ६. विनिपातनिवर्तनक्षमं, मतमालम्बनमात्मपौरुषम् (कि०)।

(११) विद्या

(क) ज्ञान

१. कर्मणो ज्ञानमतिरिच्यते। २. न ज्ञानात् परमं चक्षुः। ३. न विवेकं विना ज्ञानम्। ४. नास्ति ज्ञानात् परं सुखम्। ५. प्रज्ञा नाम बलं ह्येवं, निष्प्रज्ञस्य बलेन किम् (क०)। ६. प्रज्ञाबलं च सर्वेषु, मुख्यं कार्येषु साधनम् (क०)। ७. बुद्धिः कर्मानुसारिणी (चा०)। ८. बुद्धिर्नाम च सर्वत्र, मुख्यं मित्रं च पौरुषम् (क०)। ९. बुद्धेः फलमनाग्रहः। १०. मतिरेव बलाद् गरीयसी (हि०)। ११. स तु निरवधिरैकः सज्जनानां विवेकः। १२. सुकृतः परिशुद्ध आगमः, कुरुते दीप इवार्थदर्शनम् (कि०)। १३. स्वस्थे चित्ते बुद्ध्यः संभवन्ति।

(ख) वाक्-प्रशंसा

१. अर्थभारवती वाणी, भजते कामपि श्रियम्। २. कः परः प्रियवादिनाम्। ३. क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् (भ०)। ४. मुखरताऽवसरे हि विराजते (कि०)। ५. सदोभूषा सूक्तिः। ६. सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः (कि०)। ७. हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः (कि०)।

(ग) वाग्मिता

१. अल्पाक्षरमणीयं यः कथयति निश्चितं स खलु वाग्मी। २. भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां, मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये। नयन्ति तेष्वाप्युपपन्नैपुणा, गभीरमर्थं कतिचित् प्रकाशताम् (कि०)। ३. मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता (नै०)। ४. मुखरताऽवसरे हि विराजते (कि०)। ५. वक्ता दशसहस्रेषु। ६. वक्ता श्रोता च यत्रास्ति, रमन्ते तत्र सम्पदः।

(घ) विद्या

१. अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् । २. आलस्योपहता विद्या (हि०) । ३. ऋते ज्ञानात्र मुक्तिः । ४. कणशः क्षणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत् । ५. कामिनश्च कुतो विद्या । ६. का विद्या कवितां विना । ७. किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या । ८. किं जीवितेन पुरुषस्य निरक्षरेण (भ०) । ९. कुतो विद्यार्थिनः सुखम् । १०. जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः । ११. ज्ञानमेव शक्तिः । १२. ज्ञानस्याभरणं क्षमा । १३. तस्य विस्तारिता बुद्धिस्तैलबिन्दुरिवाम्भसि । १४. तस्य संकुचिता बुद्धिर्धृतबिन्दुरिवाम्भसि । १५. दुरधीता विषं विद्या (हि०) । १६. धिग्जीवितं शास्त्रकलोज्झितस्य । १७. न च विद्यासमो बन्धुः । १८. पठतो नास्ति मूर्खत्वम् । १९. पूर्वपुण्यतया विद्या । २०. माता शत्रुः पिता वैरी, येन बालो न पाठितः (हि०) । २१. या लोकद्वयसाधनी तनुभृतां सा चातुरी चातुरी । २२. विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा । २३. विद्या ददाति विनयम् (हि०) । २४. विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् । २५. विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम् । २६. विद्या परं दैवतम् । २७. विद्या मित्रं प्रवासे च । २८. विद्या योगेन रक्ष्यते । २९. विद्या रूपं कुरूपाणाम् । ३०. विद्याविहीनः पशुः । ३१. विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम् । ३२. विद्या सर्वस्य भूषणम् । ३३. विद्या स्तब्धस्य निष्कला । ३४. वेदाज्जानन्ति पण्डिताः । ३५. शास्त्रं हि निश्चितधियां क्र न सिद्धिमेति (शि०) । ३६. शास्त्राद् रूढिर्बलीयसी । ३७. शोभन्ते विद्यया विप्राः । ३८. श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रम् । ३९. सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतः सुखम् ।

(ङ) १. विद्वत्प्रशंसा

१. अगाधजलसंचारी न गर्व याति रोहितः (प०) । २. अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां, न जातु मौलौ मणयो वसन्ति (विक्रमांक०) । ३. किमज्ञेयं हि धीमताम् (क०) । ४. झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः (नै०) । ५. न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम (शा०) । ६. ननु वक्तृविशेषनिःस्पृहा, गुणगृह्या वचने विपश्चितः (कि०) । ७. ननु विमुश्य कृती कुरुतेऽखिलम् । ८. नहीङ्गितज्ञोऽवसरेऽवसीदति (कि०) । ९. परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः । १०. प्रतिभातश्च पश्यन्ति सर्वं प्रज्ञावतां धियः (क०) । ११. प्रस्तुतार्थविरुद्धं हि, कोऽभिदध्यादबालिशः (क०) । १२. बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः (शा०) । १३. यत्र विद्वज्जनो नास्ति, श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि । १४. युक्तं न वा युक्तमिदं विचिन्त्य, वदेद् विपश्चिन्महतोऽनुरोधात् । १५. युक्तियुक्तं प्रगृहीयाद् बालादपि विचक्षणः । १६. वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः । १७. विद्वान् कुलीनो न करोति गर्वम् । १८. विद्वान् सर्वगुणेषु पूजिततनुर्मुखस्य नान्या गतिः । १९. विद्वान् सर्वत्र पूज्यते (चा०) । २०. संकटे हि परीक्ष्यन्ते प्राज्ञाः शूराश्च संगरे (क०) । २१. सभारत्नं विद्वान् । २२. सहस्रेषु च पण्डितः । २३. सारं गृह्णन्ति पण्डिताः । २४. स्वस्थे को वा न पण्डितः (प०) ।

(ङ) २. मूर्ख-निन्दा

१. अगुणस्य हतं रूपम् । २. अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् (प०) । ३. अज्ञता कस्य नामेह, नोपहासाय जायते (क०) । ४. अज्ञानाद् मृतचेतसामतिरुषां कोऽर्थस्तिरश्चां गुणैः । ५. अनार्यसंगमाद्, वरं विरोधोऽपि समं महात्माभिः (कि०) । ६. अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न विद्यते । ७. अन्धस्य दीपो बधिस्य गीतम् । ८. अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम् । ९. अल्पविद्यो महागर्वी । १०. अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् (२०) ११. अवस्तुनि कृतक्लेशो मूर्खो यात्यवहास्यताम् (क०) । १२. आपदेत्युभयलोकदूषणी, वर्तमानमपथे हि दुर्मतिम् (कि०) । १३. उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये (प०) । १४. क्षमन्ते न विचारं हि, मूर्खा विषयलोलुपाः (क०) । १५. जायन्ते बत मूढानां संवादा अपि तादृशाः (क०) । १६. ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रज्जयति (भ०) । १७. दुर्दुरा यत्र वक्ता रस्तत्र मौनं हि शोभनम् । १८. न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् (भ०) । १९. निष्प्रज्ञो नाशयत्येव प्रभोरर्थमथात्मनः (क०) । २०. प्राप्तोऽप्यर्थः क्षणादेव हार्यते मन्दबुद्धिना (क०) । २१. बलं मूर्खस्य मौनित्वम् । २२. बहुवचनमल्पसारं यः कथयति विप्रलापी सः । २३. भवति योजयितुर्वचनीयता (प०) । २४. मदमूढबुद्धिषु विवेकिता कुतः (शि०) । २५. मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः (मालविका०) । २६. मूर्खस्य किं शास्त्रकथाप्रसङ्गः । २७. मूर्खाणां बोधको रिपुः । २८. मूर्खोऽनुभवति क्लेशं, न कार्यं कुरुते पुनः (क०) । २९. मोहान्धमविवेकं हि श्रीश्चिराय न सेवते (क०) । ३०. लोके पशुश्च मूर्खश्च निर्विवेकमती समौ (क०) । ३१. लोकोपहसिताः शश्वत् सीदन्त्येव ह्यबुद्धयः (क०) । ३२. विद्या विवादाय धनं मदाय । ३३. विद्याविहीनः पशुः । ३४. विभूषणं मौनमण्डितानाम् (भ०) । ३५. संवृणोति खलु दोषमज्ञता (कि०) । ३६. सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् (प०) । ३७. स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तं धुनोत्यहिशङ्कया (शा०) । ३८. स्वगृहे पूज्यते मूर्खः । ३९. हितोपदेशो मूर्खस्य कोपायैव न शान्तये (क०) ।

(१२) विचारात्मक

(क) आशा

१. आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला (भा०) । २. आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां, सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगो रुणद्धि (मे०) । ३. एवमाशाग्रहप्रतैः क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः (हि०) । ४. गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति (शा०) । ५. धिगाशा सर्वदोषभूः । ६. नास्ति तृष्णासमो व्याधिः ।

(ख) उद्यम-प्रशंसा

१. अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति । २. अचिरांशुविलासचञ्चला, ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम् (कि०) । ३. अप्राप्यं नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिनः (क०) । ४. अर्थो हि नष्टकार्यार्थैर्नायलेनाधिगम्यते (रा०) । ५. इह जगति हि न निरीहदेहिनं श्रियः संश्रयन्ते (द०) । ६. उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु (रा०) । ७. उद्यमेन विना राजन् सिध्यन्ति मनोरथाः (प०) । ८. उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः (प०) । ९. उद्योगः पुरुषलक्षणम् । १०. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः (प०) । ११. क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः, पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् (कु०) । १२. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन (गी०) । १३. किं दूरं व्यवसायिनाम् (चा०) । १४. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः (यजु०) । १५. कृधी न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे (ऋग्०) । १६. कोऽतिभारः समर्थानाम् (प०) । १७. गुणसंहतेः समतिरिक्तमहो निजमेव सत्त्वमुपकारि सताम् (कि०) । १८. धिग्जीवितं चोद्यमवर्जितस्य । १९. नहि दुष्करमस्तीह किंचिदध्यवसायिनाम् (क०) । २०. नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः । २१. निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः (कि०) । २२. प्राप्नोतीष्टमविक्रतवः (क०) । २३. यत्र कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः (हि०) । २४. यदनुद्वेगतः साध्यः पुरुषार्थः सदा बुधैः (क०) । २५. यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् । २६. सत्त्वाधीना हि सिद्धयः (क०) । २७. सत्त्वानुरूपं सर्वस्य, धाता सर्वं प्रयच्छति (क०) । २८. समर्थो यो नित्यं स जयति तस्य कोऽपि पुरुषः । २९. सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् (भ०) । ३०. साहसे श्रीः प्रतिवसति (मृ०) । ३१. सिध्यन्ति कुत्र सुकृतानि विना श्रमेण । ३२. सुकृती चानुभूयैव दुःखमप्यश्नुते सुखम् (क०) । ३३. हतं ज्ञानं क्रियाहीनम् ।

(ग) एकता

१. एकचित्ते द्वयोरेव किमसाध्यं भवेदिति (क०) । २. पञ्चभिर्मितितैः किं यज्जगतीह न साध्यते (नै०) । ३. महोदयानामपि संघवृत्तितां, सहायसाध्याः प्रदिशन्ति सिद्धयः (कि०) । ४. संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् (ऋग्०) । ५. संघे शक्तिः कलौ युगे । ६. समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः (ऋग्०) । ७. समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेष्टम् (ऋग्०) ।

(घ) कीर्ति

१. अनन्यगामिनी पुंसां कीर्तिरेका पतिव्रता । २. अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद्, यशोधनानां हि यशो गरीयः (र०) । ३. काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते (प०) । ४. कुकर्मान्तं यशो नृणाम् । ५. कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः । ६. क्षितितले किं जन्म कीर्तिं विना ।

७. जठरं को न बिभर्ति केवलम् । ८. पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु (२०) । ९. प्राप्यते किं यशः शुभ्रमनङ्गीकृत्य साहसम् (क०) । १०. माने म्लाने कुतः सुखम् । ११. यशः पुण्यैरवाप्यते (चा०) । १२. यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः (२०) । १३. संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते (गी०) । १४. सर्वं रत्नमुपद्रवेण सहितं निर्दोषमेकं यशः । १५. सहते विरहक्लेशं यशस्वी नायशः पुनः (क०) ।

(ङ) दान

१. आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव (२०) । २. उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् (प०) । ३. कुपात्रदानाच्च भवेद् दरिद्रः । ४. कुप्येत् को नातियाचितः । ५. त्यागाज्जगति पूज्यन्ते, पशुपाषाणपादपाः । ६. त्यागी भवति वा न वा । ७. दानं भोगो नाशश्च तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य (प०) । ८. देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम् (गी०) । ९. श्रद्धया देयम् (तै० उप०) । १०. श्रद्धया न विना दानम् । ११. सकलगुणसीमा वितरणम् । १२. सरित्पतिर्न हि समुपैति रिक्तताम् (शि०) । १३. हस्तस्य भूषणं दानम् ।

(च) परोपकार

१. अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायाया संश्रितानाम् (शा०) । २. अपृष्टोऽपि हितं ब्रूयाद्, यस्य नेच्छेत् पराभवम् । ३. आपन्नत्राणविकलैः किं प्राणैः पौरुषेण वा (क०) । ४. आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे०) । ५. इच्छादानपरोपकार-करणं पात्रानुरूपं फलम् । ६. उपकृत्य निसर्गतः परेषामुपरोधं नहि कुर्वते महान्तः (शि०) । ७. उपदेशपराः परेष्वपि, स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः (शि०) । ८. किमदेयमुदारानामुपकारिषु तुष्यताम् (क०) । ९. धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् (प०) । १०. नहि प्रियं प्रवक्तु-मिच्छन्ति मृषा हितैषिणः (कि०) । ११. नास्त्यदेयं महात्मनाम् । १२. परहितनिरतानामादरो नात्मकार्ये । १३. परार्थप्रतिपन्ना हि नेक्षन्ते स्वार्थमुत्तमाः (क०) । १४. परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि । १५. परोपकाराय सतां विभूतयः । १६. परोपकारार्थमिदं शरीरम् । १७. पर्याय-पीतस्य सुरैर्हिमांशोः, कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः (२०) । १८. भक्त्या कार्यधुरं वहन्ति कृतिनस्ते दुर्लभास्त्वादृशाः । १९. मिथ्यापरोपकारो हि कुतः स्यात् कस्य शर्मणे (क०) । २०. युक्तानां खलु महतां परोपकारे, कल्याणी भवति रुजस्त्वपि प्रवृत्तिः (क०) । २१. रविपीतजला तपात्यये पुनरोधेन हि युज्यते नदी (कु०) । २२. वरविभवभूषा वितरणम् । २३. साधूनां हि परोपकारकरणे नोपाध्यपेक्षं मनः । २४. स्वत एव सतां परार्थता, ग्रहणानां हि यथा यथार्थता (शि०) । २५. स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् (शि०) । २६. स्वामापदं प्रोज्झ्य विपत्तिमग्नं, शोचन्ति सन्तो ह्युपकारिपशम् (कि०) ।

(छ) लोभ

१. अर्थार्थी जीवलोकोऽयं श्मशानमपि सेवते (प०) । २. अर्थातुराणां न गुरुर्न बन्धुः । ३. कष्टं हि बान्धवस्नेहं राज्यलोभोऽतिवर्तते (क०) । ४. कृतघ्ना धनलोभान्धा नोपकारेक्षणक्षमाः (क०) । ५. केषां हि नापदां हेतुरतिलोभान्धबुद्धिता (क०) । ६. कोऽर्थी गतो गौरवम् (प०) । ७. तृष्णैका तरुणायते (प०) । ८. प्राणेभ्योऽप्यर्थमात्रा हि कृपणस्य गरीयसी (क०) । ९. लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् (प०) । १०. लुब्धानां याचकः शत्रुः । ११. लोभः पापस्य कारणम् । १२. लोभमूलानि पापानि ।

(ज) सन्तोष

१. अन्तो नास्ति पिपासायाः सन्तोषः परमं सुखम् । २. अपां हि तृप्ताय न वारिधारा, स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा (नै०) । ३. न तोषात् परमं सुखम् । ४. न तोषो महतां मृषा (क०) । ५. मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः । ६. सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् । ७. सन्तोषतुल्यं धनमस्ति नान्यत् ।

(झ) सौन्दर्य

१. किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (शा०) । २. केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः, किं पुनस्त्रिदशचपलाञ्जितः (र०) । ३. क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः (शि०) । ४. गुणान् भूषयते रूपम् । ५. न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम् (कि०) । ६. न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं, सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते (कु०) । ७. प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः, प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम् (र०) । ८. प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कु०) । ९. भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां, वपुर्विशेषेष्वति गौरवाः क्रियाः (कु०) । १०. यतो रूपं ततः शीलम् । ११. यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति । १२. यदेव रोचते यस्मै भवेत्तत्तस्य सुन्दरम् । १३. रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति (कि०) । १४. सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम् (द०) । १५. हरति मनो मधुरा हि यौवनश्रीः (कि०) ।

(१३) मनोभाव

(क) करुण-रस

१. अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् (उ०) । २. अभितप्तमयोऽपि मार्दवं, भजते कैव कथा शरीरिषु (र०) । ३. इष्टमूलानि शोकानि । ४. दुःखिते मनसि सर्वमसह्यम् (कि०) । ५. प्राय सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा (मे०) । ६. प्रियबन्धुविनाशोत्थः शोकाग्निः कं न तापयेत् (क०) । ७. प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति (उ०) । ८. सन्धत्ते भृशमरतिं हि सद्दिव्योगः (कि०) ।

(ख) क्रोध

१. क्रोधः संसारबन्धनम् । २. क्रोधो मूलमनर्थानाम् (हि०) । ३. जितक्रोधेन सर्वं हि जगदेतद् विजीयते (क०) । ४. जितक्रोधो न दुःखस्यास्पदीभवेत् (क०) । ५. धर्मक्षयकरः क्रोधः । ६. नास्ति क्रोधसमो वह्निः ।

(ग) चिन्ता

१. चिन्ता दहति निर्जीवं, चिन्ता चैव सजीवकम् । २. चिन्ता जरा मनुष्याणाम् । ३. चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणम् ।

(घ) प्रेम (प्रेम-स्वभाव)

१. अनुरागान्धमनसां विचारः सहसा कुतः (क०) । २. अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः (२०) । ३. अपायो मस्तकस्थो हि, विषयग्रस्तचेतसाम् (क०) । ४. अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि, बलात् प्रह्लादते मनः (कि०) । ५. आशु बध्नाति हि प्रेम, प्राग्जन्मान्तरसंस्तवः (क०) । ६. आहुः सप्तपदी मैत्री । ७. गुणः खल्वनुरागस्य कारणं न बलात्कारः (मृ०) । ८. चित्तं जानाति जन्तूनां प्रेम जन्मान्तरार्जितम् (क०) । ९. जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः । १०. तारामैत्रकं चक्षूरागः (उ०) । ११. दयितं जनः खलु गुणीति मन्यते (शि०) । १२. दयितास्वनवस्थितं नृणां, न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने (कु०) । १३. प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि (कि०) । १४. भावस्थिराणि जनान्तरसौहृदानि (शा०) । १५. लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः (ह०) । १६. वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि (कि०) । १७. व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः (उ०) । १८. सखि साहजिकं प्रेम दूरादपि विजायते । १९. सतां संगतं, मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते (कु०) । २०. सर्वं स्नेहात् प्रवर्तते (महा०) । २१. सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति (शा०) । २२. सर्वः प्रियः खलु भवत्यनुरूपचेष्टः (शि०) । २३. स्नेहमूलानि दुःखानि (महा०) ।

(ङ) रुचि

१. अनपेक्ष्य गुणागुणौ जनः, स्वरुचिं निश्चयतोऽनुधावति (शि०) । २. तस्य तदेव हि मधुरं, यस्य मनो यत्र संलग्नम् ।

(च) शृंगार

१. इष्टवासजनिताभ्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि (शा०) । २. प्रभवति मण्डयितुं वधूरनङ्गः (कि०) । ३. वाम एव सुरतेष्वपि कामः (कि०) । ४. सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति । ५. सन्धत्ते भृशमरतिं हि सद्द्वियोगः (कि०) । ६. साधनेषु हि रतेरुपधत्ते रम्यतां प्रियसमागम एव (कि०) । ७. सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् (मे०) ।

(छ) स्वाभिमान

१. जन्मिनो मानहीनस्य, तृणस्य च समा गतिः (कि०) । २. न स्पृशति पल्वलाम्भः पंजरशेषोऽपि कुंजरः क्रापि । ३. परभुक्ते हि कमले किमलेर्जायते रतिः (क०) । ४. पुरुषस्ता-वदेवासौ यावन्मानान्न हीयते (कि०) ।

(१४) व्यवहार

(क) अतिथि-सत्कार

१. अतिथिदेवो भव (तैत्ति० उ०) । २. अभ्यागतो यत्र न तत्र लक्ष्मीः । ३. यथाशक्त्यतिथेः पूजा धर्मो हि गृहमेधनाम् (क०) ।

(ख) अति सर्वत्र वर्जयेत्

१. अतिदानाद् बलिर्बद्धः (भा०) । २. अतिपरिचयादवज्ञा, सन्ततगमनादनादरो भवति । ३. अतिभुक्तिरतीवोक्तिः सद्यः प्राणापहारिणी । ४. अतिलोभो न कर्तव्यः, चक्रं भ्रमति मस्तके (प०) । ५. सर्वमतिमात्रं दोषाय (उ०) ।

(ग) अस्तेय (चोर-स्वभाव)

१. कस्यचित् किमपि नो हरणीयम् । २. चोराणामनृतं बलम् । ३. चौरै गते वा किमु सावधानम् । ४. तस्करस्य कुतो धर्मः । ५. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् (यजु०) ।

(घ) इष्टलाभ

१. कः शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति (शा०) । २. कायः कस्य न वल्लभः । ३. चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः (नै०) । ४. ददाति तीव्रसत्त्वानामिष्टमीश्वर एव हि (क०) । ५. धीराश्च सोढविरहाः प्राप्नुवन्तीष्टसंगमम् (क०) ।

(ङ) कलह-निन्दा

१. अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टम् । २. अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (कि०) । ३. ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी (क०) । ४. कलहान्तानि हर्म्याणि (प०) । ५. वाङ्मात्रोत्पादितासह्यवैरात् को नानुत्प्यते (क०) ।

(च) कृषि

१. अल्पबीजं हतं क्षेत्रम् । २. नाना फलैः फलति कल्पलतेव भूमिः (भ०) । ३. नास्ति धान्यसमं प्रियम् । ४. यथा बीजं तथाङ्कुरः । ५. यथा वृक्षस्तथा फलम् ।

(छ) पराश्रय

१. कष्टः खलु पराश्रयः । २. कष्टादपि कष्टतरं परगृहवासः परात्रं च । ३. नैवाश्रितेषु महतां गुणदोषशंका ।

(ज) याज्ञा-निन्दा

१. अभ्यर्थानाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे (कु०) । २. अर्थिनि जने त्यागं विना श्रीश्च का । ३. यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः (भ०) । ४. याचनान्तं हि गौरवम् । ५. याज्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा (मे०) । ६. वरं हि मानिनो मृत्युर्न दैन्यं स्वजनाग्रतः (क०) ।

(झ) विघ्न

१. छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति (प०) । २. रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः (शा०) । ३. विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः (शा०) । ४. श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायैः (कि०) । ५. सत्यः प्रवादो यत्छिद्रेष्वनर्था यान्ति भूरिताम् (क०) । ६. सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ।

(ज) स्वार्थ

१. आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् (प०) । २. कृतार्थः स्वामिनं द्वेष्टि (प०) । ३. कृतार्थाश्च प्रयोजकम् (महा०) । ४. परसेवैकसक्तानां को हि स्नेहो निजे जने (क०) । ५. सर्वः कार्यवशाज्जनोऽभिरमते तत्कस्य को वल्लभः (भ०) । ६. सर्वः स्वार्थं समीहते (शि०) । ७. सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः ।

(ट) नीति

१. अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (कि०) । २. आदौ साम प्रयोक्तव्यम् (प०) । ३. आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः (नै०) । ४. आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् । ५. इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः । ६. इदं च नास्ति न परं च लभ्यते । ७. इष्टं धर्मेण योजयेत् (प०) । ८. उच्छ्रायं नयति यदृच्छयाऽपि योगः (क०) । ९. उपायं चिन्तयेत् प्राज्ञः (प०) । १०. उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः (शि०) । ११. उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः (प०) । १२. ऋणकर्ता पिता शत्रुः (प०) । १३. एको वासः पत्तने वा वने वा (भ०) । १४. क उष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति (शा०) । १५. कण्टकेनैव कण्टकम् (प०) । १६. के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयन्ताः (मे०) । १७. को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरितः । १८. गतं न शोचामि कृतं न मन्ये । १९. ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् । २०. चलति जयात्र जिगीषतां हि चेतः (कि०) । २१. चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन पण्डितः (शा० प०) । २२. त्यजेदेकं कुलस्यार्थं (प०) । २३. न काचस्य कृते जातु युक्ता मुक्तामणेः क्षतिः (क०) । २४. न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे (हि०) । २५. न पादपोन्मूलनशक्तिं रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (र०) । २६. न भयं चास्ति जाग्रतः । २७. नयहीनादपरज्यते जनः (कि०) । २८. नहि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया । २९. नार्कातपैर्जलजमेति हिमैस्तु दाहम् (नै०) । ३०. नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् (शा० प०) । ३१. निपातनीया हि सतामसाधवः (शि०) । ३२. नीचैरनीचैरितिनीचनीचैः सर्वैरुपायैः फलमेव साध्यम् । ३३. नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता (प०) । ३४. पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् (प०) । ३५. पयो गते किं खलु सेतुबन्धः । ३६. परवृद्धिषु बद्धमत्सराणां किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०) । ३७. परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति (भ०) । ३८. पाणौ पयसा दग्धे तक्रं फूत्कृत्य पामरः पिबति । ३९. प्रकर्षतन्त्रा

हि रणे जयश्रीः (कि०) । ४०. प्रकृत्या ह्यमणिः श्रेयान् नालंकारश्च्युतोपलः (कि०) । ४१. प्रच्छन्नमप्यूहयते हि चेष्टा (कि०) । ४२. प्रतीयन्ते न नीतिज्ञाः कृतावज्ञस्य वैरिणः (क०) । ४३. प्रभुश्च निर्विचारश्च नीतिज्ञेन प्रशस्यते (क०) । ४४. प्रायोऽशुभस्य कार्यस्य कालहारः प्रतिक्रिया (क०) । ४५. प्रार्थनाऽधिकबले विपत्फला (कि०) । ४६. बधिरामन्दकर्णः श्रेयान् । ४७. बन्धुरप्यहितः परः । ४८. बहुविघ्नास्तु सदा कल्याणसिद्धयः (क०) । ४९. भवन्ति क्लेशबहुलाः सर्वस्यापीह सिद्धयः (क०) । ५०. भवन्ति वाचोऽवसरे प्रयुक्ता, श्रुवं प्रविस्पष्टफलोदयाय (कु०) । ५१. भेदस्तत्र प्रयोक्तव्यो यतः स वशकारकः (प०) । ५२. महानपि प्रसङ्गेन नीचं सेवितुमिच्छति । ५३. महोदयानामपि संघवृत्तितां, सहायसाध्याः प्रदिशन्ति सिद्धयः (कि०) । ५४. मायाचारो मायया वर्तितव्यः, साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः (महा०) । ५५. मुख्यमङ्गं हि मन्त्रस्य विनिपात-प्रतिक्रिया (क०) । ५६. मुह्यत्येव हि कृच्छ्रेषु संभ्रमज्वलितं मनः (कि०) । ५७. मौनं सर्वार्थ-साधकम् । ५८. मौनं स्वीकृतिलक्षणम् । ५९. मौनिनः कलहो नास्ति । ६०. यथा देशस्तथा भाषा । ६१. यथा राजा तथा प्रजा । ६२. यदि वाऽत्यन्तमृदुता न कस्य परिभूतये (क०) । ६३. यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम् । ६४. यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य, तिर्यञ्चोऽपि सहायताम् (अ०) । ६५. येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत् । ६६. येनेष्टं तेन गम्यताम् । ६७. रत्नव्ययेन पाषाणं को हि रक्षितुमर्हति (क०) । ६८. वरयेत् कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम् । ६९. विक्रीते करिणि किमंकुशे विवादः । ७०. व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः (क०) । ७१. शुष्केन्धने वहिरुपैति वृद्धिम् । ७२. श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायैः (कि०) । ७३. सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः (कि०) । ७४. सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः (भ०) । ७५. सन्धि कृत्वा तु हन्तव्यः संप्राप्तेऽवसरे पुनः (क०) । ७६. संमुखीनो हि जयो रन्ध्रप्रहारिणाम् (र०) । ७७. सर्वनाशे समुत्पन्नेऽर्धं त्यजति पण्डितः (प०) ।

(१५) पुरुष-स्त्री-स्वभावादि

(क) कन्या (पुत्री)

१. अर्थो हि कन्या परकीय एव (शा०) । २. अशोच्या हि पितुः कन्या, सद्भर्तृप्रतिपादिता (कु०) । ३. कन्या नाम महद् दुःखं, धिगहो महतामपि (क०) । ४. कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम् । ५. शोककन्दः क्व कन्या हि, क्लानन्दः कायवान् सुतः (क०) । ६. स्नुषात्वं पापानां फलमधनगेहेषु सुदृशम् ।

(ख) पुत्र

१. अपुत्राणां किल न सन्ति लोकाः शुभाः (क०) । २. कः सूनुर्विनयं विना । ३. कुपुत्रेण कुलं नष्टम् । ४. कोऽर्थः पुत्रेण जातेन, यो न विद्वान् न धार्मिकः (हि०) । ५. दुर्लभं क्षेमकृतं सुतः । ६. धिक् पुत्रमविनीतं च । ७. न चापत्यसमः स्नेहः । ८. न पुत्रात्परमो लाभः । ९. पुत्रः शत्रुरपण्डितः (चा०) । १०. पुत्रहीनं गृहं शून्यम् । ११. पुत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यं हि कीदृशम् । १२. पुत्रोदये माद्यति का न हर्षात् । १३. मातापितृभ्यां शप्तः सन्न जातु सुखमश्नुते (क०) । १४. शोककन्दः क्र कन्या हि, क्रानन्दः कायवान् सुतः (क०) । १५. सत्पुत्र एव कुलसञ्चयि कोऽपि दीपः । १६. सन्ततिः पुण्यमाख्याति । १७. सन्ततिः शुद्धवंश्या हि, परत्रेह च शर्मणे (र०) ।

(ग) स्त्रीचरित-निन्दा

१. अधरेष्वमृतं हि योषितां, हृदि हालाहलमेव केवलम् । २. अनुरागपरायत्ताः कुर्वन्ते किं न योषितः (क०) । ३. अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोरमाः (प०) । ४. अविनीता रिपुभार्या । ५. कठिनाः खलु स्त्रियः (कु०) । ६. कष्टा हि कुटिलश्वश्रूपरतन्त्रवधूस्थितिः (क०) । ७. किं किं करोति न निरर्गलतां गता स्त्री । ८. किं न कुर्वन्ति योषितः (भ०) । ९. कुगेहिनीं प्राप्य गृहे कुतः सुखम् । १०. न स्त्री चलितचारित्रा निम्नोन्नतमवेक्षते (क०) । ११. नार्यः समाश्रितजनं हि कलङ्कयन्ति । १२. प्रत्ययः स्त्रीषु मुष्णाति विमर्शं विदुषामपि (क०) । १३. मद्ये मारैकसुहृदि प्रसक्ता स्त्री सती कुतः (क०) । १४. वञ्च्यन्ते हेलयैवेह कुस्त्रीभिः सरलाशयाः (क०) । १५. वेश्यानां च कुतः स्नेहः । १६. संनिकृष्टे निकृष्टेऽपि कष्टं रज्यन्ति कुस्त्रियः (क०) ।

(घ) स्त्रीधर्म आदि

१. इहामुत्र च नारीणां परमा हि गतिः पतिः (क०) । २. उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी (शा०) । ३. कष्टं हन्त मृगीदृशां पतिगृहं प्रायेण कारागृहम् । ४. प्रमदाः पतिमार्गागा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि (कु०) । ५. प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कु०) । ६. भर्तृनाथा हि नार्यः (प्रतिमा०) । ७. भर्तृमार्गानुसरणं स्त्रीणां हि परमं व्रतम् (क०) ।

(ङ) स्त्रीशील-प्रशंसा

१. अचिन्त्यं शीलगुणानां चरितं कुलयोषिताम् (क०) । २. असाध्यं सत्यसाध्वीनां किमस्ति हि जगत्त्रये (क०) । ३. असारे खलु संसारे, सारं सारङ्गलोचना । ४. आपद्यपि सतीवृत्तं, किं मुञ्चन्ति कुलस्त्रियः (क०) । ५. का नाम कुलजा हि स्त्री, भर्तृद्रोहं करिष्यति (क०) । ६. किं नाम न सहन्ते हि, भर्तृभक्ताः कुलाङ्गनाः (क०) । ७. कुलवधूः का स्वामिभक्तिं विना । ८. क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्यो मूलकारणम् (कु०) । ९. तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत् सती ।

१०. धिग् गृहं गृहिणीशून्यम् । ११. न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते । १२. न पतिव्यतिरेकेण सुस्त्रीणामपरा गतिः (क०) । १३. न भार्यायाः परं सुखम् । १४. नारीणां भूषणं पतिः । १५. नारीणां भूषणं शीलम् । १६. नास्ति भर्तुः समो बन्धुः (वि०) । १७. नेष्यां भर्तृहितैषिण्यो गणयन्ति हि सुस्त्रियः (क०) । १८. पुत्रप्रयोजना दाराः । १९. पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति (उ०) । २०. पेशलं हि सतीमनः (क०) । २१. भर्तारं हि विना नान्यः सतीनामस्ति बान्धवः (क०) । २२. भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्तुरिष्टे पतिव्रताः (कु०) । २३. भार्या मूलं गृहस्थस्य । २४. भार्यासमं नास्ति शरीरतोषणम् । २५. भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं मतम् । २६. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः (म०) । २७. या सौन्दर्यगुणान्विता पतिरता सा कामिनी कामिनी । २८. शुचिनारी पतिव्रता । २९. सतीधर्मो हि सुस्त्रीणां चिन्त्यो न सुहृदादयः (क०) । ३०. स्निग्धमुग्धा हि सत्स्त्रियः (क०) । ३१. स्फुटमभिभूषयति स्त्रियस्त्रपैव (शि०) । ३२. स्वसुखं नास्ति साध्वीनां, तासां भर्तुसुखं सुखम् (क०) ।

(च) स्त्री-स्वभावादि-वर्णन

१. अहो विनेन्द्रजालेन स्त्रीणां चेष्टा न विद्यते (क०) । २. आदावसत्यवचनं पश्चाज्जाता हि कुस्त्रियः (क०) । ३. उदारसत्त्वं वृणुते, स्वयं हि श्रीरिवाङ्गना (क०) । ४. कान्ता रूपवती शत्रुः । ५. को हि वित्तं रहस्यं वा, स्त्रीषु शक्नोति गूहितुम् (क०) । ६. क्षुध्यन्ति प्रसभमहो विनापि हेतोर्लीलाभिः किमु सति कारणे रमण्यः (शि०) । ७. जातापत्या पतिं द्वेष्टि । ८. तदेव दुःसहं स्त्रीणामिह प्रणयखण्डनम् (क०) । ९. धिक् कलत्रमपुत्रकम् । १०. नवाङ्गनानां नव एव पन्थाः । ११. न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति (महा०) । १२. न स्नेहो न च दाक्षिण्यं, स्त्रीष्वहो चापलादृते (क०) । १३. नहि नार्यो विनेष्यया । १४. नहि वन्ध्याऽऽनुते दुःखं, यथा हि मृतपुत्रिणी । १५. निसर्गसिद्धो नारीणां, सपत्नीषु हि मत्सरः (क०) । १६. प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणम् (शा०) । १७. प्रायः श्वश्रून्पुष्योर्न दृश्यते सौहृदं लोके । १८. प्रायः स्त्रियो भवन्तीह निसर्गविषमाः शठाः (क०) । १९. प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च, यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयन्ति (प०) । २०. बत स्त्रीणां चञ्चलार्थित्तवृत्तयः (क०) । २१. युवतिजनः खलु नाप्यतेऽनुरूपः (कि०) । २२. स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः । २३. स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तुकाः । २४. स्त्रीचित्तमहो विचित्रमिति (क०) । २५. स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः (क०) । २६. स्त्रीणां भावानुरक्तं हि, विरहासहनं मनः (क०) । २७. स्त्रीणामलीकमुग्धं हि, वचः को मन्यते मृषा (क०) । २८. स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु (मे०) । २९. स्त्री पुंवच्च प्रभवति तदा, तद्धि गेहं विनष्टम् । ३०. स्त्रीबुद्धिः प्रलयावहा (का० नी०) । ३१. स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः

(भ०) । ३२. स्त्री विनश्यति रूपेण (शा० प०) । ३३. स्त्रीषु वाक्संयमः कुतः (क०) । ३४. स्वाधीना दयिता सुतावधि ।

(१६) कवि, काव्य, कविता

१. कलासीमा काव्यम् । २. कवयः किं न पश्यन्ति । ३. काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् (हि०) । ४. केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय । ५. पिपासितैः काव्यरसो न पीयते । ६. पिबामः शास्त्रौघानुत विविधकाव्यामृतरसान् । ७. सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् । ८. स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् । रचिता पृथगर्थता गिरां, न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् (कि०) ।

(१७) विविध

(क) कलि

१. कलौ वेदान्तिनो भान्ति, फाल्गुने बालका इव । २. पश्यन्तु लोकाः कलिकौतुकानि । ३. पश्यन्तु लोकाः कलिदोषकाणि । ४. साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्राप्ते कलौ दुर्युगे ।

(ख) शकुन

१. अन्तरापाति हि श्रेयः, कार्यसम्पत्तिसूचकम् (क०) । २. अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् (र०) । ३. आवेदयन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमग्रपातीनि शुभानि निमित्तानि (का०) । ४. आमुखापाति कल्याणं, कार्यसिद्धिं हि शंसति (क०) । ५. भवन्त्युदयकाले हि सत्कल्याणपरम्पराः (क०) ।

(ग) विविध सुभाषित

१. अधिकस्याधिकं फलम् । २. अनाश्रया न शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः । ३. अपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः । ४. अपुत्रस्य गृहं शून्यम् । ५. अप्रकटीकृतशक्तिः शक्तोऽपि जनस्तिरस्क्रियां लभते । ६. अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः (प०) । ७. अभोगस्य हतं धनम् (प०) । ८. अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः । ९. अल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः । १०. अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः (कु०) । ११. अहो दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम् (क०) । १२. आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया (र०) । १३. इन्द्रोऽपि लघुतां याति, स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः (प०) । १४. कस्यचित् किमपि नो हरणीयं, मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम् । १५. क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते (कु०) । १६. क्षुधातुराणां न रुचिर्न

पक्कम् । १७. घनाम्बुना राजपथे हि पिच्छले, क्वचिद् बुधैरप्यपथेन गम्यते (नै०) । १८. चक्षुःपूतं न्यसेत् पादम् (चा०) । १९. जातौ जातौ नवाचाराः । २०. जामाता दशमो ग्रहः । २१. जीवो जीवस्य जीवनम् । २२. ज्येष्ठभ्राता पितुः समः । २३. दया मांसाशिनः कुतः (प०) । २४. दिशत्यपायं हि सतामतिक्रमः (कि०) । २५. दुर्लभः स गुरुलौके शिष्यचिन्तापहारकः । २६. दुर्लभः स्वजनप्रियः । २७. देहस्नेहो हि दुस्त्यजः (क०) । २८. नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति (प०) । २९. न नश्यति तमो नाम, कृतया दीपवार्तया । ३०. ननु तैलनिषेकबिन्दुना, सह दीपार्घिरुपैति मेदिनीम् (र०) । ३१. न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः, शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (र०) । ३२. न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् (शा०) । ३३. न भूतो न भविष्यति । ३४. न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् (कु०) । ३५. नराणां नापितो धूर्तः (प०) । ३६. न सुवर्णे ध्वनिस्तादृग् यादृक् कांस्ये प्रजायते । ३७. नहि प्रफुल्लं सहकारमेत्य, वृक्षान्तरं कांक्षति षट्पदालिः (र०) । ३८. नहि सिंहो गजास्कन्दी भयात् गिरिगुहाश्रयः । ३९. नाकाले म्रियते जन्तुर्विद्धः शरशतैरपि (घ०) । ४०. नाल्पीयान् बहुसुकृतं हिनस्ति दोषः (कि०) । ४१. निःसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान् । ४२. निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते (हि०) । ४३. निर्वाणदीपे किमु तैलदानम् । ४४. नैकत्र सर्वो गुणसंनिपातः । ४५. पङ्क्तौ हि नभसि क्षिप्तः क्षेप्तुः पतति मूर्धनि (क०) । ४६. परोपदेशवेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति वै । ४७. परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् । ४८. प्रकृत्या ह्यमणिः श्रेयान् नालंकारश्च्युतोपलः (कि०) । ४९. प्रत्यासन्नविपत्तिमूढमनसां प्रायो मतिः क्षीयते । ५०. फणाटोपो भयंकरः (प०) । ५१. बालानां रोदनं बलम् । ५२. भवत्यपाये परिमोहिनी मतिः (कि०) । ५३. भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः (कि०) । ५४. मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु०) । ५५. मुण्डे-मुण्डे मर्तिर्भ्रन्ना । ५६. यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् । ५७. यदध्यासितमर्हद्भिस्तिद्धि तीर्थं प्रचक्षते (कु०) । ५८. यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी मतिः । ५९. यद्वा तद् वा भविष्यति । ६०. याचको याचकं दृष्ट्वा श्रानवत् गुर्गुरायते । ६१. यादृशास्तन्तवः कामं तादृशो जायते पटः (कु०) । ६२. योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु । ६३. यो यद् वपति बीजं हि, लभते तादृशं फलम् (क०) । ६४. रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन । ६५. रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम् (कु०) । ६६. रिक्तपाणिर्न प्रेक्षेत राजानं देवतां गुरुम् । ६७. लाभः परं तव मुखे खलु भस्मपातः । ६८. वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः । ६९. वासोविहीनं विजहाति लक्ष्मीः । ७०. विना मलयमन्यत्र चन्दनं न प्ररोहति । ७१. विनाशकाले विपरीतबुद्धिः । ७२. विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति (शा०) । ७३. विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेतुमसाम्प्रतम् (कु०) । ७४. शस्त्राघाता न तथा सूचीक्षतवेदना यादृक् । ७५. शिष्यपापं गुरुस्तथा । ७६. शुभस्य शीघ्रम्, अशुभस्य कालहरणम् । ७७. श्यालको गृहनाशाय (चा०) । ७८. संपत्सम्पदं विपद् विपदमनुबध्नातीति (शा०) । ७९. सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्दम् । ८०. सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति (शा०) । ८१. सुखमुपदिश्यते परस्य (का०) । ८२. स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः । ८३. स्वदेशजातस्य नरस्य नूनं गुणाधिकस्यापि भवेदवज्ञा ।

(१३) पारिभाषिक-शब्दकोश

सूचना (१) संस्कृत-व्याकरण को ठीक-ठीक समझने के लिए आवश्यक एवं अत्युपयोगी सभी पारिभाषिक शब्दों का यहाँ पर संग्रह किया गया है। विद्यार्थी इन शब्दों को बहुत सावधानी से स्मरण कर लें। (२) पारिभाषिक शब्दों के साथ उनके मूल-नियम पाणिनि के सूत्र आदि के रूप में दिये गये हैं। (३) इस शब्दकोश में सभी शब्द अकारादि-क्रम से दिये गये हैं।

(१) **अकर्मक**—अकर्मक वे धातुएँ होती हैं, जिनके साथ कर्म नहीं आता। अकर्मक की साधारणतया पहचान यह है कि जिनमें किम् (किसको, क्या) का प्रश्न नहीं उठता। इन अर्थवाली धातुएँ अकर्मक होती हैं। 'लज्जासत्तास्थितिजागरणं, वृद्धिक्षयभयजीवतिमरणम्। शयनक्रीडाश्चिदीप्त्यर्थं, धातुगणं तमकर्मकमाहुः' ॥ फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वं सकर्मकत्वम्। फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वमकर्मकत्वम् ॥ इन कारणों से सकर्मकधातु अकर्मक हो जाती है—धातु का अर्थान्तर में प्रयोग, धात्वर्थ में कर्म का संग्रह, प्रसिद्धि तथा कर्म की अविश्वसा।

(२) **अक्षर**—(अक्षरं न क्षरं विद्याद्, अश्रुतेर्वा सरोऽक्षरम्) अविनाशी और व्यापक होने के कारण स्वर और व्यंजन वर्णों को अक्षर कहते हैं।

(३) **अघोष**—खय् प्रत्याहार अर्थात् वर्णों के प्रथम और द्वितीय अक्षर, जिह्वामूलीय \times क, उपध्मानीय \times प, विसर्ग और श ष स ये अघोष वर्ण हैं।

(४) **अच्**—स्वरो को अच् कहते हैं। वे हैं—अ से लेकर औ तक स्वर।

(५) **अजन्त**—(अच्+अन्त) स्वर अन्तवाले शब्द या धातु आदि।

(६) **अध्याहार**—(सूत्रे अश्रूयमाणत्वे सति अर्थप्रत्यायकत्वम्) सूत्र में जो शब्द या अर्थ नहीं है और वह शब्द या अर्थ अर्थवशात् लिया जाता है तो उस अंश को अध्याहार कहते हैं।

(७) **अनिट्**—(न+इट्) जिन धातुओं में साधारणतया बीच में 'इ' नहीं लगता। जैसे—कृ, गम् आदि। इनका विशेष विवरण पृष्ठ २६८ पर दिया है। कृ—कर्ता, कर्तुम् आदि।

(८) **अनुदात्त**—(नीचैरनुदात्तः, १।२।३०) जिस स्वर को तालु आदि के नीचे भाग से बोला जाता है, या जिस पर बल नहीं दिया जाता, उसे अनुदात्त कहते हैं। वेद में अक्षर के नीचे लकीर खींचकर अनुदात्त का संकेत किया जाता है। स्वरित के बाद अनुदात्त का चिह्न नहीं लगता। बाद में उदात्त होगा तो अनुदात्त अनुदात्त रहेगा।

(९) **अनुनासिक**—(मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः, १।१।८) जिन वर्णों का उच्चारण मुख और नासिका दोनों के फल से होता है, उन्हें अनुनासिक कहते हैं। वर्णों के पंचमाक्षर ङ ञ ण म अनुनासिक ही होते हैं। अच् और य व ल अनुनासिक और अनुनासिक-रहित दोनों प्रकार के होते हैं।

(१०) अनुबन्ध—प्रत्ययों आदि के प्रारम्भ और अन्त में कुछ स्वर या व्यंजन इसलिए जुड़े होते हैं कि उस प्रत्यय के होने पर गुण, वृद्धि, संप्रसारण, कोई विशेष स्वर उदात्तादि, या अन्य कोई विशेष कार्य हो। ऐसे सहेतुक वर्णों को अनुबन्ध कहते हैं। ये 'इत्' होते हैं अर्थात् इनका लोप हो जाता है। जैसे—क्तवतु में क् और उ। शतू में श् और ऋ। अतः क्तवतु को कित् कहेंगे, शतू को शित् या उगित्।

(११) अनुवृत्ति—पाणिनि के सूत्रों में पहले के सूत्रों से कुछ या पूरा अंश अगले सूत्रों में आता है, इसे अनुवृत्ति कहते हैं। तभी अगले सूत्र का अर्थ पूरा होता है। विरोधी बात होने पर अनुवृत्ति नहीं होती। कुछ अधिकार-सूत्र होते हैं, उनकी पूरे प्रकरण में अनुवृत्ति होती है। जैसे—प्राग्दीव्यतोऽण् (४।१।८३), तस्यापत्यम् (४।१।९२)।

(१२) अन्तरङ्ग—प्राथमिकता का कार्य। धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग अर्थात् मुख्य होता है।

(१३) अन्तस्थ—(यरलवा अन्तस्थाः) य र ल व को अन्तस्थ कहते हैं।

(१४) अन्वादेश—(किञ्चित्कार्य विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादान-मन्वादेशः।) पूर्वोक्त व्यक्ति आदि के पुनः किसी काम के लिए उल्लेख करने को अन्वादेश कहते हैं। जैसे—अनेन व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापय।

(१५) अपवाद—विशेष नियम। यह उत्सर्ग (सामान्य) नियम का बाधक होता है।

(१६) अपृक्त—(अपृक्त एकाल्प्रत्ययः, १।२।४१) एक अल् (स्वर या व्यंजन) मात्र शेष प्रत्यय को अपृक्त कहते हैं। जैसे—सु का स्, ति का त्, सि का स्।

(१७) अभ्यास—(पूर्वोऽभ्यासः, ६।१।४) लिट् आदि में धातु के जिस अंश को द्वित्व होता है, उसके प्रथम भाग को अभ्यास कहते हैं। जैसे—चकार में च, ददर्श में द।

(१८) अलुक्—सुप् अर्थात् विभक्ति या सुप् का लोप न होना। अलुक्समास में पूर्व पद की सुप् विभक्तियों का लोप नहीं होता है। जैसे—आत्मनेपदम्, परस्मैपदम्, सरसिजम्।

(१९) अल्पप्राण—(वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यरलवाश्चाल्पप्राणाः) वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम अक्षर तथा य र ल व अल्पप्राण कहे जाते हैं। जैसे—कवर्ग में क ग ङ। च ज ञ, ट ढ ण, त द न, प ब म, य र ल व।

(२०) अवग्रह—(सूत्रेण विधीयमानकार्यस्य बोधकं चिह्नम्) सूत्र से किये गए कार्य के बोधक चिह्न को अवग्रह कहते हैं। ऽ = अ। ऽ यह संकेत अ हटा है, इसका बोधक है। पदों या अवयवों के विच्छेद को भी अवग्रह कहते हैं।

(२१) अव्यय—(स्वरादिनिपातमव्ययम्, १।१।३७) स्वर आदि शब्द तथा सभी निपात अव्यय होते हैं। अव्यय वे हैं, जिनके रूप में कभी परिवर्तन या अन्तर नहीं होता। जैसे—प्र परा सम् आदि उपसर्ग और उच्चैः, नीचैः आदि निपात।

(२२) अष्टाध्यायी—पाणिनि के व्याकरण-ग्रन्थ को अष्टाध्यायी कहते हैं। इसमें आठ अध्याय हैं, अतः अष्टाध्यायी नाम पड़ा। प्रत्येक अध्याय में ४ पाद हैं और प्रत्येक पाद में कुछ सूत्र। सूत्रों के आगे निर्दिष्ट संख्याओं का क्रमशः यह भाव है—(१) अध्याय की संख्या, (२) पाद की संख्या, (३) सूत्र की संख्या। यथा—१।१।१, अध्याय १, पाद १ का पहला सूत्र।

(२३) असिद्ध—(पूर्वत्रासिद्धम्, ८।२।१) किसी विशेष नियम की दृष्टि में किसी नियम या कार्य को न हुआ-सा समझना। जैसे—सवा सात अध्यायों की दृष्टि में अन्तिम तीन पाद असिद्ध हैं और तीन पाद में भी पूर्व के प्रति बाद के नियम असिद्ध हैं।

(२४) आख्यात—धातु और क्रिया को आख्यात कहते हैं। 'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च'।

(२५) आगम—शब्द या धातु के बीच या अन्त में जो अक्षर या वर्ण और जुड़ जाते हैं, उन्हें आगम कहते हैं। जैसे—पयस् > पयांसि में न् का बीच में आगम है।

(२६) आत्मनेपद—(तडनावात्मनेपदम्, १।४।१००) तड् (ते, एते, अन्ते आदि) शानच्, कानच्, ये आत्मनेपद होते हैं। जिन धातुओं के अन्त में ते एते अन्ते आदि लगते हैं, वे धातुएँ आत्मनेपदी कहाती हैं। जैसे—सेव् धातु। सेवते सेवेते०।

(२७) आदेश, एकादेश—किसी वर्ण या प्रत्यय आदि के स्थान पर कुछ नए प्रत्यय आदि के होने को आदेश कहते हैं। जैसे—आदाय में क्त्वा को ल्यप् आदेश। पूर्व और पर दो के स्थान पर एक वर्ण होना एकादेश है। जैसे—रमेशः में आ + ई को ए गुण।

(२८) आमन्त्रित—(सामन्त्रितम्, २।३।४८) संबोधन को आमन्त्रित कहते हैं। हे अग्ने!

(२९) आप्नेडित—(तस्य परमाप्नेडितम्, ८।१।२) द्विरुक्तिवाले स्थानों पर उत्तरार्ध को आप्नेडित कहते हैं। जैसे—कान्+कान्, = कांस्कान् के बाद वाला कान्।

(३०) आर्धधातुक—(आर्धधातुकं शेषः, ३।४।११४) तिङ् (ति तः अन्ति आदि और ते एते अन्ते आदि) और शित् (श् इत्वाले, शतृ आदि) से अतिरिक्त धातुओं से जुड़नेवाले प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते हैं। (लिट् च, ३।४।११५, लिङाशिषि, ३।४।११६) लिट् और आशीर्लिङ् के स्थान पर होनेवाले तिङ् भी आर्धधातुक होते हैं।

(३१) इट्—(आर्धधातुकस्येड्वलादेः, ७।२।३५) इट् का इ शेष रहता है। यह धातु और प्रत्यय के बीच में होता है। वलादि आर्धधातुक को इट् (इ) होता है। जैसे—पठिष्यति, पठितुम्। इस इट् (इ) के आधार पर ही धातुएँ सेट् या अनिट् कही जाती हैं। जिन धातुओं में साधारणतया इट् (इ) होता है, उन्हें सेट् (स + इट्) अर्थात् 'इ' वाली धातुएँ कहते हैं। जिनमें इट् (इ) नहीं होता, उन्हें अनिट् (न+इट्) कहते हैं।

(३२) इत्—(तस्य लोपः, १।३।९) जिसको इत् कहेंगे, उसका लोप हो जाएगा। अनुबन्धों को इत् कहते हैं। गुण आदि के लिए प्रत्ययों के आदि या अन्त में ये लगे होते हैं। बाद

में ये हट जाते हैं। जैसे—शत् में श् और ऋ। शत् में श् हटा है, अतः इसे शित् कहेंगे। जो अक्षर हटा होगा, उसके आधार पर प्रत्यय कित् (क् + इत्), पित् (प् + इत्) आदि कहे जाते हैं। इत् होनेवाले अक्षर ये हैं—(१) हलन्त्यम् (१।३।३), अ इ उ ण् आदि में अन्तिम व्यंजन इत् होता है। (२) उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१।३।२) उच्चारण में अनुनासिक-संकेतवाला स्वर। (३) चुटू (१।३।७) प्रत्यय के आदि के चवर्ग और टवर्ग। (४) लशक्वतद्धिते (१।३।८) तद्धित प्रकरण को छोड़कर प्रत्यय के आदि के ल श और कवर्ग। (५) षः प्रत्ययस्य (१।३।६) प्रत्यय के आदि का ष। इत्यादि।

(३३) उणादि—(उणादयो बहुलम्, ३।३।१) धातुओं से उण् आदि प्रत्यय होते हैं। इस उण् प्रत्यय के आधार पर व्याकरण में इस प्रकरण को उणादि-प्रकरण कहते हैं।

(३४) उत्सर्ग—साधारण नियमों को उत्सर्ग कहते हैं। विशेष को अपवाद।

(३५) उदात्त—(उच्चैरुदात्तः, १।२।२९) जिस स्वर को तालु आदि के उच्च भाग से बोला जाता है या जिस स्वर पर बल दिया जाता है, उसे उदात्त कहते हैं।

(३६) (क) उपपद-विभक्ति—किसी पद (सुबन्त, तिङ्न्त) को मानकर जो विभक्ति होती है, उसे उपपद-विभक्ति कहते हैं। जैसे—गुरवे नमः में नमः पद के कारण चतुर्थी है। (ख) कारक-विभक्ति—क्रिया को मानकर जो विभक्ति होती है, उसे कारक-विभक्ति कहते हैं। जैसे—पाठं पठति में पठति क्रिया के आधार पर द्वितीया विभक्ति है।

(३७) उपधा—(अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा, १।१।६५) अन्तिम अल् (स्वर या व्यंजन) से पहले आनवाले वर्ण को उपधा कहते हैं। जैसे—लिख् धातु में उपधा में इ है।

(३८) उपध्मानीय—कुप्चोः ँ क ँ पौ च, ८।३।३७) प फ से पहले ँ अर्धविसर्ग के तुल्य ध्वनि को उपध्मानीय कहते हैं। जैसे—नृं ँ पाहि (नृन् पाहि)। यह विसर्ग के स्थान पर होता है।

(३९) उपसर्ग—(उपसर्गाः क्रियायोगे, १।४।५९) धातु या क्रिया से पहले लगनेवाले प्र परा आदि को उपसर्ग कहते हैं। ये २२ हैं—प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप।

(४०) उभयपद—परस्मैपद (ति, तः आदि) और आत्मनेपद (ते, एते आदि) इन दोनों पदों के चिह्नों का लगना। जिन धातुओं में ये चिह्न लगते हैं, उन्हें उभयपदी कहते हैं।

(४१) ऊष्म—(शषसहा ऊष्माणः) श ष स ह को ऊष्म वर्ण कहते हैं।

(४२) ओष्ठ्य—(उपूपध्मानीयानामोष्ठौ) उ, ऊ, उ३, पवर्ग और उपध्मानीय इनका उच्चारण स्थान ओष्ठ है, अतः ये ओष्ठ्य वर्ण कहलाते हैं।

(४३) कण्ठ्य—(अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) अ, आ, अ३, कवर्ग, ह और विसर्ग (ः) इनका उच्चारण-स्थान कण्ठ है, अतः ये कण्ठ्य वर्ण कहलाते हैं।

(४४) कर्मप्रवचनीय—(कर्मप्रवचनीयाः, १।४।८३) अनु, उप, प्रति, परि आदि उपसर्ग कुछ अर्थों में कर्मप्रवचनीय होते हैं। इनके साथ द्वितीया आदि होती है।

(४५) कारक—प्रथमा, द्वितीया आदि को कारक या विभक्ति कहते हैं। षष्ठी को कारक नहीं माना जाता है। शास्त्रीय दृष्टि से कारक ६ हैं। संबोधन प्रथमा के अन्तर्गत है।

(४६) कृत्—(कर्तरि कृत्, ३।४।६७) धातु से होनेवाले क्त क्तवतु शतृ शानच् आदि को कृत् प्रत्यय कहते हैं। क्त और खल् को छोड़कर शेष कृत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में होते हैं। घञ् प्रत्यय कर्ता से भिन्न कारक तथा भाव अर्थ में होता है।

(४७) कृत्य—(तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः, ३।४।७०) धातु से होनेवाले तव्य, अनीय, य आदि को कृत्य प्रत्यय कहते हैं। ये भाव और कर्मवाच्य में होते हैं।

(४८) कृदन्त—जिन शब्दों के अन्त में कृत् प्रत्यय लगे होते हैं, उन्हें कृदन्त कहते हैं।

(४९) क्रिया—धातुवाच्य और धातुरूपों को क्रिया कहते हैं। जैसे—पचनम्, पठनम्, पठति, लिखति।

(५०) गण—धातुओं को १० भागों में बाँटा गया है, उन्हें गण कहते हैं। जैसे—भ्वादिगण, अदादिगण, जुहोत्यादिगण आदि।

(५१) गणपाठ—कतिपय शब्दों से एक ही प्रत्यय लगता है। ऐसे शब्दों को एक गण (समूह) में रखा गया है। ऐसे शब्द-संग्रह को गणपाठ कहते हैं। जैसे—नद्यादिभ्यो ढक् (४।२।९७)

(५२) गति—(गतिश्च, १।४।६०) उपसर्गों को गति कहते हैं। कुछ अन्य शब्द भी गति होते हैं।

(५३) गुण—(अदेङ्गुणः, १।१।२) अ, ए ओ को गुण कहते हैं। गुण कहने पर इ ई को ए, उ ऊ को ओ, ऋ को अर् हो जाता है।

(५४) गुरु—(संयोगे गुरु, १।४।११; दीर्घ च, १।४।१२) संयुक्त वर्ण बाद में हो तो ह्रस्व वर्ण गुरु होता है। सभी दीर्घ अक्षर गुरु होते हैं।

(५५) घ—(तरसमपौ घः, १।१।२२) तरप् और तमप् प्रत्ययों को घ कहते हैं।

(५६) घि—(शेषो घ्यसखि, १।४।७) ह्रस्व इ और उ अन्तवाले शब्द घि कहलाते हैं, स्त्रीलिंग शब्दों और सखि शब्द को छोड़कर।

(५७) घु—(दाधा घ्वदाप्, १।१।२०) दा और धा धातु को तथा दा और धा रूपवाली अन्य धातुओं (दाण्, धेद् आदि) को घु कहते हैं, दाप् को छोड़कर।

(५८) घोष—अच् (स्वर) और हश् प्रत्याहार अर्थात् वर्ण के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण और ह य व र ल घोष हैं।

(५९) जिह्वामूलीय—(कुप्वोः ॐ क ॐ पौ च, ८।३।३७) क ख से पहले अर्ध-विसर्ग के तुल्य ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। क ॐ करोति (कः करोति)। यह विसर्ग के स्थान पर होता है।

(६०) टि—(अचोन्त्यादि टि, १।१।६४) शब्द के अन्तिम ओर से जहाँ स्वर मिले, वह स्वर और आगे यदि व्यंजन हो तो वह व्यंजन-सहित स्वर टि कहलाता है। जैसे—मनस् में अस्, धनुष् में उष् टि हैं।

(६१) तपर—(तपरस्तत्कालस्य, १।१।७०) किसी स्वर के बाद त लगा देने से उसी स्वर का ग्रहण होगा, अन्य दीर्घ आदि का नहीं। जैसे—अत् का अर्थ है ह्रस्व अ। आत् दीर्घ आ।

(६२) तद्धित—शब्दों से पुत्र आदि अर्थों में होनेवाले प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं।

(६३) तालव्य—(इचुयशानां तालु) इ ई इ३, चवर्ग, य, श का उच्चारण-स्थान तालु हैं, अतः इन्हें तालव्य वर्ण कहते हैं।

(६४) तिङ्—धातु के बाद लगनेवाले ति तः आदि और ते एते आदि को तिङ् कहते हैं।

(६५) तिङन्त—ति तः आदि से युक्त पठति आदि धातुरूपों को तिङन्त पद कहते हैं।

(६६) दन्त्य—(लुतुलसानां दन्ताः) लु, तवर्ग, ल, स का उच्चारण-स्थान दन्त है, अतः इन्हें दन्त्य वर्ण कहते हैं।

(६७) दीर्घ—आ ई ऊ ऋ को दीर्घ स्वर कहते हैं। दीर्घ कहने पर ह्रस्व के स्थान पर ये होते हैं।

(६८) द्वित्व—किसी वर्ण या वर्णसमूह को दो बार पढ़ने को द्वित्व कहते हैं। पपाठ में पठ् को द्वित्व है।

(६९) द्विरुक्ति—किसी शब्दरूप या धातुरूप को दो बार पढ़ना। स्मारं स्मारं, स्मृत्वा स्मृत्वा।

(७०) धातु—भू पठ् कृ आदि क्रियावाचक शब्दों को धातु कहते हैं।

(७१) धातुपाठ—भू आदि धातुओं को १० गणों के अनुसार संग्रह किया गया है। इस धातु-संग्रह को धातुपाठ कहा जाता है। इसमें धातुओं के साथ उनके अर्थ आदि भी दिए गए हैं।

(७२) नदी—(१) (यू स्याख्यौ नदीं, १।४।३) दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द नदी कहलाते हैं। (२) (डिति ह्रस्वश्च, १।४।६) इकारान्त उकारान्त स्त्रीलिंग शब्द भी डित् विभक्तियों में विकल्प से नदी कहलाते हैं।

(७३) नपुंसकलिंग—यह तीन लिंगों में से एक लिंग है। फल, वारि, मधु आदि नपुं० शब्द हैं।

(७४) नाद—अच् (स्वर) और हश् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय चतुर्थ पञ्चम वर्ण, ह य व र ल) नाद वर्ण हैं।

(७५) नाम—प्रातिपदिक या संज्ञा शब्दों को नाम कहते हैं। 'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च' निरुक्त।

(७६) निपात—(चादयोऽसत्त्वे, १।४।५७) च वा ह आदि को निपात कहते हैं। (स्वरादिनिपातमव्ययम्) सभी निपात अव्यय होते हैं, अतः वे सदा एकरूप रहते हैं।

(७७) निष्ठा—(क्तवतू निष्ठा, १।१।२६) क्त और क्तवतु प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं।

(७८) पद—(१) (सुप्तिङन्तं पदम्, १।४।१४) सुप् (: औ अः आदि) से युक्त शब्दों और तिङ् (ति तः अन्ति आदि) से युक्त धातुरूपों को पद कहते हैं। जैसे—रामः, पठति। (२) (स्वादिष्वसर्वनामस्थाने, १।४।१७) सु (स्) आदि प्रत्यय बाद में हों तो शब्द को पद कहते हैं। ये प्रत्यय बाद में होंगे तो नहीं—सु आदि प्रथम पाँच सुप्, यकारादि और स्वर आदि-वाले प्रत्यय।

(७९) पदान्त—नियम ७८ में उक्त पद के अन्तिम अक्षर को पदान्त कहते हैं।

(८०) पररूप—(एडि पररूपम्, ६।१।९४) सन्धि-नियमों में दो स्वरों को मिलाने पर अगले स्वर के तुल्य रूप रह जाने को पररूप कहते हैं। जैसे— प्र + एजते = प्रेजते।

(८१) परस्मैपद—(लः परस्मैपदम्, १।४।९९) लकारों के स्थान पर होनेवाले ति, तः, अन्ति आदि प्रत्ययों को परस्मैपद कहते हैं। ये जिनके अन्त में लगते हैं, उन्हें परस्मैपदी धातु कहते हैं। ते, एते, अन्ते आदि को आत्मनेपद कहते हैं। शतृ प्रत्यय परस्मैपद में होता है।

(८२) परिभाषा—विधिशास्त्र की प्रवृत्ति और निवृत्ति के नियामक शास्त्र को परिभाषा कहते हैं।

(८३) पुलिंग—यह तीन लिंगों में से एक है। जैसे पुलिंग शब्द—रामः, हरिः।

(८४) पूर्वरूप—(एडः पदान्तादति, ६।१।१०९) सन्धि-नियमों में दो स्वरों को मिलाने पर पहले स्वर के तुल्य रूप रह जाने को पूर्वरूप कहते हैं। जैसे—हरे + अव = हरेऽव।

(८५) (क) प्रकृति—शब्द या धातु जिससे कोई प्रत्यय होता है, उसे प्रकृति कहते हैं। इसका दूसरा पारिभाषिक नाम 'अंग' है। जैसे—रामः में राम प्रकृति है और पठति में पठ्।
(ख) प्रकृति-विकृति—शब्द या धातु के मूलरूप के स्थान पर जो नया आदेश होता है, उसे प्रकृति-विकृति या विकार-भाव कहते हैं। जैसे—उवाच में प्रकृति ब्रू धातु है, उसको विकृति विकार या आदेश वच् हुआ है। यह पूरे शब्द या धातु को भी होता है और कहीं पर उसके एक अंश को।

(८६) प्रकृतिभाव—(प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्, ६।१।१२५) प्रकृतिभाव का अर्थ है कि वहाँ पर कोई सन्धि नहीं होती। प्लुत और प्रगृह्यवाले स्थानों पर प्रकृतिभाव होता है।

(८७) प्रगृह्य—(१) (ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्, १।१।११) प्रगृह्यवाले स्थान पर कोई सन्धि नहीं होती। ई, ऊ, ए अन्तवाले द्विवचनान्त रूप प्रगृह्य होते हैं, अतः सन्धि नहीं होगी। जैसे—हरी एतौ। (२) (अदसो मात्, १।१।१२) अदस् के म् के बाद ई, ऊ होंगे तो कोई सन्धि नहीं होगी। जैसे—अमी ईशाः। अमू आसाते।

(८८) प्रत्यय—(प्रत्ययः, ३।१।१) शब्दों और धातुओं के बाद लगनेवाले सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित आदि को प्रत्यय कहते हैं। कुछ प्रत्यय पहले (बहुच् आदि) और बीच में (अकच् आदि) भी लगते हैं। बहुपदुः। उच्चकैः। प्रत्ययों में विशेष कार्य के लिए अनुबन्ध भी लगे होते हैं।

(८९) प्रत्याहार—(आदिरन्त्येन सहेता, १।१।७१) प्रत्याहार का अर्थ है संक्षेप में कथन। अच्, हल्, सुप्, तिङ् आदि प्रत्याहार हैं। अच्, हल् आदि के लिए पहला अक्षर अइउण् आदि १४ सूत्रों में ढूँढ़ें और अन्तिम अक्षर उन सूत्रों के अन्तिम अक्षर में। जैसे—अच् = अइउण् के अ से लेकर ऐऔच् के च तक, पूरे स्वर। सुप् = सु से सुप् के प तक। तिङ् = तिप् से महिङ् तक।

(९०) प्रयत्न—वर्णों के उच्चारण में जो प्रयत्न (मनोयोगपूर्वक प्राण का व्यापार) किया जाता है, उसे प्रयत्न कहते हैं। यह दो प्रकार का है—आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर चार प्रकार का है—स्पृष्ट, ईषत्-स्पृष्ट, विवृत, संवृत। बाह्य ११ प्रकार का है—विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष आदि। (देखें सिद्धान्तकौमुदी संज्ञाप्रकरण)

(११) प्रातिपदिक—(१) (अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्, १।२।४५) सार्थक शब्द को प्रातिपादिक कहते हैं। यही विभक्ति (सु आदि) लगने पर पद बनता है। (२) (कृतद्धितसमासाश्च, १।२।४६) कृत् और तद्धित प्रत्ययान्त तथा समास-युक्त शब्द भी प्रातिपदिक होते हैं।

(१२) प्रेरणार्थक—दूसरे से काम करवाना। जैसे—लिखना से लिखवाना। इस अर्थ में णिच् होता है।

(१३) प्लुत—ह्रस्व स्वर से तिगुनी मात्रा। अक्षर के आगे ३ लिखकर इसका संकेत करते हैं। जैसे— देवदत्त३।

(१४) बहिरङ्ग—गौण नियम। धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग होता है, शेष बहिरङ्ग।

(१५) बहुलम्—विकल्प या ऐच्छिक नियम को बहुलम् कहते हैं।

(१६) भ—(यचि भम्, १।४।१८) यकारादि और स्वर-आदिवाला प्रत्यय बाद में हो तो उससे पहले के शब्द को भ कहते हैं, सु औ आदि प्रथम पाँच सुप् बाद में हों तो नहीं।

(१७) भाष्य—पतंजलि-रचित महाभाष्य को संक्षेप में भाष्य कहते हैं।

(१८) मत्वर्थक प्रत्यय—मतुप् प्रत्यय 'वाला' या 'युक्त' अर्थ में होता है। इस अर्थ में होनेवाले सभी प्रत्ययों को मत्वर्थक प्रत्यय कहते हैं। जैसे—धनवान्, धनी।

(१९) महाप्राण—(द्वितीय-चतुर्थी शलश्च महाप्राणाः) वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ अक्षर तथा श ष स ह महाप्राण वर्ण कहलाते हैं। जैसे—ख घ, छ झ, ठ ढ।

(१००) मात्रा—स्वरों के परिमाण को मात्रा कहते हैं। ह्रस्व या लघु अक्षर की एक मात्रा मानी जाती है, दीर्घ या गुरु की दो, प्लुत की तीन।

(१०१) मुनित्रय—(यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्) पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि इन तीनों को मुनित्रय कहते हैं। मतभेद होने पर बादवाले मुनि का कथन प्रामाणिक माना जाता है।

(१०२) मूर्धन्य—(ऋदुराणां मूर्धा) ऋ ऋ ऋ३, टवर्ग, र, ष का उच्चारण स्थान मूर्धा है, अतः इन्हें मूर्धन्य कहते हैं।

(१०३) योगरूढ—योगरूढ उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें यौगिक अर्थात् प्रकृति-प्रत्यय का अर्थ निकलता है, परन्तु वे किसी विशेष अर्थ में रूढ या प्रचलित हो गये हैं। जैसे—पंकज का अर्थ है—कीचड़ में होनेवाला। पर वह कमल अर्थ में रूढ है।

(१०४) योगविभाग—पाणिनि के सूत्रों को कात्यायन आदि ने आवश्यकतानुसार विभक्त करके एक सूत्र (योग) के दो या तीन सूत्र बनाए हैं, इस सूत्र-विभाजन को योगविभाग कहते हैं।

(१०५) यौगिक—यौगिक उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ निकलता है। जैसे—पाचकः—पच् + अकः, पकानेवाला।

(१०६) रूढ—रूढ उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ नहीं निकलता है। जैसे—मणि, नूपुर आदि।

(१०७) लघु—(ह्रस्वं लघु, १।४।११) ह्रस्व अ इ उ ऋ को लघु वर्ण कहते हैं।

(१०८) लिंग—संस्कृत में तीन लिंग होते हैं—पुंलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग।

(१०९) लुक्—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः, १।१।६१) प्रत्यय के लोप का ही दूसरा नाम लुक् है।

(११०) लुप् या श्लु—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः, १।१।६१) प्रत्यय के लोप को लुप् और श्लु भी कहते हैं।

(१११) लोप—(अदर्शनं लोपः, १।१।६०) वर्ण, प्रत्यय आदि के हट जाने को लोप कहते हैं।

(११२) वचन—संस्कृत में तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन, बहुवचन। एक के लिए एकवचन, दो के लिए द्विवचन, तीन या अधिक के लिए बहुवचन।

(११३) वर्ग—व्यंजनों के कुछ विभागों को वर्ग कहते हैं। जैसे—कवर्ग—क से ड तक, चवर्ग—च से ज तक, टवर्ग—ट से ण तक, तवर्ग—त से न तक, पवर्ग—प से म तक।

(११४) वर्ण—अक्षरों को वर्ण भी कहते हैं। स्वर और व्यंजन ये सभी वर्ण हैं।

(११५) वाक्य—सार्थक पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

(११६) वाच्य—संस्कृत में ३ वाच्य (अर्थ) होते हैं—१. कर्तृवाच्य, २. कर्मवाच्य, ३. भाववाच्य। सकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में रूप चलते हैं तथा अकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और भाववाच्य में। कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, कर्मवाच्य में कर्म और भाववाच्य में क्रिया। सकर्मक से भी भाव में घञ् होता है।

(११७) वार्तिक—कात्यायन और पतंजलि के द्वारा बनाए गए नियमों को वार्तिक कहते हैं।

(११८) विकल्प—ऐच्छिक (लगाना या न लगाना) नियम को विकल्प कहते हैं।

(११९) विभक्ति—(विभक्तिश्च, १।४।१०४) सु औ आदि कारक-चिह्नों को विभक्ति या कारक कहते हैं। संबोधन-सहित ८ विभक्तियाँ हैं—प्रथमा, द्वितीया आदि।

(१२०) विभाषा—(न वेति विभाषा, १।१।४४) किसी नियम के विकल्प से लगने को विभाषा कहते हैं। इसी अर्थ में वा, अन्यतरस्याम्, बहुलम् शब्द आते हैं।

(१२१) विवार—वर्णों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ), विसर्ग, श ष स, ये विवार वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२२) विवृत—(विवृतमूष्मणां स्वराणां च) स्वरों और ऊष्मों (श ष स ह) का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२३) विशेषण—विशेष्य (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बतानेवाले गुण या द्रव्य के बोधक शब्दों को विशेषण कहते हैं। विशेषण को भेदक भी कहते हैं।

(१२४) विशेष्य—जिस (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताई जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं। विशेष्य को भेद्य भी कहते हैं।

(१२५) वीप्सा—द्विरुचि अर्थात् दो बार पढ़ने को वीप्सा कहते हैं। जैसे—स्मृत्वा स्मृत्वा, स्मारं स्मारम्।

(१२६) वृत्ति—(१) सूत्रों की व्याख्या को वृत्ति कहते हैं। (२) (परार्थाभिधानं वृत्तिः) कृत्, तद्धित, समास, एकशेष, सन् आदि से युक्त धातुरूपों को वृत्ति कहते हैं।

(१२७) वृद्धि—(वृद्धिगदैच्, १।१।१) आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं। वृद्धि कहने पर इ ई को ऐ होगा, उ ऊ को औ, ऋ ॠ को आरु, ए को ऐ और ओ को औ।

(१२८) व्यंजन—क से लेकर ह तक के वर्णों को व्यंजन या हल् कहते हैं।

(१२९) व्यधिकरण—एक से अधिक आधार या शब्दादि में होनेवाले कार्य को व्यधिकरण कहते हैं। वि = विभिन्न, अधिकरण = आधार। एक आधारवाला समानाधिकरण होता है, अनेक आधारवाला व्यधिकरण।

(१३०) शब्द—सार्थक वर्ण या वर्णसमूह को शब्द या प्रातिपदिक कहते हैं।

(१३१) शिक्षा—वर्णों के उच्चारण आदि की शिक्षा देनेवाले ग्रन्थों को शिक्षा कहते हैं। जैसे—पाणिनीयशिक्षा आदि ग्रन्थ। वैदिक शिक्षा और व्याकरण के ग्रन्थों को प्रातिशाख्य कहते हैं।

(१३२) श्लु—प्रत्यय के लोप का ही एक नाम श्लु है। जुहोत्यादि० में श्लु होने पर गुण होता है।

(१३३) श्वास—वर्णों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख, च छ, त थ, प फ), विसर्ग, श ष स, ये श्वास वर्ण हैं। इनके उच्चारण में श्वास बिना रगड़ खाए बाहर आता है।

(१३४) षट्—(ष्णान्ताः षट्, १।१।२४) ष और न् अन्तवाली संख्याओं को षट् कहते हैं।

(१३५) संज्ञा—व्यक्ति या वस्तु आदि के नाम को संज्ञा-शब्द कहते हैं।

(१३६) संयोग—(हलोऽनन्तराः संयोगः, १।१।७) व्यंजनों के बीच में स्वर वर्ण न हों तो उन्हें संयुक्त अक्षर कहते हैं। जैसे—सम्बद्ध में म् और ब, द और ध।

(१३७) संवार—स्वर और हश् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण, ह य व र ल) संवार वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख-द्वार कुछ संकुचित (सिकुड़ा) रहता है।

(१३८) संवृत—ह्रस्व अ बोलचाल में संवृत (मुख-द्वार संकुचित) होता है।

(१३९) संहिता—(परः संनिकर्षः संहिता, १।४।१०९) वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं। संहिता की अवस्था में सभी सन्धि-नियम लगते हैं। एक पद में, धातु और उपसर्ग में, समासयुक्त पद में संहिता अवश्य होगी। वाक्य में संहिता ऐच्छिक है।

(१४०) सकर्मक—जिन धातुओं के साथ कर्म आता है, उन्हें सकर्मक धातु कहते हैं।

(१४१) सत्—(तौ सत्, ३।२।१२७) शतृ और शानच् प्रत्ययों को सत् कहते हैं।

(१४२) सन्—(धातोः कर्मणः०, ३।१।७) इच्छा अर्थ में धातु से सन् प्रत्यय होता है। कृ > चिकीर्षति।

(१४३) सन्धि—स्वरो, व्यंजनों या विसर्ग के परस्पर मिलाने को सन्धि कहते हैं।

(१४४) समानाधिकरण—एक आधारवाले को समानाधिकरण कहते हैं।

(१४५) समास—समास का अर्थ है संक्षेप। दो या अधिक शब्दों को मिलाने या जोड़ने को समास कहते हैं। समास होने पर शब्दों के बीच की विभक्ति हट जाती है। समासयुक्त

शब्द को समस्त पद कहते हैं। समस्त शब्द एक शब्द होता है। समास के ६ भेद हैं—१. अव्ययीभाव, २. तत्पुरुष, ३. कर्मधारय, ४. द्विगु, ५. बहुव्रीहि, ६. द्वन्द्व।

(१४६) **समासान्त**—समासयुक्त शब्द के अन्त में होनेवाले कार्यों को समासान्त कहते हैं।

(१४७) **समाहार**—समाहार का अर्थ है समूह। समाहार द्वन्द्व में प्रायः नपुं० एकवचन होता है। कभी स्त्रीलिंग भी होता है।

(१४८) **सम्प्रसारण**—(इग्यणः सम्प्रसारणम्, १।१।४५) य् को इ, व् को उ, र् को ऋ, ल् को लृ हो जाने को सम्प्रसारण कहते हैं। सम्प्रसारण कहने पर ये कार्य होंगे।

(१४९) **सर्वनाम**—(सर्वादीनि सर्वनामानि, १।१।२७) सर्व, यत्, तत्, किम्, युष्मद्, अस्मद् आदि शब्दों को सर्वनाम कहते हैं। इनका सम्बोधन नहीं होता।

(१५०) **सर्वनामस्थान**—(सुडनपुंसकस्य, १।१।४३) प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के पहले पाँच सुप् (कारकचिह्न, स् औ अः, अम् औ) को सर्वनामस्थान कहते हैं, नपुं० में नहीं।

(१५१) **सवर्ण**—(तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्, १।१।९) जिन वर्णों का स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न मिलता है, उन्हें सवर्ण कहते हैं। जैसे—इ चवर्ग य श तालव्य और स्पृष्ट हैं, अतः सवर्ण हैं।

(१५२) **सार्वधातुक**—(तिङ् शित्सार्वधातुकम्, ३।४।११३) धातु के बाद जुड़ने-वाले तिङ् (ति तः आदि) और शित् प्रत्यय (श् इत् वाले, शतृ आदि) सार्वधातुक कहलाते हैं। शेष आर्धधातुक होते हैं।

(१५३) **सुप्**—(स्वौजसः सुप्, ४।१।२) शब्दों के अन्त में लगनेवाले प्रथमा से सप्तमी तक के कारक-चिह्न (स् औ अः आदि) सुप् कहलाते हैं।

(१५४) **सुबन्त**—सुप् (स् औ आदि) जिन शब्दों के अन्त में होते हैं, उन्हें सुबन्त कहते हैं। रामः, कृष्णः।

(१५५) **सूत्र**—शब्दों के संस्कारक नियमों को सूत्र कहते हैं। इनके बाद निर्दिष्ट संख्याओं का क्रमशः भाव यह है—१. अध्याय-संख्या, २. पाद-संख्या, ३. सूत्र-संख्या।

(१५६) **सेट्**—जिन धातुओं के बीच में प्रत्यय से पहले इ लगता है, उन्हें सेट् (इट्-वाली) कहते हैं। जैसे—पठ्, लिख्।

(१५७) **स्त्रीप्रत्यय**—स्त्रीलिंग के बोधक टाप् (आ), डीप् (ई) आदि स्त्रीप्रत्यय कहलाते हैं।

(१५८) **स्त्रीलिंग**—यह तीन लिंगों में से एक लिंग है। स्वीत्व का बोध कराता है। जैसे—स्त्री, नदी।

(१५९) **स्थान**—(अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) उच्चारण-स्थान कण्ठ तालु आदि का संक्षिप्त नाम स्थान है। जैसे—अ कवर्ग ह और विसर्ग का स्थान कण्ठ है।

(१६०) **स्पर्श**—(कादयो मावसानाः स्पर्शाः) क से लेकर म तक (कवर्ग से पवर्ग तक) के वर्णों को स्पर्श वर्ण कहते हैं। इनके उच्चारण में जीभ कण्ठ तालु आदि को स्पर्श करती है।

(१६१) **स्वर**—(अचः स्वराः) अचों (अ आ, ई इ, उ ऊ, ऋ ॠ, लृ, ए ऐ, ओ औ) को स्वर कहते हैं।

(१६२) **स्वरित**—(समाहारः स्वरितः, १।२।३१) उदात्त और अनुदात्त के मध्यगत स्थान से उत्पन्न स्वर को स्वरित कहते हैं। यह मध्यगत स्थान से बोला जाता है। (उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः, ८।४।६६) वेद में उदात्त स्वर के बादवाला अनुदात्त स्वरित हो जाता है। साधारण नियम यह है कि उदात्त से पहले अनुदात्त अवश्य रहेगा, अन्यत्र उदात्त के बाद अनुदात्त स्वरित होगा।

(१६३) **हल्**—क से ह तक के वर्णों को हल् कहते हैं। इन्हें व्यंजन भी कहते हैं।

(१६४) **हलन्त**—हल् अर्थात् व्यंजन जिनके अन्त में होते हैं, ऐसे शब्दों या धातुओं आदि को हलन्त कहते हैं।

(१६५) **ह्रस्व**—(ह्रस्वं लघु, १।४।१०) अ इ उ ऋ लृ को ह्रस्व कहते हैं।

(१४) हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष

आवश्यक-निर्देश

(१) इस पुस्तक में प्रयुक्त शब्दों का ही इस शब्दकोश में संग्रह है।

(२) जो शब्द रामः, रमा, गृहम् के तुल्य हैं, उनके रूप राम आदि के तुल्य चलावें। : (विसर्ग) से पुं०, आ से स्त्री०, अम् से नपुं० समझें। शेष शब्दों के आगे पुं० आदि का निर्देश किया गया है। उनके रूप 'शब्दरूप-संग्रह' में दिए तत्सदृश शब्दों के तुल्य चलावें। संक्षेप के लिए ये संकेत अपनाए गए हैं—पुं०=पुंलिंग, स्त्री०=स्त्रीलिंग, न०=नपुंसक लिंग।

(३) धातुओं के आगे संकेत किया गया है कि वे किस गण की हैं और उनका किस पद में प्रयोग होता है। धातुओं के रूप चलाने के लिए 'धातुरूप-संग्रह' में दी गयी प्रत्येक गण की विशेषताओं को देखें तथा उस गण की विशिष्ट धातु को देखें। तदनुसार रूप चलावें। 'धातुरूप-कोश' में सभी धातुओं के १० लकारों के रूप दिये हैं। धातुएँ अकारादिक्रम से दी गयी हैं। उसी प्रकार रूप चलावें। संक्षेप के लिए ये संकेत अपनाए गए हैं—१ = भ्वादिगण। २ = अदादिगण। ३ = जुहोत्यादिगण। ४ = दिवादिगण। ५ = स्वादिगण। ६ = तुदादिगण। ७ = रुधादिगण। ८ = तनादिगण। ९ = कृयादिगण। १० = चुरादिगण। प० = परस्मैपद, आ० = आत्मनेपद, उ० = उभयपद।

(४) अव्ययों के रूप नहीं चलते हैं। उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। अ०= अव्यय।

(५) विशेषणों के रूप तीनों लिंगों में चलते हैं। जो विशेष्य का लिंग होगा, वही विशेषण का लिंग होगा। वि०=विशेषण।

(६) जहाँ एक शब्द के लिए एक से अधिक शब्द दिए हैं, वहाँ कोई-सा एक शब्द चुन लें।

अ

अंगीठी—हसन्ती (स्त्री०)
 अँगूठी—अङ्गुलीयकम्
 अँगूठी, नामांकित—मुद्रिका
 अंगूर—द्राक्षा, मृद्वीका
 अंजीर—अञ्जीरम्
 अखरोट—अक्षोटम्
 अग्नि—कृशानुः (पुं०), जातवेदस् (पुं०)
 अचार—सन्धितम्
 अच्छा लगना—रुच् (१ आ०), स्वद् (१ आ०)
 अच्छा है—न कि—वरं—न (अ०)
 अटारी—अट्टः
 अण्डर-वीयर (जाँघिया)—अर्धोरुकम्
 अतिथि—प्राघुणः, अतिथिः, अभ्यागतः
 अतिथि-सत्कर्ता—आतिथेयः
 अदरक—आद्रकम्
 अदल-बदल—विनिमयः
 अधिकार होना—प्र+भू (१ प०)
 अधीन—आयतः (वि०)
 अध्यापक—अध्यापकः, उपाध्यायः
 अनर्थ—अब्रहण्यम्
 अनार—दाडिमम्
 अनुभव करना—अनु + भू (१ प०)
 अनुसन्धान करना—अनु + सं + धा (३ उ०)
 अन्दर—अन्तः (अ०), अन्तरे (अ०)
 अन्न—अन्नम्
 अन्न, खेत में—शस्यम्
 अपनाना—स्वी + कृ (८ उ०)
 अपमान करना—अव + ज्ञा (९ उ०)
 अप्राप्ति—अनुपलब्धिः (स्त्री०)
 अफवाह—लोकापवादः, वार्ता
 अभिनय करना—अभि + नी (१ उ०)
 अभक—अभ्रकम्
 अमचूर—आम्रचूर्णम्
 अमरूद—आम्रलम्, दृढबीजम्, अमृतफलम्
 अमावट—आम्रातकम्
 अमावस्या—दर्शः, अमावास्या

अमृत—पीयूषम्, सुधा
 अरहर (दाल)—आढकी (स्त्री०)
 अर्गला—अर्गलम्
 अलग होना—वि + युज् (४ आ०)
 अलमारी—काष्ठमञ्जूषा, लौहमञ्जूषा
 अवश्य—ननु, नूनम्, न (अ०)
 असमर्थ—अक्षमः (वि०)
 असेम्बली हॉल—आस्थानम्

आ

आँख—चक्षुस् (न०), नेत्रम्, लोचनम्
 आँगन—अजिरम्, अङ्गनम्, प्राङ्गणम्
 आँत—अन्त्रम्
 आँधी—प्रवातः
 आँवड़ा—आम्रातकम्
 आँवला—आमलकी (स्त्री०)
 आँसू—अश्रु (न०), अस्त्रम्
 आक—अर्कः
 आकाश—व्योमन् (न०), त्रियत् (न०)
 आग—हुतवहः, कृशानुः (पुं०), वह्निः
 आगन्तुक—आगतुः (पुं०), आगन्तुकः
 आगे—अग्रे (अ०), ततः (अ०)
 आग्रह—निर्बन्धः
 आजकल—अद्यत्वे (अ०)
 आज्ञा—शासनम्, नियोगः, आदेशः
 आज्ञा देना—अनु+ज्ञा (९ उ०)
 आटा—चूर्णम्
 आटे का हलुवा—यवागूः (स्त्री०)
 आड़ू—आर्द्रालुः (पुं०)
 आढ़त—अभिकरणम्
 आढ़ती—अभिकर्तृ (पुं०)
 आदर पाना—आ+दृ (६ आ०)
 आधी रात—निशीथः
 आना—आगम् (१ प०), अभ्यागम् (१ प०)
 आ+या (२ प०)
 आ पड़ना—आ+पत् (१ प०)
 आपत्तिग्रस्त—आपन्नः (वि०)
 आबनूस—तमालः
 आभूषण—आभरणम्, आभूषणम्
 आम का वृक्ष—रसालः, सहकारः, आम्रः
 आम का फल—आम्रम्

आम, कलमी—राजाम्रम्
 आमदनी—आयः, आयमध्ये (सप्तमी)
 आम रास्ता—जनमार्गः, जनपथः
 आयरन (लोहा)—अयस् (न०)
 आयात पर चुंगी—आयातशुल्कम्
 आयु—आयुष् (न०), वयस् (न०)
 आराम कुर्सी—सुखासन्दिका
 आरी—करपत्रम्
 आलस्य करना—तन्द्रय (णिच्)
 आलू—आलुः (पुं०)
 आलू की टिकिया—पक्कालुः (पुं०)
 आलू बुखारा—आलुकम्
 आशंका करना—आशङ्क (१ आ०)
 आशा करना—आशंस (१ आ०)

इ

इकट्टा करना—संचि (५ उ०), अर्ज (१० उ०)
 इच्छुक—स्मृहयालुः (वि०), इच्छुकः
 इत्र—गन्धतैलम्
 इंक पेन्सिल, डॉट पेन—मसितूलिका
 इन्कम टैक्स—आयकरः
 इन्द्र—शतक्रतुः (पुं०), मधवन् (पुं०), वृत्रहन् (पुं०)
 इन्द्र-धनुष—इन्द्रायुधम्, इन्द्रधनुः (न०)
 इन्द्राणी—पौलोमी (स्त्री०), शची (स्त्री०)
 इन्धन—इन्धनम्
 इन्फ्लुएन्ज़ा, पलु—शीतज्वरः
 इमरती—अमृती (स्त्री०)
 इमली—तिन्तिडीकम्
 इम्पोर्ट—आयातः
 इलायची—एला
 इसलिए—अतः, अतएव, ततः (अ०)

ई

ईट—इष्टका
 ईट, पक्की—पक्केष्टका

उ

उगलना—उद्+गृ (६ प०)
 उगला हुआ—उद्घातम् (वि०)
 उग्र—तीक्ष्णम्
 उचित-अनुचित—सदसत् (न०)

उचित है—स्थाने (अ०)

उठना—उत्था (१ प०), उच्चर (१ प०), उत्+नम्
 (१ प०)

उठाना—उत्थी (उद्+नी, १ उ०)

उड़द—माधः

उड़ना—उत्पत् (१ प०), उद्गम् (१ प०)

उतरना—अव+तृ (१ प०)

उतार—अवरोहः

उत्कंठित—उत्कः, उत्कण्ठितः

उत्तर, दिशा—उदीची (स्त्री०)

उत्तर की ओर—उदक् (उद्+अञ्च) (पुं०)

उत्तरायण—उत्तरायणम्

उत्तीर्ण होना—उत्तृ (उद्+तृ, १ प०)

उत्थान-पतन—पातोत्पातः

उत्पन्न होना—सं+भू (१ प०)

उधार—ऋणम्, ऋणरूपेण (तृतीया)

उधार खाते—नाम्नि (नामन्, स०)

उपजाऊ—उर्वरा

उपभोग करना—उप+भुज् (७ आ०)

उपयोग—विनियोगः, उपयोगः

उपवास करना—उप+वस् (१ प०)

उपेक्षा करना—उपेक्ष् (उप+ईक्ष्, १ आ०)

उबटन—उद्धर्तनम्

उबालना—ऊर्ध्व (१ प०)

उल्लंघन करना—उच्चर (१ आ०),

लङ्घ (१० उ०), अति+वृत् (१ आ०)

उल्लू—कौशिकः, उलूकः

उस्तरा—क्षुम्

ऊ

ऊँचा—प्रांशुः (वि०)

ऊँट—क्रमेलकः, उष्ट्रः

ऊखल—उलूखलम्

ऊनी—राङ्गवम्

ऊपर फेंकना—उत्+क्षिप् (६ उ०)

ऊसर—ऊषरः

ए

एक-एक करके—एकैकशः (अ०)

एक ओर से—एकतः (अ०)

एक प्रकार से—एकधा (अ०)
 एक बात—एकवाक्यम्
 एक रायवाले—एकमतिः (स्त्री०)
 एक वेष—एकपरिधानम्
 एकान्त में—रहसि (रहस्य, स०)
 एक्सपोर्ट—निर्यातः
 एजुकेशन सेक्रेटरी—शिक्षासचिवः
 एजेण्ट—अभिकर्ता (-कर्तृ, पुं०)
 एजेन्सी—अधिकरणम्
 एटम बम—परमाण्वस्त्रम्
 एडिशनल डाइरेक्टर—अतिरिक्त-शिक्षासंचालकः
 एरंड—एरण्डः

ओ

ओढ़नी—प्रच्छदपटः
 ओवरकोट—बृहत्तिका
 ओम्—उद्गीथः, प्रणवः, ओंकारः
 ओले—करकाः

क

कंगन—कङ्कणम्
 कंघी—प्रसाधनी (स्त्री०)
 कंठा—कंठाभरणम्
 कंडाल—वारिधिः (पुं०)
 कंधा—स्कन्धः
 कंधे की हड्डी—जत्रु (न०)
 ककड़ी—कर्कटिका, कर्कटी (स्त्री०)
 कक्षा का साथी—सतीर्थः
 कचालू—पक्वालुः (पुं०)
 कचौड़ी—पिष्टिका
 कछुआ—कच्छपः
 कटहल का पेड़—पनसः
 कटहल का फल—पनसम्
 कटा हुआ—लूनम् (वि०)
 कटोरा—कटोरम्
 कटोरी—कटोरा
 कठफोड़ा—दार्वाघातः
 कड़ा, सोने आदि का—कटकः
 कड़ाह—कटाहः
 कड़ाही—स्वदेनी (स्त्री०)

कदम्ब—नीपः
 कदद्—कूष्माण्डः
 कनफूल—कर्णपूरः
 कनेर—कर्णिकारः
 कप—चपकः
 कबाबी—मांसाशिन (पुं०)
 कबूतर—पारावतः, कपोतः
 कब्ज—अजीर्णः
 कमर—श्रोणिः (स्त्री०), कटिः (स्त्री०)
 कमरख—कर्मरक्षम्
 कमरा—कक्षः
 कमल, नीला—इन्दीवरम्, कुवलयम्
 कमल, लाल—कोकनदम्
 कमल, श्वेत—कुमुदम्, पुण्डरीकम्, कहारम्
 कमीशन—शुल्कम्
 कमीशन एजेण्ट—शुल्काजीवः
 कम्बल—कम्बलः, कम्बलम्
 करधन—मेखला
 करना—विधा (३ उ०), चर् (१ प०),
 अनु+ष्ठा (१ प०)
 करील—करीलः
 करेला—कारवेल्लः
 करौंदा—कर्मदकः
 कर्जा—ऋणम्
 कर्जा देनेवाला—उत्तमर्णः
 कर्जा लेनेवाला—अधमर्णः
 कलई, पुताई की—सुधा
 कलफ करना—मण्डा+कृ (८ उ०)
 कलम—कलमः
 कलमी आम—राजाग्रम्
 कलश—कलशः
 कलाई—मणिबन्धः
 कलाई से कानी अँगुली तक—करभः
 कलाकन्द—कलाकन्दः
 कली—कलिका
 कल्याण का इच्छुक—कल्याणाभिनवेशिन् (वि०)
 कवच—वर्मन् (न०)
 कष्ट करना—आयासः

कसकूट—कांस्यकूटः

कस्बा—नगरी (स्त्री०)

कहना—अभिधा (३ उ०), भाष् (१ आ०),
उद्+गृ (६ प०), उद्+ईर् (१० उ०)

कहाँ—क, कुत्र (अ०)

काँच—काचः

काँच का गिलास—काचकंसः

काँपना—कम्प (१ आ०), वेप् (१ आ०)

काँसा—कांस्यम्

कागज—कागदः

कागज की रीम—कागदरीमकः

काजल—कज्जलम्

काजू—काजवम्

काटना—कृत् (६ प०), छिद् (७ उ०),
लू (९ उ०)

कान—श्रोत्रम्, श्रवणम्, कर्णः

कान की बाली—कुण्डलम्

कानखजूरा—कर्णजलौका

कापी—संचिका

काफल—श्रीपर्णिका

काँफी—कफघ्नी (स्त्री०)

काम—कर्मन् (न०), कार्यम्

काम आना—उप+युज् (४ आ०)

कामदेव—पुष्पधन्वन् (पुं०), मनसिजः

कार्टून—उपहासचित्रम्

कार्तिकेय—सेनानीः (पुं०)

कार्पोरेशन—निगमः

कालेज—महाविद्यालयः

कितने—कति (वि०)

किनारा—वेला

किरण—मयूखः, गभस्तिः (पुं०), दीधितिः (स्त्री०)

किवाड़—कपाटम्

किवाड़ के पीछे का डंडा—अर्गलम्

किशमिश—शुष्कद्राक्षा

किसान—कृषीवलः, कीनाशः, कृषकः

कील—कीलः

कीचड़—पङ्कः, कर्दमः

कुँदरु—कुन्दरुः (पुं०)

कुटिया—कुटी (स्त्री०), कुटीरः

कुतिया—सरमा, शुनी (स्त्री०)

कुत्ता—श्वन् (पुं०), कौलेयकः सारमेयः

कुदाल—खनित्रम्

कुन्द—कुन्दम्

कुप्पी—कुतूः (स्त्री०)

कुबड़ा—कुब्जः

कुबेर—कुबेरः, मनुष्यधर्मन् (पुं०)

कुमुद की लता—कुमुदिनी (स्त्री०)

कुम्हार—कुलालः, कम्भकारः

कुर्ता—कञ्चुकः

कुर्सी—आसन्दिका

कुलपरम्परा—कुलक्रमम्

कुलफी—कुलपी (स्त्री०)

कुली—भारवाहः

कुलीन—अभिजनः, कुलीनः

कूटना—अवहननम्, ताडनम्

कूड़ा—अवकरः

कूदना—कूर्द (१ आ०)

कृपाण—कौक्षेयकः

केकड़ा—कुलीरः

केतली—कन्दुः (पुं०, स्त्री०)

केबिनेट—मन्त्रिपरिषद् (स्त्री०)

केन्सर—विद्रधिः (पुं०), विषव्रणम्

केला—कदलीफलम्

केवड़ा—केतकी (स्त्री०)

कैंची—कर्तरी (स्त्री०)

कै—वमथुः (पुं०)

कौपल—किसलयम्

कोट—प्रावारः

कोठरी—लघुकक्षः

कोतवाल—कोटपालः

कोतवाली—कोटपालिका

कोमल स्वर—मन्द्रस्वरः

कोयल—परभृतः, कोकिलः

कोल्हू—रसयन्त्रम्

कोहनी—कफोणिः (स्त्री०)

कौवा—ध्वाङ्क्षः, वायसः, काकः

क्या—किम्, किन्, ननु (अ०)

क्या लाभ—किम्, को लाभः किं प्रयोजनम्

क्योंकि—यतो हि, खलु (अ०)
 क्रीडा करना—क्रीड् (१ प०), रम् (१ आ०)
 क्रीम—शरः
 क्रोध करना—क्रुध् (४ प०), कुप् (४ प०)
 क्रोधी—अमर्षणः
 क्लर्क—करणिकः, लिपिकारः
 क्षत्रिय—क्षत्रियः, द्विजातिः, द्विजन्मन् (पुं०)
 क्षमा करना—मृप् (१० उ०), क्षम् (पुं०)
 (१ आ०, ४ प०)

ख

खंजन—खञ्जनः
 खजूर—खर्जूरम्
 खड्ग—खड्गः, निस्त्रिशः
 खपड़ा—खर्परः
 खपड़ैल का—खर्परावृतम् (वि०)
 खम्बा—स्तम्भः
 खरबूजा—खर्बुजम्
 खरीद—क्रयः
 खरीदना—पण् (१ आ०), क्री (१ उ०)
 खर्च करना—विनियोगः, व्ययः
 खलिहान—खलम्
 खस्ता पूरी—शक्कुली (स्त्री०)
 खाँसी—कासः
 खाजा—मधुशोर्षः
 खाद—खाद्यम्
 खान—खनिः (स्त्री०)
 खाना—भक्ष् (१० उ०), खाद् (१ प०),
 भुज् (७ आ०)
 खाया हुआ—जग्धम्, भुक्तम्
 खिचड़ी—कृशरः
 खिड़की—गवाक्षः, वातायनम्
 खिन्न होना—सद् (१ प०)
 खिरनी—क्षीरिका
 खींचना—कृष् (१ प०)
 खीर—पायसम्
 खील—लाजाः (लाज, बहु०)
 खुमानी—क्षुमानी (स्त्री०)

खूँटी—नागदन्तकः
 खून—रुधिरम्, असृज् (न०)
 खेत—क्षेत्रम्
 खेतो—कृषिः (स्त्री०)
 खेती के औजार—कृषियन्त्रम्
 खेल का मैदान—क्रीडाक्षेत्रम्
 खैर—खदिरः
 खोजना—गवेष् (१० उ०)
 खोदना—टड्क् (१० उ०), खन् (१ उ०)
 खोवा—किलाटः

ग

गँडासा—तोमरः
 गगरा—गर्गरः
 गगरी—गर्गरी (स्त्री०)
 गजक—गजकः
 गझा—खल्वाटः
 गडरिया—अजाजीवः
 गदा—गदा
 गद्दा—तूलसंस्तरः
 गधा—खरः, गर्दभः
 गन्धक—गन्धकः
 गम बूट—अनुपदीना
 गरजना—स्तनितम्, गर्जनम्
 गर्दन—ग्रीवा, कण्ठः
 गर्मी (सूजाक)—उपदर्शः
 गला—कण्ठः, ग्रीवा
 गल्ली—वीथिः
 गवेषणा करना—गवेष् (१० उ०)
 गाँव—ग्रामः
 गाजर—गुञ्जनम्
 गाय—गौः (स्त्री०), धेनुः (स्त्री०)
 गाल—कपोलः
 गाहक—ग्राहकः
 गिद्ध—गृध्रः
 गिनना—गण् (१० उ०)
 गिना हुआ—संख्यातम् (वि०)
 गिरना—पत् (१ प०), निपत् (१ प०),
 भ्रंश् (१ आ०)
 गिरहकट—ग्रन्थिभेदकः

गिलास—कंसः, काचकंसः
 गिलोय—अमृतवल्लरी (स्त्री०)
 गीदड़—गोमायुः (पुं०)
 गुझिया—संयावः
 गुणगान करना—कृत् (१० उ०)
 गुप्त—निभृतम् (वि०), गुप्तम्
 गुप्ती (कटारी)—करवालिका
 गुफा—गह्वरम्, गुहा
 गुलदस्ता—स्तवकः, पुष्पगुच्छः
 गुलाब—स्थलपद्मम्
 गुस्सा करना—क्रुध् (४ प०), कुप् (४ प०)
 गूगल—गुगुलः
 गूलर—उदुम्बरम्
 गेंद—कन्दुकः, गेन्दुकम्
 गेंदा—गन्धपुष्पम्
 गेलरी—वीथिका
 गेहूँ—गोधूमः
 गोबर—गोमयम्
 गोभी—गोजिह्वा
 गोली—गोलिका, गुलिका
 गोह—गोधा
 ग्रीष्म ऋतु—निदाघः, ग्रीष्मर्तुः (पुं०)
 ग्लेशियर—हिमसरित् (स्त्री०), हिमानी (स्त्री०)

घ

घंटा (समय)—होरा
 घटना (होना)—घट् (१ आ०)
 घटना (कम होना)—अप+चि (५ उ०)
 घटिया—अनु (अ०), उप (अ०)
 घड़ा—घटः, कुम्भः
 घड़ी—घटिका
 घर—सदनम्, गृहम्, भवनम्
 घरेलू फनीचर—गृहोपस्करः
 घाटी—अद्रिद्रोणी (स्त्री०)
 घायल—आहतः (वि०)
 घी—आज्यम्, सर्पिष् (न०)
 घुँघरू—किंकिणी (स्त्री०)
 घुघनी (आलू-मटर)—कुल्माषः
 घुटना—जानुः (पुं०, न०)
 घुड़सवार—सादिन् (पुं०), अश्वारोहिन् (पुं०)

घूँघट काढ़ना—अवगुण्ठय (णिच्)
 घूमना—भ्रम् (४ प०), चर् (१ प०), संचर्
 (१ प०)
 घेरा—वृत्तिः (स्त्री०)
 घेवर (मिठाई)—घृतपूरः
 घोंसला—कुलायः
 घोड़ा—अश्वः, सप्तिः (पुं०), रथ्यः, वाजिन् (पुं०),
 हयः
 घोषणा करना—घुष् (१० उ०)

च

चकवा—चक्रवाकः
 चकोतरा (फल)—मधुकर्कटी (स्त्री०)
 चक्कर खाना—परिवृत् (१ आ०)
 चचेरा भाई—पितृव्यपुत्रः
 चटकनी—कीलः
 चटनी—अवलेहः
 चट्टान—शिला
 चढ़ाव—आरोहः
 चतुःशाला—चतुःशालम्
 चतुर—विदग्धः (वि०), दक्षः
 चना—चणकः
 चन्द्रमा—सुधांशु (पुं०), विधुः (पुं०), सोमः
 चपत—चपेटः
 चपरासी—लेखहारकः, प्रेष्यः
 चप्पल—पादुका, पादुः (स्त्री०)
 चबूतरा—स्थण्डिलम्, चत्वरम्
 चबूतरा, घर से बाहर का—अलिन्दः
 चमकना—भास् (१ आ०), द्युत् (१ आ०), दिव्
 (४ प०)
 चमचम (मिठाई)—चमनम्
 चमचा—दर्वी (स्त्री०)
 चमार—चर्मकारः
 चमेली—मालती (स्त्री०)
 चम्पा—चम्पकः
 चम्पच—चमसः
 चरना—चर् (१ प०)
 चर्बी—वसा

चर्बी, हड्डी की—मज्जा
 चलना—चल् (१ प०), प्र+वृत् (१ आ०), प्र+स्था
 (१ आ०)
 चलाना—संचालय (णिच्)
 चाँदनी—कौमुदी (स्त्री०), ज्योत्स्ना
 चाँक, लिखने की—कठिनी (स्त्री०)
 चाकू—छुरिका, लवित्रम्
 चाचा—पितृव्यः
 चाची—पितृव्या
 चाट—अवदंशः
 चातक—चातकः
 चादर—प्रच्छदः
 चान्सलर—कुलपतिः (पुं०)
 चापलूसी—स्नेहभणितम्
 चाबुक—तोत्रम्
 चाय—चायम्
 चारों ओर मुड़नेवाली कुर्सी—पर्यः
 चारों वर्ण—चातुर्वर्ण्यम्
 चावल—व्रीहिः (पुं०)
 चावल, भूसी—रहित—तण्डुलः
 चाहना—ईह (१ आ०), वाञ्छ (१ प०), काङ्क्ष
 (१ प०)
 चिड़िया—पत्रिन् (पुं०), चटका
 चित्त—चेतस् (न०), चित्तम्, स्वान्तम्
 चित्रकार—चित्रकारः
 चिमटा—संदंशः
 चिरचिटा (ओषधि)—अपामार्गः
 चिरौजी—प्रियालम्
 चिलमची—हस्तधावनी (स्त्री०) पतद्ग्रहा
 चिह्न—अङ्कः, लक्ष्मन् (न०)
 चीड़ (वृक्ष)—भद्रदारुः (पुं०), सरलः
 चीनी—सिता
 चीफ मिनिस्टर—मुख्यमन्त्रिन् (पुं०)
 चीरना—छिद् (७ उ०)
 चील—चिल्लः
 चुड़ी—शुल्कः, शुल्कशाला
 चुड़ी का अध्यक्ष—शौल्किकः
 चुगना—चि (५ उ०)
 चुगलखोर—द्विजिह्वः

चुनना—चि (५ उ०), अव+चि (५ उ०)
 चुन्नी (ओढ़नी)—प्रच्छदपटः
 चुन्नी (रत्न)—माणिक्यम्
 चुप (चुप्पी)—जोषम् (अ०)
 चुगना—मुष् (९ प०), चुर (१० उ०)
 चुँकि—ननु (अ०), यतोहि (अ०)
 चूड़ी—काचवलयम्
 चूल्हा—चुल्लिः (स्त्री०), चुल्ली (स्त्री०)
 चेचक—शीतला
 चेष्टा करना—चेष्ट (१ आ०)
 चोंच—चञ्चुः (स्त्री०), चञ्चूः (स्त्री०)
 चोट—क्षतम्
 चोट मारना—तड् (१० उ०)
 चोटी—शिखा, सानुः (पुं०, न०), शृङ्गम्
 चोर—तस्करः, चौरः, स्तेनः, पाटच्चरः
 चौक—चतुष्पथः, शृङ्गाटकम्
 चौकत्रा—प्रत्युत्पन्नमतिः (वि०)
 चौमजिला—चतुर्भूमिकः
 चौगाहा—चतुष्पथः, शृङ्गाटकम्

छ

छज्जा—वलभिः (स्त्री०), वलभी (स्त्री०)
 छत—छदिः (स्त्री०)
 छाता (छत्र)—आतपत्रम्
 छाती—वक्षस् (न०), उरस् (न०)
 छात्र—छात्रः, अध्येतृ (पुं०), विद्यार्थिन् (पुं०)
 छात्रा—अध्येत्री (स्त्री०), छात्रा
 छानना—सावय (णिच्)
 छिपकली—गृहगोधिका
 छिप जाना—तिरो+भू (१ प०)
 छिपना—ली (४ आ०), नि+ली (४ आ०),
 अन्तर्+धा (३ उ०)
 छीलना—शो (४ प०), त्वक्ष् (१ प०)
 छीला हुआ—त्वष्टम् (वि०)
 छुड़ी—विसृष्टिः (स्त्री०), अवकाशः
 छुहारा—क्षुधाहरम्
 छेद करना—छिद् (१० उ०)
 छेनी—वृश्चनः
 छोटा भाई—अनुजः

छोड़ना—त्यज् (१ प०), मुच् (६ उ०), हा
(३ प०), अस् (४ प०), अप+अस्
(४ प०), उज्झ् (६ प०)

छोड़ा हुआ—प्रत्याख्यातः, परित्यक्तः (वि०)

ज

जंगली चावल—श्यामाकः (सावाँ)

जंघा—ऊरुः (पुं०)

जंजीर—शृङ्खला

जंवाई—जामातृ (पुं०)

जड़—मूलम्

जड़ से—मूलतः

जन्म लेना—प्रादुरभू (१ प०)

जबतक—तबतक—यावत्—तावत् (अ०)

जरा—तावत् (अ०)

जर्मन सिल्वर—चन्द्रलौहम्

जल—तोयम्, अम्बु (न०), वारि (न०), नीरम्

जलकण—शीकरः

जलतरंग (बाजा)—जलतरङ्गः

जलना—ज्वल् (१ प०), इन्ध् (७ आ०)

जलपान—जलपानम्

जल-सेनापति—नौसेनाध्यक्षः

जलाना—दह् (१ प०)

जलेबी—कुण्डली (स्त्री०)

जवाकुसुम (फूल)—जवाकुसुमम्, जवापुष्पम्

जस्त—यशदम्

जहाज, पानी का—पोतः

जहाज (विमान)—व्योमयानम्, विमानम्

जागना—जागृ (२ प०)

जादूगर—मायाकारः, ऐन्द्रजालिकः, मायाविन् (पुं०)

जानना—ज्ञा (९ उ०), अव+गम् (१ प०),

अधि+गम् (१ प०)

जानने-कारण—अभिज्ञः

जाना—गम् (१ प०), इ (२ प०), या (२ प०)

जामुन—जम्बुः (स्त्री०), जम्बूः (स्त्री०)

जार, काँच का—काचघटी (स्त्री०)

जाल—वागुरा, जालम्

जिगर—यकृत

जितेन्द्रिय—दान्तः

जिद—निर्वन्धः

जिल्द—प्रावरणम्

जीजा (बहनोई)—आवुतः भगिनीपतिः (पुं०)

जीतना—जि (१ प०), वि+जि (१ आ०)

जीभ—रसना, जिह्वा

जीरा—जीरकः

जीविका—वृत्तिः (स्त्री०), जीविका

जुकाम—प्रतिश्यायः

जुती हुई भूमि—सीता

जुलाहा—तन्तुवायः

जुलूस—जनयात्रा, जनौघः

जुवारी—द्यूतकारः

जूड़े की जाली—वेणीजालम्

जूता (बूट)—उपानह (स्त्री०)

जूता सीने की सूई—चर्मप्रभेदिका

जूही (फूल)—यूथिका

जेब काटना—ग्रन्थि+भिद् (७ उ०)

जेल—कारा, कारागारम्, बन्दिगृहम्

जैसा—वैसा—यथा—तथा (अ०)

जोड़ना—सं+योजय (णिच्)

जोतना—कृष् (१ प०, ६ उ०)

जौ—यवः

ज्ञात—अवगतम्

ज्योंही—ज्योंही—यावत्—तावत् (अ०)

ज्योति—ज्योतिष् (न०), रोचिष् (न०)

ज्वार—यवनालः

झ

झगड़ा—कलहः

झगड़ालू—कलहप्रियः, कलहकामः

झरना—प्रपातः

झाड़ी—कुञ्जः, निकुञ्जः

झाड़ू—मार्जनी (स्त्री०)

झील—सरसी (स्त्री०)

झील, बड़ी—ह्रदः

झुकना—नम् (१ प०), अवनम्, प्रणम्

झुकाना—अवनमय (णिच्)

झोपड़ी—उटजः, पर्णशाला, कुटीरः

ट

टकसाल—टङ्कशालः

टकसाल का अध्यक्ष—टङ्कशालाध्यक्षः

टखना (पैर की हड्डी)—गुल्फः

टमाटर—रकाङ्गः

टब (पानी का)—द्रोणिः (स्त्री०) द्रोणी (स्त्री०)

टाइप करना—टइक् (१० उ०)

टाइप-राइटर—टङ्कनयन्त्रम्

टाइफाइड—संनिपातज्वरः

टाइम-टेबुल—समय-सारणी (स्त्री०)

टॉफी—गुल्यः

टिण्डा—टिण्डिशः

टिकुली (बेंदी)—ललाटाभरणम्

टिड्डी—शलभः

टीयर गैस—धूमास्त्रम्, अश्रुधूमः

टी (चाय)—चायम्

टी०बी० (तपैदिक)—राजयक्ष्मन् (पुं०) राजयक्ष्मः

टीका (मंगलार्थ)—ललाटिका

टीन—त्रपु (न०)

टीन की चद्दर—त्रपुफलकम्

टी पॉट—चायपात्रम्

टी पार्टी (चाय-पानी)—सपीतिः (स्त्री०)

टूटा हुआ—भुनम् (वि०)

टूथ पाउडर—दन्तचूर्णम्

टूथपेस्ट—दन्तपिष्टकम्

टेनिस का खेल—प्रक्षिप्तकन्दुकक्रीडा

टेलर (दर्जी)—सौचिकः

टेलर-चौक—सौचिकवर्तिका

टैंक (हौज)—आहावः

टैक्स—करः

टोस्ट—भृष्टापूपः

ट्रैक्टर—खनियन्त्रम्

ठ

ठगना—वञ्च् (१० आ०), अभि+सं+धा (३ उ०)

ठीक (सत्य)—परमार्थतः, परमार्थेन, तत्त्वतः (अ०)

ठीक घटना—उप+पद् (४ आ०)

ठुकराना—वि+हन् (२ प०)

ठोकना (कील आदि)—कील् (१ प०)

ड

डंठल—वृन्तम्

डँसना—दंश् (१ प०)

डंडी मारना—कूटमानं+कृ (८ उ०)

डबल रोटी—अभ्यूषः

डस्टर—मार्जकः

डाँटना—भर्त्स् (१० आ०)

डाइनिंग टेबुल—भोजनफलकम्

डाइनिंग रूम—भोजनगृहम्

डाइरेक्टर (एजुकेशन)—शिक्षासंचालकः

डाएबिटीज़—मधुमेहः, मधुप्रमेहः

डाक गाड़ी—द्राक्यानम्

डाकू—पाटच्चरः लुण्टाकः, परिपन्थिन् (पुं०)

डाक्टर—भिषग्वरः

डालना—नि+क्षिप् (६ उ०), पातय (णिच्)

डिनर पार्टी—सहभोजः, सगिधः (स्त्री०)

डिप्टी डाइरेक्टर (शिक्षा)—उपशिक्षासंचालकः

डूबना—मस्ज् (६ प०)

डेस्क—लेखनपीठम्

ड्राइंग रूम—उपवेशगृहम्

ड्राईक्लीनर—निर्णोजकः

ढ

ढकना—सं+वृ (५ उ०)

ढका हुआ—प्रच्छन्नः (वि०)

ढाक—पलाशः

ढाल—पटहः

ढिंढोरा—डिण्डिमः

ढीठ—धृष्टः

ढूँढ़ना—अन्विष् (अनु+इष् ४ प०), गवेष् (१० उ०)

ढेला—लोष्ठम्

ढोलक—ढौलकः

त

तई (जलेबी आदि पकाने की)—पिष्टपचनम्

तकिया—उपधानम्, उपबर्हः

तट—तटः, कूलम्
ततैया (भिरड़)—वरटा
तन्दूर (रोटी पकाने का)—कन्दुः (स्त्री०)
तपाना—तप् (१ प०)
तपेदिक—राजयक्ष्मः, राजयक्ष्मन् (पुं०)
तब तक—तावत् (अ०)
तबला—मुरजः
तरंग—वीचिः (स्त्री०) ऊर्मिः (स्त्री०), तरङ्गः
तरबूज—कालिन्दम्, तर्बुजम्
तराई—उपत्यका
तराजू—तुला
तबा—ऋजीपम्
तसला—धिषणा (स्त्री०)
तहमद (लुंगी)—प्रावृतम्
तशतरी—शरावः
ताँबा—ताम्रकम्
ताँबे के बर्तन बनानेवाला—शौल्विकः
ताड़—तालः
तानपूरा (बाजा)—तानपूरः
तारा—तारा, ज्योतिष् (न०)
तालाब—सरस् (न०), तडागः
ताहरी (पुलाव)—पुलाकः
तिजोरी—लौहमञ्जूषा
तिपाई—त्रिपादिका
तिमंजिला (मकान)—त्रिभूमिकः
तिरस्कार—अवज्ञा
तिरस्कार होना—तिरस्+कृ (कर्म०)
तिरस्कृत—विप्रकृतः, तिरस्कृतः
तिरस्कृत करना—परि+भू (१ प०), तिरस्+कृ
(८ उ०)
तिल—तिलः
तिलक—तिलकम्
तिल्ली—प्लीहा
तीव्र—तीक्ष्णम् (वि०)
तीव्र स्वर—तारः
तीसरा पहर—अपराहः
तुच्छता—अकिञ्चित्करत्वम्
तुरही (बाजा)—तुर्यम्
तूणीर—तूणीरः

तूतिया—तुत्थाञ्जनम्
तूम करना—तर्पय (णिच्)
तूम होना—तृप् (४ प०, १० उ०)
तेंदुआ—तरक्षुः (पुं०)
तेज—तीव्रम्, शातम् (तीक्ष्ण)
तेज (ओज)—तेजस् (न०)
तेज (तीक्ष्ण) करना—तिज् (१ आ०)
तेली—तैलकारः
तैरना—तृ (१ प०), सं+तृ (१ प०)
तैयार—निष्पन्नम्, संपन्नम्, सज्जः
तैयार होना—सं+पद (४ आ०), सं+नह (४ उ०)
तो—तु, तावत्, ततः (आ०)
तोड़ना—वृट् (१० आ०), भिद् (७ उ०), भञ्ज्
(७ प०), खण्ड् (१० उ०)
तोता—शुकः, कीरः
तोप—शतघ्नी (स्त्री०)
तोरई—जालिनी (स्त्री०)
तोल—तोलः
तोलना—तोलनम्
तोलना—तुल् (१० उ०)
त्यक्त—उज्झितम्, त्यक्तम्, उत्सृष्टम्
त्वचा—त्वच् (स्त्री०), त्वचा

थ

थाना—रक्षिस्थानम्
थाली—थालिका, स्थालिका
थूकना—ष्ठीव् (१ प०, ४ प०)
थोड़ी देर—मुहूर्तम् (अ०)

द

दक्षिण, दिशा—दक्षिणा
दक्षिण की ओर—दक्षिणा, दक्षिणतः
दक्षिणायन—दक्षिणायनम्
दग्ध (जला हुआ)—प्लुष्टम् (वि०)
दण्ड देना—दण्ड् (१० उ०)
दबाना—अभि+भू (१ प०), दम् (४ प०), धृप्
(१० उ०)
दया—अनुक्रोशः, दया
दया करना—दय् (१ आ०)
दराँती—दात्रम्

दरी—आस्तरणम्
 दर्जी—सौचिकः
 दर्दा—दरी (स्त्री०)
 दलाल—शुल्काजीवः
 दलाली—शुल्कम्
 दस्त—अतिसारः
 दस्त, आँवयुक्त—आमातिसारः
 दस्त, खून-युक्त—रक्तातिसारः
 दस्ता (कागज का)—दस्तकः
 दही-बड़ा—दधिवटकः
 दाँत—रदनः, दन्तः, रदः, दशनः
 दाढ़ी—कूर्चम्
 दातून—दन्तधावनम्
 दादी—पितामही (स्त्री०)
 दाना—कणः
 दानी—वदान्यः, दानिन् (पुं०)
 दाल—द्विदलम्, सूपः
 दालमोठ—दालमुद्गाः
 दिन—अहन् (न०), दिनम्, दिवसः
 दिन में—दिवा (अ०)
 दिन-रात—नक्तन्दिवम्, अहोरात्रम्, रात्रिन्दिवम्
 दिशा—काष्ठा, दिश् (स्त्री०), कुकुम् (स्त्री०),
 आशा, दिशा
 दीक्षा दंना—दीक्ष (१ आ०)
 दीन—दुर्गतः, दीनः (वि०)
 दीवार—भित्तिः (स्त्री०)
 दुःख देना—पीड़ (१० उ०), तुद (६ उ०)
 दुःखित हृदय—विमनस् (पुं०), विषण्णः
 दुःखित होना—विषद (वि+सद् १ प०), व्यथ
 (१ आ०)
 दुःखी होना—वि+पद (४ आ०)
 दुर्तई (दुहरी चादर)—द्वितीय (स्त्री०)
 दुपहरिया (फूल)—बन्धूकः
 दुमजिला (मकान)—द्विभूमिकः (वि०)
 दुराचारी—दुराचारः, दुर्वृत्तः (वि०)
 दुलारा—दुर्ललितः (वि०)
 दुहराना—आवृत्तिः (स्त्री०), पुनरावृत्तिः (स्त्री०)
 दूकान—आपणः

दूकानदार—आपणिकः
 दूत—चरः, दूतः
 दूध—पयस् (न०), क्षीरम्, दुग्धम्
 दूर—दूरम्, आरात् (आ०)
 दूषित होना—दुष् (४ प०)
 देखना—दृश् (१ प०), ईक्ष् (१ आ०), अवेक्ष्, प्रेक्ष्,
 समीक्ष् (१ आ०), अव+लोक् (१० उ०)
 देना—दानम्, वितरणम्, विश्राणनम्
 देना—दा (३ उ०), वि+तृ (१ प०), उप+नी
 (१ उ०)
 देर करना—कालहरणम्, विलम्बः
 देवता—सुरः, निर्जरः, देवः, त्रिदशः, अमरः
 देवदार—देवदारुः (पुं०)
 देवर—देवरः
 देवरानी—यातृ (स्त्री०)
 देहली (द्वार की)—देहली (स्त्री०)
 दो-तीन—द्वित्राः (वि०)
 दोनों प्रकार से—उभयथा (अ०)
 दोपहर—मध्याह्नः
 दोपहर के बाद का समय (p.m.)—अपराह्णः
 दोपहर से पहले का समय (a.m.)—पूर्वाह्णः
 दो प्रकार से—द्विधा (अ०)
 दोष लगाना—कुल्प् (१० आ०)
 द्रोह करना—द्रुह् (४ प०)
 द्वार—द्वारम्
 द्वारपाल—प्रतीहारः, प्रतीहारी (स्त्री०)

ध

धड़—कबन्धः
 धतूरा—धतूरः
 धन—धनम्, वित्तम्, द्रविणम्, संपद (स्त्री०)
 धनिया—धान्यकम्
 धर्मार्थ यज्ञादि—इष्टापूर्तम्
 धनुर्धर—धन्विन् (पुं०), धनुर्धरः
 धनुष—कार्मुकम्, इष्वासः कोदण्डम्, चापः
 धमकाना—तर्ज् (१० आ०)
 धागा—सूत्रम्, तन्तुः (पुं०)
 धान (भूसीसहित)—धान्यकम्

धार रखनेवाला—शस्त्रमार्जः

धारण करना—धृ (१ उ०, १० उ०)

धार रखना—तीक्ष्णय (णिच्), शान् (१ उ०)

धुंमुंश (कंकड़ आदि कूटने का)—कोटिशः

धूप—आतपः

धूल—रजस् (न०), पांसुः (पुं०), धूलिः (स्त्री०),
रेणुः (पुं०)

धोखा—कैतवम्

धोखा देना—वञ्च् (१० आ०), वि+प्र+लभ्
(१ आ०)

धोती—अधोवस्त्रम्, धौतवस्त्रम्

धोना—धाव् (१ उ०), प्र+क्षल् (१० उ०), निज्
(३ उ०)

धोबिन—रजकी (स्त्री०)

धोबी—रजकः, निर्णेजकः

धोंकनी—भस्त्रा

ध्यान देना—अव+धा (३ उ०)

ध्यान रखना—अपेक्ष् (अप्+ईक्ष् १ आ०)

ध्यान से देखना—निरीक्ष् (१ आ०)

न

नक्षत्र—नक्षत्रम्

नगद—मूल्येन (तृतीया)

नगर—पत्तनम्, नगरम्, पुरम्

नगाड़ा—दुन्दुभिः (पुं०, स्त्री०)

नदी—आपगा, सरित् (स्त्री०), निम्नगा, स्रवन्ती

ननैद—ननान्दृ (स्त्री०)

नपुंसक—क्लीबम्, नपुंसकम् (-कः)

नफीरी (बीज बाजार)—वीणावाद्यम्

नमक—लवणम्

नमक, साँभर—रोमकम्, रौमकम्

नमक, सेंधा—सैन्धवम्, सैन्धवः

नमकीन (अन्न)—लवणान्नम्

नमकीन सेव—सूत्रकः

नम्र—विनीतः, नम्रः (वि०)

नलाई (खेत की सफाई)—क्षेत्रपरिष्कारः

नवग्रह—नव ग्रहाः

नष्ट होना—नश् (४ प०), ध्वस् (१ आ०), उत्+सद्
(१ प०)

नस—शिरा

नाइट ड्रेस—नक्तकम्

नाइलोन का (वस्त्र)—नवलीनकम्

नाई—नापितः

नाक—घ्राणम्, नासिका, नासा

नाक का फूल—नासापुष्पम्

नाचना—नृत् (४ प०)

नाड़ी—नाडिः (स्त्री०), नाडी (स्त्री०)

नातिन—नप्त्री (स्त्री०)

नाती—नप्त् (पुं०)

नाना—मातामहः

नानी—मातामही (स्त्री०)

नापना—मा (२ प०, ३ आ०)

नारंगी—नारङ्गम्

नारियल—नारिकेलः (वृक्ष), नारिकेलम् (फल)

नाला (पहाड़ी)—निर्झरः, प्रणालः

नाली—प्रणालिका, नाली (स्त्री०), नालिः (स्त्री०)

नाव—नौः (स्त्री०), नौका

नाविक—कर्णधारः, नाविकः

नाशपाती—अमृतफलम्

नाशता—कल्यवर्तः, प्रातराशः

निःसंकोच—विस्रब्धम्, विश्रब्धम्, निःशङ्कम्

निकलना—निः+सृ (१ प०), प्र+भू (१ प०),

उद्+भू (१ प०), निर्र+गम् (१ प०),

उद्+गम् (१ प०)

निकालना—निःसारय (णिच्)

निकलना—नि+गृ (६ प०)

निचोड़ना—सु (५ उ०)

निन्दा करना—निन्द (१ प०), अधि+क्षिप् (६ उ०)

निन्दित—अवगीतः, विगीतः, निन्दितः

निब—लेखनीमुखम्

निमोनिया—प्रलापकञ्चरः

नियम—नियमः

निरन्तर—अधीक्षणम्, अजस्रम्, अनवरतम्

निरपराध—अनागस् (पुं०), निरपराधः

निर्णय करना—निर्र+णी (१ उ०)

निर्भय—निर्भयम्, नष्टाशङ्कः

निर्यात (एक्सपोर्ट)—निर्यातः

निर्यात पर शुल्क—निर्यातशुल्कम्
 निवाड़—निवारः
 निशान लगाना—चिह्न (१० उ०)
 निश्चय करना—निश्चि (निस्+चि ५ उ०)
 निश्चय से—नूनम्, खलु वै, नाम (अ०)
 नीच—निकृष्टः, अधमः, अपकृष्टः, अपसदः
 नीबू—जम्बीरम्
 नीबू, कागजी—जम्बीरकम्
 नीबू, बिजौरा—बीजपूरः
 नीम—निम्बः
 नील—नीली (स्त्री०)
 नीलकण्ठ (पक्षी)—चाषः
 नीलम (मणि)—इन्द्रनीलः
 नील लगाना—नीली+कृ (८ उ०)
 नेट (जाल)—जालम्
 नेत्र—लोचनम्, नेत्रम्, चक्षुष् (न०)
 नेल कटर—नखनिकृन्तनम्
 नेल पालिश—नखरञ्जनम्
 नेवारी (फूल)—नवमालिका
 नोट—नाणकम्
 नौकर—कर्मकरः, भृत्यः, किकरः
 नौका, छोटी—उडुपः
 नौ रस—नव रसाः
 न्योता देना—नि+मन्त्र (१० आ०)

प

पकवान—पक्वान्
 पकाना—पच् (१ उ०)
 पका हुआ—पक्वम्
 पकौड़ी—पक्वटिका
 परबल (साग)—पटोलः
 पटरा (खेत बराबर करने का)—लोष्ठभेदनः
 पट्टी—पट्टिका
 पठार—अधित्यका
 पड़ना—पत् (१ प०), नि+पत् (१ प०)
 पढ़ाना—पाठय (णिच्), अध्यापय (णिच्)
 पतंगा—शलभः
 पतला—अपचितः, तनुः (वि०), कृशः
 पताका—वैजयन्ती (स्त्री०), पताका
 पतीली—स्थाली (स्त्री०)

पत्ता—पर्णम्, पत्रम्
 पत्थर—ग्रावन् (पुं०), अश्मन् (पुं०), उपलः
 पत्रलेखा (सजाना)—पत्रलेखा
 पद्मसमूह—नलिनी (स्त्री०)
 पनडुब्बी—जलान्तरितपोतः
 पनवाड़ी (पानवाला)—ताम्बूलिकः
 पन्ना (रत्न)—मरकतम्
 पपड़ी (मिठाई)—पर्पटी (स्त्री०)
 परकोटा—प्राकारः
 परवाह करना—ईक्ष् (१ आ०), प्र+ईक्ष् (१ आ०)
 पराँठा—पूपिका
 पराग—मकरन्दः, परागः
 पराल (फूस)—पलालः
 परीक्षा करना—परीक्ष् (परि+ईक्ष् १ आ०)
 परोसना—परि+वेषय (णिच्)
 पर्वत—अद्रिः (पुं०), गिरिः (पुं०), भूभृत् (पुं०)
 पलंग—पल्यङ्कः
 पलक—पक्ष्मन् (न०)
 पवित्र—पूतम्, पवित्रम्, पावनम् (वि०)
 पश्चिम—प्रतीची (स्त्री०)
 पश्चिम की ओर—प्रत्यक् (अ०)
 पहनना—परि+धा (३ उ०)
 पहलवान—मल्लः
 पहुँचना—आ+सद् (१ प०), प्र+आप् (५ प०)
 पहुँचाना—प्रापय (णिच्)
 पहुँची (गहना)—कटकः
 पाँच-छः—पञ्चषः
 पाउडर—चूर्णकम्
 पाकड़ (वृक्ष)—प्लक्षः
 पाखण्डी—पाषण्डिन् (पुं०)
 पाजेब (गहना)—नूपुरम्
 पाठशाला—पाठशाला
 पाठ्यपुस्तक—पाठ्यपुस्तकम्
 पान—ताम्बूलम्
 पानदान—ताम्बूलकरङ्कः
 पाना—आप् (५ प०), प्र+आप् (५ प०), प्रति+पद्
 (४ आ०), विद् (६ उ०), समधि+गम्
 (१ प०)

पानी का जहाज—पोतः
 पापड़—पर्यटः
 पायजामा—पादयामः
 पार करना—तृ (१ प०), उत्+तृ (१ प०), निस्+तृ (१ प०)
 पारा—पारदः
 पार्क—पुरोद्यानम्, पुरोपवनम्
 पार्वती—शर्वणी (स्त्री०), गौरी (स्त्री०), भवानी (स्त्री०)
 पालक (साग)—पालकी (स्त्री०)
 पालन करना—भुज् (७ प०), तन्त्र (१० आ०), पा (२ प०), पालय (णिच्)
 पालिश—पादुरञ्जनम्, पादुरञ्जकः
 पास जाना—उप+गम् (१ प०), उप+सद् (१ प०)
 पासा (जूए का)—अक्षाः (बहु०)
 पाहुन (अतिथि)—प्रायुणः, अभ्यागतः
 पिघलाना—द्रावय (णिच्)
 पिघला हुआ—द्रुतम्, गलितम्, द्रवोभूतम्
 पिलाना—पायय (पा+णिच्)
 पियानो (बाजा)—तन्त्रीकवाद्यम्
 पिस्ता—अङ्कोटम्
 पिसतूल—लघुभुशुण्डिः (स्त्री०), गुलिकास्त्रम्
 पीछा करना—अनु+पत् (१ प०)
 पीछे चलना—अनु+चर् (१ प०), अनु+वृत् (१ आ०)
 पीछे जाना—अनु+गम् (१ प०)
 पीछे-पीछे—अनुपदम् (अ०)
 पीठ—पृष्ठम्
 पीतल—पीतलम्
 पीपल—अश्वत्थः
 पीपर (ओषधि)—पिप्पली (स्त्री०)
 पीलिया (रोग)—पाण्डुः (पुं०)
 पीसना—पिष् (७ प०)
 पुखराज (रत्न)—पुष्परागः, पुष्पराजः
 पुताईवाला—लेपकः
 पुत्र—आत्मजः, सन्तुः (पुं०), तनयः, अपत्यम्
 पुत्रवधू—स्नुषा
 पुलाव—पुलाकः
 पुष्ट करना—पुष् (४ प०)

पुष्पमाला—स्त्रज् (स्त्री०)
 पूँजी—मूलधनम्
 पूआ—पूषः
 पूजा—सपर्या, अर्चा, अर्हणा, अपचितिः (स्त्री०)
 पूजा करना—अर्च (१ प०), पूज् (१० उ०)
 पूज्य—प्रतीक्ष्यः, पूज्यः
 पूरा करना—पृ (३ प०, १० उ०)
 पूरी—पूलिका
 पूर्णिमा—राका, पूर्णिमा
 पूर्व—प्राची (स्त्री०)
 पूर्व की ओर—प्राक् (अ०)
 पृथिवी—वसुधा, अरुणिः (स्त्री०), भूः (स्त्री०)
 पेचिश—प्रवाहिका, आमातिसारः
 पेट—कुक्षिः (पुं०), उदरम्, जठरः
 पेटीकोट—अन्तरीयम्
 पेटू—औदरिकः, कुक्षिभरिः (पुं०)
 पेठे की मिठाई—कौष्माण्डम्
 पेड़ा (मिठाई)—पिण्डः
 पेन्टर—चित्रकारः
 पेन्सिल—तूलिका
 पेस्ट्री—पिष्टानम्
 पैदल चलनेवाला—पदातिः (पुं०)
 पैदल सेना—पदातिः (पुं०)
 पैदा होना—उद्+भू (१ प०), उत्+पद् (४ आ०)
 पैन्ट—आप्रपदीनम्
 पैर—पादः
 पैरिलिसिस (लकवा०)—पक्षाघातः
 पोंछना—मार्जय (णिच्)
 पोतना—लिप् (६ उ०)
 पोता—पौत्रः
 पोती—पौत्री (स्त्री०)
 पोर्टिको (बरामदा)—प्रकोष्ठः
 पोस्ता—पौष्टिकम्
 प्याऊ—प्रां
 प्याज—पलाण्डुः (पुं०, न०)
 प्याल (फल)—प्रियालम्
 प्याला—चषकः

प्रकट होना—आविर् + भू (१ प०)
 प्रचार होना—प्र+चर् (१ प०)
 प्रणाम करना—प्र+णम् (१ प०), वन्द (१ आ०)
 प्रतिज्ञा करना—प्रति+ज्ञा (१ आ०)
 प्रतीत होना—आ+पत् (१ प०)
 प्रतीक्षा करना—प्रतीक्ष् (१ आ०), अपेक्ष् (१ आ०)
 प्रमेह—प्रमेहः
 प्रसन्न चित्त—प्रसन्नः, हृष्टमानसः
 प्रसन्न होना—प्र+सद् (१ प०), मुद् (१ आ०)
 प्रसिद्ध—प्रसिद्धः, प्रथितः विश्रुतः
 प्रस्तुत करना—प्र+स्तु (२ उ०)
 प्रस्थान करना—प्र+स्था (१ आ०)
 प्राइम मिनिस्टर—प्रधानमन्त्रिन् (पुं०)
 प्राण—प्राणाः, असवः (असु, बहु०)
 प्रातः—प्रातः (अ०), प्रत्यूषः
 प्राप्त किया—आसादितम्, प्राप्तम्, लब्धम्
 प्राप्त करना—प्राप् (५ प०), लभ् (१ आ०)
 प्रारम्भ करना—आ+रभ् (१ आ०)
 प्रार्थना करना—प्र+अर्थ् (१० आ०)
 प्रिन्सिपल—आचार्यः, आचार्या (स्त्री०)
 प्रेम करना—स्निह् (४ प०)
 प्रेरणा देना—प्र+ईर् (१० उ०)
 प्रेरित—ईरितम्, प्रेरितम्
 प्रोफेसर—प्राध्यापकः
 प्रौढ—प्रौढः, पौढम् (वि०)
 प्लास्टर—प्रलेपः
 प्लेट—शरावः

फ

फड़कना—स्पन्द (१ आ०), स्फुर् (६ प०)
 फनीचर—उपस्करः
 फर्श—कुट्टिमम्
 फल मिलना—वि+पच् (१ उ०)
 फहराना—उत्+तुल् (१० उ०)
 फाइल—पत्रसंचयिनी (स्त्री०)
 फाउन्टेन पेन—धारालेखनी (स्त्री०)
 फालसा (फल)—पुंनागम्
 फावड़ा—खनित्रम्
 फासफोरस—भास्वरम्

फिटकरी—स्फटिका
 फीस—शुल्कः
 फुंसी—पिटिका
 फुटबॉल—पादकन्दुकः,—कम्
 फुफेरा भाई—पैतृष्वस्तौयः
 फूलका (रोटी)—पूपला
 फूंकना—ध्मा (१ प०)
 फूँस—तृणम्
 फूआ—पितृष्वसु (स्त्री०)
 फूल (धातु)—कांस्यम्
 फूल—प्रसूनम्, कुसुमम्, पुष्पम्, सुमनस् (न०)
 फेंकना—अस् (४ प०), क्षिप् (६ उ०)
 फेफड़ा—फुफुसम्
 फेरना—आवर्ति (णिच्)
 फैक्टरी—शिल्पशाला
 फैलना—प्रथ् (१ आ०)
 फैलाना—कृ (६ प०), तन् (८ उ०)
 फोड़ा—पिटकः
 फौजी आदमी—सैनिकः
 फलु (इन्फ्लुएंजा)—शीतज्वरः

ब

बैटरा (बाट)—तुलामानम्
 बकरा—अजः
 बकवाद करना—प्र+लप् (१ प०)
 बगुला—बकः
 बच्चों का पार्क—बालोद्यानम्
 बछड़ा—वत्सः
 बजे—बादनम्
 बड़ (वृक्ष)—व्यग्रोधः
 बड़हल (फल)—लकुचम्
 बड़ा भाई—अग्रजः
 बढ़ई—त्वष्टृ (पुं०)
 बढ़कर—अति (अ०)
 बढ़ना—एध् (१ आ०), उप+चि (५ उ०)
 बतख—वर्तकः
 बताशा—वाताशः
 बथुआ (साग)—वास्तुकम्, बास्तूकम्
 बदमाश—जाल्मः, पापः, रैफः

बदलना—परि+णम् (१ उ०)
 बधाई देना—दिष्ट्या वृध् (१ आ०)
 बना-ठना—स्वलकृतः, सुभूषितः
 बनाना—सृज् (६ प०), रच् (१० उ०)
 बनावटी—कृत्रिमम्, कृतकम् (वि०)
 बन्द करना—अपि (पि)+धा (३ उ०)
 बन्दर—शाखामृगः, कपिः (पु०)
 बन्दूक—भुशुण्डिः (स्त्री०), भुशुण्डी (स्त्री०)
 बबूल (वृक्ष)—करीरः
 बम—आग्नेयास्त्रम्
 बम फेंकना—आग्नेयास्त्रम्+क्षिप् (६ उ०)
 बराबर करना—समी+कृ (८ उ०)
 बराबरी करना—प्र+भू (१ प०)
 बरामदा—वरण्डः
 बछी—शल्यम्
 बर्ताव करना—वृत् (१ आ०)
 बर्फ—अवश्यायः, हिमम्, तुषारः
 बफी (मिठाई)—हैमी (स्त्री०)
 बर्मा (औजार)—प्राविधः
 बवासीर—अर्शस् (न०)
 बस—अलम् (अ०), कृतम् (अ०), खलु (अ०)
 बसूला—तक्षणी (स्त्री०)
 बस्ता—वेष्टनम्, प्रसेवः
 बस्ती—आवासस्थानम्
 बहना—वह् (१ उ०), स्यन्द् (१ आ०)
 बहाना—अपदेशः, व्यपदेशः
 बहाना करना—अप+दिश् (६ उ०)
 बहिन—स्वसृ (स्त्री०), भगिनी (स्त्री०)
 बही—वणिक्पत्रिका
 बहुमुत्र—मधुमेहः
 बहेड़ा (ओषधि)—विभीतकः
 बहेलिया—शाकुनिकः, व्याधः
 बाँझ (वृक्ष)—सिन्दूरः
 बाँधना—बन्ध् (९ प०), पश् (१० उ०)
 बाँसुरी—मुरली (स्त्री०), वंशी (स्त्री०)
 बाँह—बाहुः (पुं०), भुजः
 बाज (पक्षी)—श्येनः

बाजरा (अन्न)—प्रियङ्गुः (पुं०)
 बाजार—विपणिः (स्त्री०), विपणी (स्त्री०)
 बाजूबन्द (गहना)—केयूरम्
 बाट (तोलने के)—तुलामानम्
 बाड़—वृत्तिः (स्त्री०)
 बाण—विशिखः, शरः, बाणः
 बाथरूम—स्नानागारम्
 बाद में—पश्चात् (अ०), अनु (अ०)
 बादाम—वातादम्
 बार-बार—मुहुः (अ०), अभीक्ष्णम् (अ०)
 बारी से (बारी-बारी से)—पर्यायशः (अ०)
 बारूद—अग्निचूर्णम्
 बारे में—अन्तरेण, अधिकृत्य (अ०)
 बाल—शिरोरुहः, केशः
 बाल (अन्न की)—कणिशः, कणिशम्
 बाल काटने की मशीन—कर्तनी (स्त्री०)
 बालटी (बर्तन)—उदञ्चनम्
 बालूशाही (मिठाई)—मधुमण्डः
 बालों का काँटा—केशशूकः
 बासमती चावल—अणुः (पुं०)
 बाहर जाना (एक्सपोर्ट)—निर्यातः
 बाहर से आना (इम्पोर्ट)—आयातः
 बिकवाना—विक्रापय (णिच्, पर०)
 बिक्री—विक्रयः
 बिगड़ना—दुष् (४ प०)
 बिगुल (बाजा)—संज्ञाशंखः
 बिच्छू—वृश्चिकः
 बिजली—विद्युत् (स्त्री०), सौदामिनी (स्त्री०)
 बिजलीघर—विद्युद्गृहम्
 बिताना—नी (१ उ०), यापय (णिच्, उ०)
 बिदाई लेना—आ+मन्त् (१० आ०), आ+प्रच्छ्
 (६ आ०)
 बिना—अन्तरेण (अ०), विना (अ०), ऋते (अ०)
 बिन्दी—बिन्दुः (पुं०)
 बिल्ली—मार्जारी (स्त्री०)
 बिसकुट—पिष्टकः
 बिस्तर—शय्या
 बींधना—व्यध् (४ प०)

बीच में—अन्तरा, अन्तरे (अ०)
 बीड़ी—तमाखुवीटिका
 बीतना (समय)—गम् (१ प०), अति+वृत्
 (१ आ०)
 बीन बाजा—वीणावाद्यम्
 बुकैक—पुस्तकाधानम्
 बुरखार—ज्वरः
 बुनना—वे (१ उ०)
 बुरका—निचोलः
 बुर्जी (अटारी)—अट्टः
 बुलाक (गहना)—नासाभरणम्
 बुलाना—आ+मन्त्र (१० आ०), आ+ह्वे (१ उ०)
 बूरा (चीनी)—शर्करा, सिता
 बेंत—वेतसः
 बेचना—वि+क्रो (९ आ०)
 बेचनेवाला—विक्रेतृ (पुं०)
 बेणी (गहना)—मूर्धाभरणम्
 बेन्च—काष्ठासनम्
 बेर—बदरीफलम्, कर्कन्धुः (स्त्री०)
 बेल (फल)—बिल्वम्, श्रीफलम्
 बेला (फूल)—मल्लिका
 बेसन—चणकचूर्णम्
 बैकिंग—कुसीदवृत्तिः (स्त्री०)
 बैड—वादित्रगणः
 बैंगन—भण्टाकी (स्त्री०)
 बैठना—सद् (१ प०), नि+सद् (१ प०), आस् (२ आ०)
 बैडमिन्टन—पत्रिक्रीडा
 बैना (वायन)—वायनम्
 बैल—उक्षन् (पुं०), अनड्डह (पुं०), गो (पुं०)
 बोना—वप् (१ उ०)
 बौर—वल्लरी (स्त्री०)
 ब्रह्म—उदगीथः, ब्रह्मन् (पुं०, न०)
 ब्रह्मा—वेधस् (पुं०), ब्रह्मन् (पुं०)
 ब्राह्मण—द्विजः, द्विजातिः (पुं०), अग्रजन्मन् (पुं०)
 ब्रश—वर्तिका, रोममार्जनी (स्त्री०)
 ब्रश दाँत का—दन्तधावनम्
 ब्रैसलेट (बाजूबन्द)—केयूरम्

ब्लड-प्रेसर (रोग)—रक्तचापः
 ब्लाउज—कञ्चुलिका
 ब्लाटिंग पेपर—मसीशोपः
 ब्लेड (बाल बनाने का)—क्षुरकम्
 ब्लैक बोर्ड—श्यामफलकम्

भ

भंगी—संमार्जकः
 भँवर—आवर्तः
 भड़भूजा—भृष्टकारः, भ्राष्ट्रमिन्धः
 भतीजा—भ्रात्रीयः, भ्रातृव्यः, भ्रातृपुत्रः
 भरना—पूर (१० उ०)
 भले ही—कामम् (अ०)
 भाँटा—भण्टाकी (स्त्री०)
 भाग्यवान्—सुकृतिन् (पुं०)
 भाग्य से—दिष्ट्या (अ०)
 भाड़—भ्राष्ट्रम्
 भान्जा (भानजा)—स्वस्त्रीयः, भागिनेयः
 भाप—बाष्पम्
 भाभी (भाई की स्त्री)—भ्रातृजाया
 भारी—गुरुः (वि०)
 भाला—प्रासः
 भालू—भल्लूकः
 भाव (बाजार भाव)—अर्थः
 भाव गिरना—अर्घापचितिः (स्त्री०)
 भाव चढ़ना—अर्घोपचितिः (स्त्री०)
 भावर (तराई)—उपत्यका
 भिण्डी (साग)—भिण्डकः
 भूस—बुसम्
 भूख—बुभुक्षा, अशानाया
 भूखा—बुभुक्षितः, अशानायितः (वि०)
 भूनना—भ्रस्ज् (६ उ०)
 भूलना—वि+स्मृ (१ प०)
 भूसी—तुषः
 भू-सेनापति—भूसेनाध्यक्षः
 भेजना—प्रेषय (गिच्, उ०), प्र+हि (५ प०)
 भेड़—मेघः

भेड़िया—वृकः

भैंस—महिषी (स्त्री०)

भैंसा—महिषः

भोली-भाली—मुग्धा

भौं—भूः (स्त्री०)

भौरा—पटपदः, भ्रमर, द्विरफः, अलिः (पुं०)

म

मँगाना—आनायय (आनी+णिच्)

मंजन—दन्तचूर्णम्

मंजीरा—मंजीरम्

मंडप—मण्डपः

मंडी—महाहट्टः

मकड़ी—तन्तुनाभः, लूता, ऊर्णनाभः

मकान—भवनम्, सौधः प्रासादः, निलयः

मकोय (फल)—स्वर्णक्षीरी (स्त्री०)

मक्खन—नवनीतम्, हैयंगवीनम्

मगर—मकरः नक्रः

मछली—मीनः, मत्स्यः, झपः

मजदूर—श्रमिकः

मटर—कलायः

मट्ठा—तक्रम्

मथना—मन्थ् (९ उ०)

मधुमक्खी—सरघा, मधुमक्षिका

मध्यम स्वर—मध्यः, मध्यस्वरः

मन—स्वान्तम्, हृद् (न०), मनस् (न०), मानसम्

मन लगना—रम् (१ आ०)

मनाना—अनु+नी (१ उ०)

मनुष्य—नरः, द्विपाद् (पुं०), मर्त्यः

मनोहर—मनोज्ञम्, मञ्जुलम्, हृद्यम्, अभीष्टम्

मन्त्रणा करना—मन्त्र् (१० आ०)

मन्त्री—अमात्यः, सचिवः, मन्त्रिन् (पुं०)

मन्दी (भाव की)—मन्दायनम्

मरना—मृ (६ आ०), उप+रम् (१ आ०)

मरम्मत करना—सं०+धा (३ उ०)

मर्म—मर्मन् (न०)

मलाई—सन्तानिका

मलेरिया—विषमज्वरः

मशीन—यन्त्रम्

मसाला—व्यञ्जनम्, उपस्करः

मसाला डालना—उपस्कृ (८ उ०)

मसालेदार वस्तु—व्यञ्जनम्

मसूर—मसूरः

महँगा—महार्घम्

महल—प्रासादः, सौधः, हर्म्यम्

महावर—अलककः

महुआ (वृक्ष)—मधूकः

माँजना—मृज् (२ प०, १० उ०)

मांस—आमिषम्, मांसम्

माथा—ललाटम्

मानना—मन् (४ आ०, ८ आ०), आ+स्था (१ आ०)

मानसून—जलदागम्, प्रावृष् (ट्)

मामा—मातुलः

मामी—मातुलानी (स्त्री०)

मारना—हन् (२ प०), तड् (१० उ०), सो (४ प०)

मार्ग—वर्त्मन् (न०), पथिन् (पुं०), मार्गः, सरणिः (स्त्री०)

मालपूआ—अपूपः

माली—मालाकारः

मिजराब (सितार बजाने का)—कोणः

मिट्टी—मृत्तिका, मृद् (स्त्री०), मृत्स्ना

मिठाई—मिष्टानम्

मित्रता—सख्यम्, सौहृदम्, सौहार्दम्, संगतम्

मिनट—कला

मिर्च—मरीचम्

मिल (फैक्टरी)—मिलः

मिलना—मिल् (६ उ०), सं०+गम् (१ आ०)

मिलाना—योजय (युज्+णिच्), सं०+मिश्रय (णिच्)

मिस्त्री (कारीगर)—यान्त्रिकः

मिस्सा आटा—मिश्रचूर्णम्

मीठा—मधुरम् (वि०)

मीठी गोली (टॉफी)—गुल्यः

मुँह—आननम्, वदनम्, मुखम्, आस्यम्

मुकरना—अप+ज्ञा (९ आ०)

मुकुट—मुकुटम्

मुख्य द्वार—गोपुरम्
 मुख्य सड़क—राजमार्गः
 मुट्ठी—मुष्टिः (पुं०, स्त्री०), मुष्टिका
 मुनि—मुनिः (पुं०), वाचंयमः, दान्तः
 मुनीम—लेखकः
 मुर्ब्बा—मिष्टपाकः
 मुसम्मी (फल)—मातुलुङ्गः
 मुसाफिरखाना—पथिकालयः
 मूँग—मुद्गः
 मूँगरी (मिट्टी तोड़ने की)—लोष्ठभेदनः
 मूँगा (रत्न)—प्रवालम्
 मूँछ—श्मश्रु (न०)
 मूर्ख—वैधेयः बालिशः, मूढः
 मूर्खता—जाड्यम्
 मूली—मूलकम्
 मूल्य—मूल्यम्
 मूसलाधार वर्षा—आसारः
 मृग—कुरङ्गः, हरिणः, मृगः
 मृत—हतः, मृतः, उपरतः
 मृत्यु—मृत्युः (पुं०), निधनम्
 मेकेनिक (कारीगर)—यान्त्रिकः
 मेघ—जीमूतः, वारिदः, बलाहकः
 मेज—फलकम्
 मेढक—भेकः, ददुरः, मण्डूकः
 मेज, पढाई की—लेखनफलकम्
 मेयर—निगमाध्यक्षः
 मेवा—शुष्कफलम्
 मेहँदी—मेन्धिका
 मेंडा (खेत बराबर करने का)—लोष्ठभेदनः
 मैच—क्रीडाप्रतियोगिता
 मैना—सारिका
 मोटा—उपचितः, पृथुः, गुरुः (वि०)
 मोती—मुक्ता, मौक्तिकम्
 मोती की माला—मुक्तावली (स्त्री०)
 मोतीझरा (रोग)—मन्थरज्वरः
 मोर—बहिन् (पुं०), शिखिन् (पुं०), मयूरः
 मोर्चाबन्दी करना—परिख्या+वेष्टय (णिच्)

मोहनभोग (मिठाई)—मोहनभोगः
 मौका—कार्यकालम्
 मौन—वाचंयमः, जोषम् (अ०)
 मौलसरी (वृक्ष)—बकुलः
 मौसी—मातृष्वसु (स्त्री०)
 मौसेरा भाई—मातृष्वसेयः
 म्युनिसिपल चेयरमैन—नगराध्यक्षः
 म्युनिसिपलिट्री—नगरपालिका

य

यज्ञ—अध्वरः, यज्ञः, क्रतुः (पुं०)
 यज्ञ-कर्ता—यज्वन् (पुं०)
 यत्न करना—यत् (१ आ०), व्यव+सो (४ प०)
 यम—कृतान्तः
 यश—यशस् (न०), कीर्तिः (स्त्री०)
 याद करना—स्मृ (१ प०), सं+स्मृ (१ प०),
 अधि+इ (२ प०)
 युद्ध—आहवः, आजिः (पुं०, स्त्री०), जन्त्यम्
 यूनानी लिपि—यवनानी (स्त्री०)
 यूनिफार्म—एकपरिधानम्, एकवेषः
 यूनिवर्सिटी—विश्वविद्यालयः
 योग्य होना—अर्ह (१ प०)
 योद्धा—योधः

र

रँगना—रञ्जय (णिच्)
 रंगबिरंगे—नानावर्णानि (बहु०, वि०)
 रँगरेज—रञ्जकः
 रकम—राशिः, धनराशिः (पुं०)
 रक्षा करना—रक्ष (१ प०), पाल् (१० उ०), त्रै
 (१ आ०), पा (२ प०)
 रखना—नि+धा (३ उ०)
 रज—रजस् (न०)
 रजाई—नीशारः
 रजिस्टर—पञ्जिका
 रजिस्ट्रार—प्रस्तोतृ (पुं०)
 रणकुशल—सांयुगीनः
 रथ—स्यन्दनम्

रबड़—घर्षकः

रबड़ी (मिठाई)—कूचिका

रसोई—रसवती (स्त्री०), पाकशाला, महानसम्

रहना—स्था (१ प०), वस् (१ प०), अधि+वस्,

उप+वस् (१ प०)

राँगा—त्रपु (न०)

राक्षस—असुरः, दैत्यः, दानवः

राज (मिस्त्री)—स्थपतिः (पुं०)

राजदूत—राजदूतः

राजा—अवनिपतिः, भूपतिः, भूभृत् (तीनों पुं०)

रात—विभावरी (स्त्री०), क्षपा, रात्रिः (स्त्री०)

रात में—नक्तम् (अ०)

रायता—राज्यक्तम्

रिवाज—प्रचलनम्, संप्रचलनम्

रीठा—फेनिलः

रीढ़ की हड्डी—पृष्ठास्थि (न०)

रुकना—स्था (१ प०), वि+रम् (१ प०), अव+स्था

(१ आ०)

रूई—तूलः, तूलम्

रूज (गालों की लाली)—कपोलरञ्जनम्

रेगिस्तान—मरुः (पुं०), धन्वन् (पुं०, न०)

रेट (भाव)—अर्धः

रेतीला किनारा—सैकतम्

रेफरी—निर्णायकः

रेशमी—कौशेयम्

रैकेट (खेलने का)—काष्ठपरिष्करः

रोकना—रुध् (७ उ०)

रोग—रुज् (स्त्री०), रोगः, आमयः

रोजनामचा (कैशबुक, रोकड़ बही)—दैनिक-पञ्जिका

रोटी—रोटिका

रोना—रुद् (२ प०), वि+लप् (१ प०)

ल

लंच (मध्याह्न भोजन)—सहभोजः, सग्धिः (स्त्री०)

लकवा मारना—पक्षाघातः

लकीर—रेखा

लक्ष्मी—लक्ष्मीः (स्त्री०), श्रीः (स्त्री०), पद्मा, कमला

लक्ष्य—लक्ष्यम्, शरव्यम्

लगना—प्र+वृत् (१ आ०)

लगाना—नि+युज् (१० उ०), सं+धा (३ उ०)

लच्छे (गहना)—पादाभरणम्

लज्जित—हीणः (वि०)

लज्जित होना—त्रप् (१ आ०), लज्ज् (६ आ०),

ह्री (३ प०)

लड़ने का इच्छुक—योद्धुकामः, कलहकामः

लड़ाई का जहाज (पानी का)—युद्धपोतः

लड़ाई का विमान—युद्धविमानम्

लड्डू—मोदकः, मोदकम्

लता—व्रततिः (स्त्री०), वीरुध् (स्त्री०), लता

लपसी (जौ का हलुआ)—यवागूः (स्त्री०)

लस्सी (दही की)—दाधिकम्

लहसुन—लशुनम्

लहसुनिया (रत्न)—वैदूर्यम्

लाक्षारस—अलक्तकः, लाक्षारसः

लाख (धातु)—जतु (न०)

लाना—आ+नी (१ उ०), ह (१ उ०), आ+ह

(१ उ०)

लिए—कृते (अ०)

लिपिस्टिक—ओष्ठरञ्जनम्

लिफ्ट (मशीन)—उत्थापनयन्त्रम्

लिसोडा (वृक्ष)—श्लेष्मातकः

लीची (फल)—लीचिका

लीपना—लिप् (६ उ०)

लेखा बही—नामानुक्रमपञ्जिका

ले जाना—नी (१ उ०), ह (१ उ०), वह (१ उ०)

लेना—ग्रह (१ उ०), आ+दा (३ आ०)

लेनेवाला—ग्राहकः

लोई (ऊनी)—रल्लकः

लोकसभा—लोकसभा, संसद् (स्त्री०)

लोटा—करकः, कमण्डलुः (पुं०)

लोबिया—वनमुद्गाः

लोभी—लुब्धः, गृधुः (पुं०)

लोमड़ी—लोमशा

लोहा करना (वस्त्रों पर)—अयस्+कृ (८ उ०)

लोहार—लौहकारः

लोहे का टोप—शिरस्त्रम्

लोहे की चादर—लौहफलकम्

लौंग—लवङ्गम्

लौकी—अलाबूः (स्त्री०)

लौटकर आना—आ+वृत् (१ आ०), प्रत्या+गम्
(१ प०)

लौटना—नि+वृत् (१ आ०), परा+गम् (१ प०)

व

वंचित—विप्रलब्धः

वंश—अन्वयः, अन्ववायः, वंशः

वकील—प्राड्विवाकः

वचन—वचस् (न०), वचनम्

वज्र—पविः (पुं०), वज्रम्, कुलिशम्, अशनिः (पुं०)

वन—काननम्, विपिनम्, वनम्, अरण्यम्

वरुण—प्रचेतस् (पुं०), पाशिन् (पुं०), वरुणः

वदी—सैन्यवेषः

वर्षा—वृष्टिः (स्त्री०), वर्षा

वर्षाकाल—प्रावृष् (स्त्री०)

वस्तुतः—नूनम्, किल, खलु, वै, तावत् (अ०)

वहाँ से—ततः (अ०)

वाइस चान्सलर—उपकुलपतिः (पुं०)

वाटर वर्क्स—उदयन्त्रम्

वाणी—सरस्वती, वाच् (स्त्री०), वाणी (स्त्री०)

वायु—मातरिश्वन् (पुं०), पवनः, अनिलः

वायुसेनापति—वायुसेनाध्यक्षः

वायोलिन (बाजा)—सारङ्गी (स्त्री०)

वाली-बॉल—क्षेपकन्दुकः

विचरण करना—वि+चर् (१ प०)

विजयी—जिष्णुः (पुं०), विजयिन् (पुं०)

विद्युत्—सौदामिनी (स्त्री०), विद्युत् (स्त्री०)

विद्वान्—विद्वस् (पुं०) विपश्चित् (पुं०) सुधी
(पुं०), कोविदः, बुधः, मनीषिन् (पुं०)

सूरिः (पुं०), निष्णातः

विपत्ति—विपत्तिः (स्त्री०), विपद् (स्त्री०) व्यसनम्

विमान—विमानम्

विवाह करना—परि+णी (१ उ०), उप+यम्
(१ आ०)

विश्राम करना—विश्रामः, विश्रामः

विश्वास करना—वि+श्वस् (२ प०)

विष्णु—हरिः, अच्युतः

विस्तृत—ततम्, विततम्, प्रसृतम्

वीर्य—शुक्रम्

वृक्ष—विटपिन् (पुं०), पादपः, अनोकहः, शाखिन्
(पुं०)

वृद्ध—प्रवयस् (पुं०), वृद्धः

वेतन—वेतनम्

वेतन पर नियुक्त नौकर—नैतनिकः

वेदपाठी—श्रोत्रियः, वेदपाठिन् (पुं०)

वेदी—वेदिका, वेदी (स्त्री०)

वैश्य—वणिज् (पुं०), द्विजातिः (पुं०) अर्यः, वैश्यः

व्यक्त करना—वि+अञ्च् (७ प०)

व्याघ्र—द्वीपिन् (पुं०), व्याघ्रः

व्यर्थ ही—वृथा (अ०), मुधा (अ०)

व्यवहार करना—आ+चर् (१ प०) व्यव+ह
(१ उ०)

व्यापार—वाणिज्यम्, व्यापारः

व्याप्त होना—व्याप् (वि+आप् ५ प०), अश्
(५ आ०)

श

शक्कर—शर्करा

शपथ लेना—शप् (१ उ०)

शराबी—मद्यपः

शरीफा (फल)—सीताफलम्

शरीर—वपुष् (न०) गात्रम्, तनुः (स्त्री०), कायः,
विग्रहः

शर्त—समयः

शलगम्—श्वेतकन्दः

शस्त्र—प्रहरणम्, शस्त्रम्

शस्त्रागार—शस्त्रागारम्, आयुधागारम्

शस्य—श्यामल—शाद्वलः

शहतूत (फल)—तूतम्

शहद—मधु (न०)

शहनाई (बाजा) — तूर्यम्

शहर — नगरम्, पुरम्

शान्त — शान्तः (वि०)

शामियाना — चन्द्रातपः

शासन करना — शास् (२ प०), तन्त्र (१० आ०)

शिकार खेलना — मृगया

शिकारी — मृगयुः (पुं०), आखेटकः शाकुनिकः

शिक्षा देना — शास् (२ प०), शिक्ष (१ आ०)

शिर — शिरस् (न०), मूर्धन् (पुं०)

शिला — शिला, शिलापट्टः

शिल्पी — कारुः (पुं०), शिल्पिन् (पुं०)

शिल्पी-संघ — श्रेणिः (पुं०, स्त्री०)

शिल्पी-संघ का अध्यक्ष — कुलकः

शिव — त्र्यम्बकः, त्रिपुरारिः (पुं०), ईशानः

शिष्य — अन्तेवासिन् (पुं०), छात्रः, शिष्यः, वटुः (पुं०)

शीघ्र — सद्यः (अ०), सपदि (अ०), द्रुतम्, शीघ्रम्

शीशम (वृक्ष) — शिशपा

शीशा — दर्पणः, मुकुरः, आदर्शः

शुद्ध करना — शोधय (णिच्)

शूद्र — अन्त्यजः

शेर — केसरिन् (पुं०) सिंहः, मृगेन्द्रः, हरिः (पुं०)

शेरवानी — प्रावारकम्

शोभित होना — शुभ (१ आ०), भा (२ प०)

श्रद्धा करना — श्रद्+धा (३ उ०)

स

संग्रहणी (पेचिश) — प्रवाहिका

संतरा — नारङ्गम्

संवाद करना — सं+वद् (१ आ०)

संशय करना — सं०+शी (२ आ०)

सञ्जन — साधुः (पुं०), सुमनस् (पुं०), सचेतस् (पुं०)

सड़क — मार्गः, पथिन् (पुं०), सरणिः (स्त्री०)

सड़क, कच्ची — मृन्मार्गः

सड़क, चौड़ी — रथ्या

सड़क, पक्की — दृढमार्गः

सड़क, मुख्य — राजमार्गः

सत्य रूप में — परमार्थतः, परमार्थेन, यथार्थतः (अ०)

सदस्य — सभासद् (पुं०), सभ्यः, पारिषदः

सदाचारी — सद्वृत्तः सदाचारः

सदृश होना — सं+वद् (१ प०), अनु+ह (१ आ०)

सधवा स्त्री — पुरन्धिः (स्त्री०)

सन्तुष्ट होना — तुप् (४ प०)

सन्दूक — मञ्जपा

संन्यासी — मस्करिन् (पुं०), परिव्राजकः, यतिः (पुं०)

समाह — ससाहः

सफेद बाल — पलितम्

सभा — सभा, समितिः (स्त्री०), परिषद् (स्त्री०)

सभागृह — आस्थानम्

समधिप — सम्बन्धिनी (स्त्री०)

समधी — सम्बन्धिन् (पुं०)

समर्थ — प्रभविष्णुः (पुं०), प्रभुः (पुं०), समर्थः, शक्तः

समर्थ होना — प्र+भू (१ प०)

समय — वेला, कालः, समयः

समाचार — वार्ता, प्रवृत्तिः (स्त्री०), उदन्तः

समाप्त — अवसितः

समाप्त होना — सम्+आप् (५ प०), अव+सो (४ प०)

समीक्षा करना — सम्+ईक्ष् (१ आ०)

समीप — उप, अनु, अभि, आरात् (अ०)

समीप आना — प्रत्या+सद् (१ प०), उप+या (२ प०)

समीपता — संनिधानम्, सामीप्यम्

समुद्र — अर्णवः, अब्धिः (पुं०), रत्नाकरः

समुद्री व्यापारी — सांयात्रिकः

समूह — संहतिः (स्त्री०), संघः

समोसा — समोषः

सम्बन्धी — ज्ञातिः (स्त्री०), बन्धुः, बान्धवः

सरकार — सर्वकारः, शासनम्, प्रशासनम्

सरसों — सर्षपः

सर्ज (वृक्ष)—सर्जः

सर्वथा—एकान्ततः, सर्वथा, नित्यम् (अ०)

सलवार—स्यूतवरः

सलाद—शदः

सस्ता—अल्पाघम्

सहना—सह (१ आ०)

सहपाठी—सतीर्थ्यः, सहाध्येतृ (पुं०), सहपाटिन् (पुं०)

सहभोज—सग्धिः (स्त्री०), सहभोजः

सहाध्यायी—सतीर्थ्यः

सहारा देना—अव+लम्ब् (१ आ०)

सहृदय—सहृदयः, सचेतस् (पुं०)

सांग वेदज्ञ—अनुचानः

साँप—द्विजिह्वः, उरगः, भुजंगः

साँभर नमक—रौमकम्

साक्षी—साक्षिन् (पुं०)

साग—शाकः, शाकम्

साड़ी—शाटिका

सात स्वर—सप्त स्वराः

साथ—सह, साकम्, सार्धम्, सांनिध्यम्

साथी—सहाध्यायिन् (पुं०)

साफ करना—मृज् (२ प०, १० उ०), प्र+क्षल् (१० उ०)

साबुन—फेनिलम्

सामग्री—हविष् (न०), संभारः, उपकरणम्

सामान—पण्यः

सारंगी (बाजा)—सारङ्गी (स्त्री०)

सारस—सारसः

साल का पेड़—सालः

साँवाँ (जंगली धान)—श्यामाकः

सास पेन (डेगची)—उखा

साहूकार—कुसीदिकः, कुसीदिन् (पुं०)

साहूकारा—कुसीदवृत्तिः (स्त्री०), कुसीदम्

सिंगारदान—शृङ्गारधानम्, शृङ्गारपटकम्

सिंघाड़ा—शृङ्गाटकम्

सिक्का—मुद्रा

सिक्का ढालना—टङ्कनम्, टङ्क् (१० उ०)

सिगरेट—तमाखुवर्तिका

सितार—वीणा

सिन्द होना—सिध् (४ प०)

सिन्दूर—सिन्दूरम्

सिपाही—रक्षिन् (पुं०)

सिफलिस (गर्मी, रोग)—उपदंशः

सिलाई—स्यूतिः (स्त्री०)

सिलाई की मशीन—स्यूतियन्त्रम्

सिला हुआ—स्यूतम्

सींचना—सिच् (६ उ०)

सीखना—शिक्ष् (१ आ०)

सीखनेवाला—गृहीतिन् (पुं०), अधीतिन् (पुं०)

सीढ़ी (लकड़ी की)—निःश्रेणी (स्त्री०)

सीना—सिक् (४ प०)

सीमेन्ट—अश्मचूर्णम्

सीसा (धातु)—सीसम्

सुख—शर्मन् (न०), सुखम्

सुनार—पश्यतोहरः, स्वर्णकारः

सुन्दर—रुचिरम्, मनोज्ञम्, मञ्जुलम्

सुपारी—पूगम्, पूगीफलम्

सुराविक्रेता—शौण्डिकः

सुराही—भृङ्गारः

सूअर—शूकरः, वराहः

सूई—सूचिका

सुखना—शुष् (४ प०)

सूत—सूत्रम्

सूती—कार्पासम्

सूद—कुसीदम्

सूर्य—सप्तसप्तिः (पुं०), हरिदश्वः

सूर्यास्त समय—प्रदोषः, गोधूलिवेला, सायम्

सेधा नमक—सैन्धवम्

सेंह (पशु)—शल्यः

सेकण्ड—विकला

सेक्रेटरी—सचिवः

सेना—चमूः (स्त्री०), पृतना, वाहिनी (स्त्री०)

सेनापति—सेनापतिः (पुं०), सेनानीः (पुं०)

सेफ (तितोरी)—लौहमञ्जूषा

सेफ्टी रेजर—उपक्षुरम्

सेम—सिम्बा

सेमर (वृक्ष)—शाल्मलिः (पुं०)

सेल्स टैक्स—विक्रयकरः

सेव (फल)—सेवम्

सेवई—सूत्रिका

सेवा करना—सेव् (१ आ०), उप+चर् (१ प०)
 सोंठ—शुण्टो (स्त्री०)
 सोचना—चिन्त् (१० उ०), विचारय (णिच्)
 सोता (स्रोत)—उत्सः
 सोना—कार्तस्वरम्, जातरूपम्, चामीकरम्
 सोना—स्वप् (२ प०), शो (२ आ०)
 सोफा—पर्यङ्कः
 सौफ—मधुरा
 सौदा (सामान)—पण्यः
 सौ रुपये—शतम्
 स्कूल—विद्यालयः
 स्कूल इन्स्पेक्टर—विद्यालयनिरीक्षकः
 स्टूल—संवेशः
 स्टेनलेस स्टील—निष्कलङ्कायसम्
 स्टेशन—यानावतारः
 स्टोव—उद्धमानम्
 स्त्री—योषित् (स्त्री०), कलत्रम् (न०), दारा (पुं०)
 स्थान—धामन् (न०)
 स्नातक—समावृत्तः, स्नातकः
 स्नो—हैमम्
 स्पर्धा करना—स्पर्ध् (१ आ०)
 स्मरण करना—स्मृ (१ प०), अधि+इ (२ प०)
 स्लेट—अश्मपट्टिका
 स्वच्छ होना—प्र+सद् (१ प०)
 स्वभाव—सर्गः, निसर्गः, प्रकृतिः (स्त्री०)
 स्वभाव से सुन्दर—अव्याजमनोहरम्
 स्वर्ग—नाकः, त्रिदिवः, त्रिविष्टपम्
 स्वर्ण—कार्तस्वरम्, जातरूपम्, हिरण्यम्
 स्वागताथ जाना—प्रत्युद्+गम् (१ प०)
 स्वामी—प्रभविष्णुः (पुं०), प्रभुः, स्वामिन् (पुं०)
 स्वीकार करना—ऊरी+कृ (८ उ०), उररी+कृ (८ उ०)
 स्वेच्छाचारी—स्वैरः, स्वैरिन् (पुं०), कामवृत्तिः (स्त्री०)
 स्वेटर—ऊर्णावरकम्

ह

हंस—मरालः
 हंसी—वरटा
 हँसी करना—परि+हस् (१ प०)

हँमुली (गहना)—ग्रैवेयकम्
 हटना—अप+सु (१ प०), या (२ प०), वि०+रम् (१ प०)
 हटाना—व्यप+नी (१ उ०), अप+सारय (णिच्)
 हथौड़ी—अयोधनः
 हरताल—पीतकम्
 हराना—परा+भू (१ प०), परा+जि (१ आ०)
 हर—हरीतकी (स्त्री०)
 हल—लाङ्गलम्, हलम्, सीरः
 हल करना (प्रश्नादि)—साधय (णिच्)
 हलवाई—कान्दविकः
 हलुआ—लप्सिका
 हलका—लघुः (वि०)
 हल्दी—हरिद्रा
 हवन करना—हु (३ प०)
 हाँ—आम्, तथा, अथ किम् (अ०)
 हाइड्रोजन बम—जलपरमाण्वस्त्रम्
 हाँकी का खेल—यष्टिक्रीडा
 हाथ का तोड़ा (गहना)—त्रोटकम्
 हाथीवान—हस्तिपकः
 हार, मोती का—हारः
 हार, एक लड़ का—एकावली (स्त्री०)
 हारना—परा+जि (१ आ०)
 हारमोनियम (बाजा)—मनोहारिवाद्यम्
 हारसिंगार (फूल)—शेफालिका
 हॉल—महाकक्षः
 हिंसा करना—हिंस् (७ प०), हन् (२ प०)
 हिम—आवश्यायः, हिमम्
 हिंसाब—संख्यान्म
 हींग—हिङ्गुः (पुं०, न०)
 हीरा—हीरकः
 हृदय—हृदयम्, स्वान्तम्, मानसम्
 हुक्का—धूपनलिका
 हैजा—विषुचिका
 होठ—ओष्ठः
 होठ, नीचे का—अधरः, अधरोष्ठः
 होना—भू (१ प०), अस् (२ प०), विद् (४ आ०), वृत् (१ आ०)
 हौज—आहावः

(१५) विषयानुक्रमिका

सूचना— १. शब्दों, धातुओं और निबन्धों के विवरण के लिए प्रारम्भिक विषय-सूची देखिए।

२. विषयानुक्रमिका में दी गयी संख्याएँ पृष्ठ-बोधक हैं।

अनुवादाथ गद्य-संग्रह ३५१-३७०

अभ्यास १-१२१

आत्मनेपद ५८, ६०

इच्छार्थक प्रत्यय, सन् ७०

कर्तृवाच्य ५६

कर्मवाच्य ६२, ६४

कारक—प्रथमा २, द्वितीया २, ४, तृतीया ६, ८,
चतुर्थी १०, १२, पंचमी १४, १६, षष्ठी १८,
२०, सप्तमी २२, २४

कृत् प्रत्यय—अच् ९६, अण् १०२, अथु १०४, अप्
९६, इष्णु १०४, क १००, क ७४, ७६, कवतु
७८, क्तिन् १०२, क्त्वा ८६, क्विप् १०२, खल्
१००, खश् १०४, घञ् ९४, ट ९८, णमुल् ८८,
णिनि १००, ण्वल् ९८, तुमुन् ८४, तृच् ९६,
ल्यप् ८८, ल्युट् ९८, शतु ८०, शानच् ८२, अन्य
कृत् प्रत्यय १०४

कृत्य प्रत्यय—अनीय ९०, क्यप् ९२, ण्यत् ९२, तव्य
९०, यत् ९२

णिच् प्रत्यय— ६६, ६८

तद्धित प्रत्यय—अपत्यार्थक १०६, इष्टन् ११८, ईयमुन्
११८, चातुरार्थक १०८, च्वि १२०, तमप् ११८,
तरप् ११८, तुलनार्थक ११८, द्विरुक्त १२०,
भावार्थक ११६, मत्वर्थक ११२, विभक्त्यर्थ
११४, शैषिक ११०, सात् १२०, अन्य तद्धित
प्रत्यय १२०

धातुरूपकोश २२१-२५४

धातुरूपसंग्रह १४३-२२०

नामधातु-प्रत्यय ७२

निबन्धमाला २९६-३५०

पत्रादि-लेखन-प्रकार २९१-२९५

पदक्रम ५६

परस्मैपद ६०

पारिभाषिक शब्दकोश ४०३-४१४

प्रत्यय-परिचय २७९-२८५

प्रत्यय-विचार २५५-२६८

प्रेरणार्थक णिच् ६६, ६८

भाववाच्य ६२, ६४

यङ् प्रत्यय ७२

लकार—आशीलिङ् ३६, लिट् २६, लुङ् ३०, ३२,
लुट् ३४, लृङ् ३६

वाक्यार्थक शब्द २८६-२९०

विभक्ति—देखो कारक

शब्दरूप संग्रह—१२३-१४०

शब्दवर्ग—अन्नवर्ग ५२, अव्ययवर्ग ११२,
आभूषणवर्ग १०२, आयुधवर्ग ४४, कृषिवर्ग ७२,
क्रियावर्ग ११४, क्रीडासनवर्ग ३८, क्षत्रियवर्ग
४२, गृहवर्ग ११०, दिक्कालवर्ग ३२, देववर्ग
२६, धातुवर्ग ११६, नाट्यवर्ग ११८, पक्षिवर्ग
९२, पशुवर्ग ९०, पात्रवर्ग ६०, पानादिवर्ग ५८,
पुरवर्ग १०६, १०८, पुष्पवर्ग ८४, प्रसाधनवर्ग
१०४, फलवर्ग ८६, ८८, ब्राह्मणवर्ग ४०,
भक्ष्यवर्ग ५४, मिष्टान्नवर्ग ५६, रोगवर्ग १२०,
लेखनसामग्रीवर्ग ३०, वनवर्ग ८०, वस्त्रादिवर्ग
१००, वारिवर्ग ९४, विद्यालयवर्ग २८,
विशेषणवर्ग ७४, ७६, वृक्षवर्ग ८२, वैश्यवर्ग
४८, व्यापारवर्ग ४०, व्योमवर्ग ३४, शरीरवर्ग
९६, ९८, शाकादिवर्ग ६८, ७०, शिल्पिवर्ग ६४,
६६, शूद्रवर्ग ६२, शैलवर्ग ७८, सम्बन्धिवर्ग ३६,
सैन्यवर्ग ४६

संख्याएँ १४१-१४२

सन् प्रत्यय ७०

सन्धि—स्वर (अच्) सन्धि २६, २८, व्यंजन (हल्)

सन्धि ३०, ३२, विसर्ग-सन्धि ३४, ३६

सन्धि-विचार—२६९-२७८

स्वर सन्धि २६९-२७१

व्यंजन (हल्) सन्धि २७२-२७५

विसर्ग (स्वादि) सन्धि २७६-२७८

समास—अलुक् समास ५०,

अव्ययीभाव ३८, एकशेष ५०, कर्मधारय ४२,

तत्पुरुष ४०, द्वन्द्व ४८, द्विगु ४२, बहुव्रीहि ४४,

४६

समासान्तप्रत्यय ५२

सुभाषित-मुक्तावली— ३७१-४०२

अध्यात्म ३७२-३७५

अर्थ ३७५-३७६

आचार ३८१-३८९

आरोग्य ३७९

कवि, काव्य, कविता ४०१

काम (भोगनिन्दा) ३७६

चातुर्वर्ण्य ३७८

जगत्स्वरूप ३७७

जीवन ३७८-३७९

पुरुष-स्त्री-स्वभावादि ३९८-४०१

भारत-प्रशंसा ३७१

मनोभाव ३९४-३९५

राजधर्मादि ३७९-३८०

विचारात्मक ३९१-३९४

विद्या ३८९-३९१

विविध ४०१-४०२

व्यवहार ३९६-३९८

स्त्रीप्रत्यय ५४

हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोश ४१४-४३८

